‘कौल-कल्पतरु’ चण्डी

साधना-रहस्य

कुण्डलिनी-स्वरूपा वर्ण-माला

प्रकाशक : परा-वाणी आध्यात्मिक शोध-संस्थान
श्रीचण्डी-धाम, अलोपी-देवी मार्ग, प्रयाग-२११००६

'चण्डी' : विशेष प्रस्तुति

साधना-रहस्य

◈◈◈

◈ स्थान-विशेष का फल ◈

◈ विविध आसनों का महत्त्व ◈

◈ पुष्प-विचार ◈

◈ माला-संस्कार-विधि ◈

◈ तान्त्रिक सङ्कल्प-विधि ◈

◈ प्रातः-कृत्य एवं भूत-शुद्धि ◈

◈ न्यास-विधान ◈

◈ जप-यज्ञ और पुरश्चरण ◈

◈ वीर-साधना एवं दिव्य-साधना ◈

सम्पादक

रमादत्त शुक्ल

ऋतशील शर्मा

प्रकाशक

पण्डित देवीदत्त शुक्ल स्मारक :

परा-वाणी आध्यात्मिक शोध-संस्थान

कल्याण मन्दिर प्रकाशन

'श्रीचण्डी-धाम', प्रयाग-राज-२११००६ ☎(०५३२)-२५०२७८३

प्रकाशक :

परा-वाणी आध्यात्मिक शोध-संस्थान

कल्याण मन्दिर प्रकाशन

श्रीचण्डी-धाम, प्रयाग-राज-२११००६

दूर-भाष : (०५३२)-२५०२७८३

मोबाइल : ९४५०२२२७६७

तृतीय संशोधित एवं संवर्धित संस्करण

'अक्षय नवमी' २०६९ वि० (२२ नवम्बर, २०१२)

सर्वाधिकार सुरक्षित

साधना विषयक उपयोगी पुस्तकें

१.	मन्त्र-कोष	३००-००
२.	हिन्दी कौलावली निर्णय	२५-००
३.	मुद्राएँ एवं उपचार	३०-००
४.	मन्त्र-सिद्धि का उपाय	०६-००
५.	परायण-विधि	०६-००
६.	तन्त्रोक्त शब्द-ब्रह्म साधना	४०-००
७.	हिन्दी महा-निर्वाण तन्त्र	१५०-००
८.	हिन्दी कुलार्णव तन्त्र	१००-००

मुद्रक :

परा-वाणी प्रेस

अलोपी देवी मार्ग

प्रयाग-राज (उ०प्र०)-२११००६

अनुक्रम

[१] **साधना का स्थान** -- १-४

१. प्राकृतिक स्थान, २. मानव द्वारा निर्मित स्थान, ३. स्थान-विशेष का फल, ४. त्याज्य स्थान, ५. कूर्म-चक्र या दीप-स्थान का विचार

[२] **आसन** -- ५-११

१. आसन का महत्त्व, २. देहासन और परिभाषाऽऽसन, ३. सजीव और निर्जीव आसन, ४. सुखासन, ५. वृक्ष-आसन, ६. देव-वाहनों द्वारा विविध आसनों का सङ्केत, ७. प्रेतासना महा-विद्याएँ और शवासनादि-विधान, ८. शवासन (मृतासन), ९. मुण्डासन, १०. योगासन

[३] **पुष्प** -- १२-१४

१. पुष्पों के भेद, २. त्यागने योग्य पुष्प, ३. सभी देवताओं के योग्य पुष्प, ४. उक्त और अनुक्त पुष्प, ५. निषिद्ध पुष्प, ६. मध्यम 'फल'-रूप पुष्प, ७. अधम पत्र-रूप पुष्प, ८. पर्युषित पुष्प-विचार

[४] **जप-माला** -- १५-२६

१. 'माला' की आवश्यकता, २. 'माला' के भेद, ३. सर्व-श्रेष्ठ 'वर्ण-माला', ४. 'कर-माला', ५. 'मणि-माला', ६. माला-ग्रथन की विधि, ७. माला-संस्कार-विधि, ८. संक्षिप्त माला-संस्कार

[५] **वर्णौषधि तथा दिव्यौषधि** -- २७-२८

५० वर्णौषधियाँ, वर्णों के अनुसार वनौषधियाँ, १८ दिव्यौषधियाँ, वर्णौषधि-पुरश्चरण

[६] **सङ्कल्प** -- २९-३६

सङ्कल्प का महत्त्व, सङ्कल्प के दो भेद, तान्त्रिक सङ्कल्प-विधि, सारांश

[७] **'तिथि' का ध्यान-पूजनादि** -- ३७-४०

[८] **प्रातः-कृत्य एवं भूत-शुद्धि** -- ४१-५८

दीक्षा-प्राप्त साधकों का प्रातः-कृत्य, भूत-शुद्धि की विस्तृत विधि

[९] **साधना में न्यास-विधान** -- ५९-६३

१. मातृका-न्यास, २. ऋष्यादि-न्यास, ३. षडङ्ग-न्यास, ४. मूल-मन्त्र-न्यास, ५. व्यापक-न्यास, ६. षोढा-न्यास

[१०] **जप का महत्त्व व उसके नियम** ---------------------------- ६४-६७

१. जप एक महान् यज्ञ, २. जप-यज्ञ हेतु महत्त्व-पूर्ण निर्देश, ३. जप के नियम, ४. आलस्य-नाश का प्रयोग

[११] **पुरश्चरण** ---------------------------- ६८-८१

१. पुरश्चरण में आवश्यक कर्तव्य, २. पुरश्चरण में शुभाशुभ स्वप्न, ३. मन्त्र-सिद्धि के लक्षण, ४. पुरश्चरण के विविध मन्त्रों की जप-संख्या, ५. पुरश्चरण की अन्य आवश्यक बातें, ६. चार अयुत का छोटा पुरश्चरण, ७. एक मास का पुरश्चरण, ८. ग्रहण-कालीन पुरश्चरण

[१२] **वीर-साधना** ---------------------------- ८२

[१३] **वीर-साधना का समय** ---------------------------- ८३

[१४] **श्री पञ्च-मुण्डी एवम् श्री श्री नव-मुण्डी महाऽऽसन** ---------------------------- ८४-८६

[१५] **वीर-साधना की कुछ विशेष क्रियाएँ** ---------------------------- ८७-१०६

१. आत्म-रक्षा का विधान, २. वृहत्तर शय्या-साधन, ३. शय्या-शुद्धि की संक्षिप्त विधि, ४. गुरु-पादुका-मन्त्र का पुरश्चरण, ५. विल्व-मूल-साधना, ६. श्मशान में जप की विधि, ७. शिवा-बलि का विधान, ८. उग्र वीर-साधना के कुछ सङ्केत-अधिकारी कौन ?, वीर-वेष, वीर-सामग्री, ९. माला-संस्कार की अन्य विधि, १०. मुण्डासन-विधि, ११. वीर-साधना में उपयोगी रक्षा-मन्त्रादि-१. शरभ, २. अघोर, ३. खड्ग-रावण, ४. क्रोध-भैरव, ५. पाशुपतास्त्र, ६. जयदुर्गा, ७. वीरार्दन, ८. बला-महा-बला, ९. महा-सिंह, १०. योगिनी-बलि

[१६] **वीर-साधना-विषयक जिज्ञासाएँ** ---------------------------- १०७-१११

१. भाग्योदय एवं श्री-सम्पन्नता, २. श्मशान में जप, ३. शिवा-बलि का विधान, ४. मुण्डासन-विधि, ५. योनि-कवच, ६. आवरण-पूजन का महत्त्व, ७. उपसंहार-श्मशान-साधना की कुछ विशेष बातें

[१७] **पशु, वीर तथा दिव्य साधना का रहस्य** ---------------------------- ११२

[१८] **परिशिष्ट** ---------------------------- ११३-११६

१. साधना का मूल आधार, २. वर्तमान काल में श्रेष्ठ साधना, ३. रोग-नाशक प्रयोग, ४. श्री प्रभु

❀❀❀

साधना का स्थान

साधना के लिए समुचित स्थान का चयन करना पहला कार्य है । इस सम्बन्ध में तन्त्र-शास्त्र में स्पष्ट निर्देश मिलते हैं, जिनसे ज्ञात होता है कि दो प्रकार के 'स्थान' होते हैं—१. प्राकृतिक, २. मानव द्वारा निर्मित । इन स्थानों में से उपयुक्त स्थान को चुनकर वहाँ साधना करने से अभीष्ट फल की प्राप्ति निश्चित रूप से होती है । अनुभवी साधकों के अनुसार जिस स्थान पर बैठने से मन को शान्ति एवं प्रसन्नता का अनुभव हो, वह स्थान साधना के लिए सर्वोत्तम होता है । ऐसे स्थानों को चुनने में साधक को सरलता हो, इसी उद्देश्य से उक्त दो प्रकार के स्थानों का विवरण शास्त्रों में यथा-स्थान दिया गया है । उन्हीं का परिचय संक्षेप में यहाँ दिया जा रहा है—

१. प्राकृतिक स्थान

प्रकृति के खुले प्रदेश में साधना का उपयोगी स्थान यदि सुलभ हो, तो वहाँ बैठकर साधना करने से सहज ही सिद्धि प्राप्त होती है । ऐसे स्थानों में निम्न उल्लेखनीय हैं—

१. पर्वत का शिखर-भाग, २. पर्वत का तटीय प्रदेश (तराई), ३. पर्वत की गुफा, ४. पवित्र वन (तपो-वन), ५. तुलसी-वन, ६. प्रशस्त वृक्ष (वट, बिल्व, पिप्पल, आँवला आदि के नीचे), ७. पवित्र नदी, सरोवर, सागर का तट, ८. पवित्र निर्जन प्रदेश, ९. जल के मध्य में, १०. नदी-सङ्गम प्रदेश, ११. तीर्थ-क्षेत्र ।

प्राकृतिक 'स्थान' में बैठने से मन स्वाभाविक रूप से उल्लसित होता है । **पर्वत, वन, नदी, निर्जन प्रदेश** आदि स्थानों में शान्त वातावरण सहज ही सुलभ रहता है, जिससे बिना किसी विघ्न-बाधा के शान्ति के साथ साधना सम्पन्न होती है । विभिन्न **'तीर्थ-स्थानों'** में ऐसे स्थान अधिकता से दृष्टि-गत होते हैं, जहाँ प्राचीन-काल से अब तक लोग साधना कर सफलता प्राप्त करते आ रहे हैं । इसी से शास्त्रोक्ति है कि—

वाराणसी में 'जप' करने से उसका पूरा फल मिलता है । **पुरुषोत्तम**-क्षेत्र में उससे दूना फल, **द्वारका** में उससे भी दूना, **विन्ध्य, प्रयाग** और **पुष्कर** में उससे सौ गुना, **करतोया** नदी के जल में इन सब की अपेक्षा चार गुना, **नन्दी कुण्ड** में उसका चार गुना, **सिद्धेश्वरी-योनि** में उसका दूना, **ब्रह्म-पुत्र** नद में उसका चार गुना, **काम-रूप** के जल-स्थल में उसी के समान, **नीलाञ्चल पर्वत** के शिखर पर उसका दूना और **कामाख्या-योनि-पीठ** में उसका सौ गुना फल होता है । इत्यादि ।

उक्त तीर्थों के उत्तरोत्तर गुण-वर्णन का आशय यही है कि **साधना में 'स्थान' का विशेष महत्त्व है ।** ऊपर वर्णित **तीर्थ-क्षेत्र** सबको सुलभ नहीं हो सकते, इसी से अन्य प्रकार के स्थानों का उल्लेख शास्त्रों में ऋषियों द्वारा किया गया है । इन उल्लिखित स्थानों में से किसी भी स्थान का उपयोग करके साधना में अभीष्ट सिद्धि पाई जा सकती है ।

२. मानव द्वारा निर्मित स्थान

१. शून्य गृह, २. गुरु-देव का गृह, ३. उपवन (उद्यान), ४. गो-शाला, ५. एक-लिङ्ग शिवालय (जिस शिव-मन्दिर के पाँच कोस–दस मील तक दूसरा शिव-लिङ्ग न हो), **६. वृष-शून्य शिव-स्थान**

(मन्दिर), ७. देवी-मन्दिर, देवालय या शक्ति-पीठ, ८. चतुष्पथ, ९. भू-गर्भ (पृथ्वी के नीचे बना कमरा, ढँकी हुई गुफा आदि), १०. राज-महल, ११. छिद्र-रहित मण्डप के नीचे, १२. पञ्च-वटी, १३. श्मशान।

(१) 'शून्य-गृह' (शून्यागार) के सम्बन्ध में 'त्रि-शक्ति-तन्त्र' की उक्ति है–

नागरेर्दूर-निर्मुक्तं, साध्वसोद्वेग-कारणं । काकादि-नीड-संयुक्तं, कपिच्छत्रादि-सेवितम् ।
सौध-संरूढया साध्यं, शून्यागार तदुच्यते ।।

'ज्ञान-कारिका' में '**शून्यागार**' की विशेष व्याख्या है । यथा–

अशरीरं यदा तत्त्वं, स्व-देहे सा स्थिता यदि । शून्यं निरञ्जनं ज्ञात्वा, मुच्यते नात्र संशयः ।।

(२) '**एक-लिङ्ग**' के सम्बन्ध में 'शक्ति-सङ्गम तन्त्र' में लिखा है–

पश्चिमाभिमुखं लिङ्गं, नन्दी-हीनं पुरातनं । चतुरः पञ्च-क्रोशान्ते, न लिङ्गो दृश्यते शिवे!
तदेक-लिङ्गमाख्यातं, तत्र सिद्धिरनुत्तमा ।।

अर्थात् पश्चिम की ओर प्राचीन शिव-लिङ्ग का मुख हो, नन्दी की स्थापना वहाँ न हो और चारों ओर पाँच कोस तक दूसरा शिव-लिङ्ग न हो, तो उसे '**एक-लिङ्ग**' कहते हैं । उसके पास बैठकर साधना करने से उत्तम सिद्धि मिलती है ।

'फेत्कारिणी तन्त्र' में भी इसी आशय की उक्ति है–

पञ्च-क्रोशान्तरे यत्र, न लिङ्गान्तरमीक्षते । तदेक-लिङ्गमाख्यातं, तत्र सिद्धिरनुत्तमा ।।

'ज्ञान-कारिणी' में '**एक-लिङ्ग**' की विशेष व्याख्या है । यथा–

लिङ्गस्तु कथयिष्यामि, यल्लिङ्गं कौलिकं स्मृतं । लय-पूजाष्टकं यत्तं, लिङ्गस्तु स चराचरम् ।।
लयैव यानि सर्वेषां, तेन लिङ्गं उदाहृतं । एतत् कौलिकः यल्लिङ्गं, एकस्तु न द्वितीयकम् ।।

(३) '**वृष-शून्य शिव-स्थान**' की उपयोगिता के सम्बन्ध में गन्धर्व तन्त्र, पुरश्चरण-चन्द्रिका, योगिनी-हृदय आदि में उल्लेख है–'**प्रत्यङ्-मुख शिव-स्थाने, वृषभादि-विवर्जिते ।**'

(४) '**चतुष्पथ**' के सम्बन्ध में 'फेत्कारिणी तन्त्र' में लिखा है–

चतुर्ष्णास्तु पथं यत्र, सम्पातो युग-पद् भवेत् । तत् चतुष्पथमित्युक्तं, रजन्यामिष्ट-दायकम् ।।

अर्थात् जहाँ पर चार दिशाओं से आते चार मार्ग मिलते हैं, उस स्थान को '**चतुष्पथ**' कहते हैं । वहाँ रात्रि में साधना करने से अभीष्ट फल मिलता है ।

'कुलार्णव तन्त्र' में इसी विषय में निम्न वचन है–

चतुष्पथं विजानीयात्, यत्रास्ति तारिणी-शिला ।

अर्थात् '**चतुष्पथ**' को वहाँ जानना चाहिए, जहाँ **भगवती तारा** की अवस्थिति रहती है ।

(५) '**पञ्च-वटी**' के सम्बन्ध में ज्ञातव्य है कि ये दो प्रकार की होती हैं–**१. सामान्य, २. वृहत्** । सामान्यतः १६ हाथ लम्बे और उतने ही चौड़े अर्थात् वर्गाकार क्षेत्र में एक कोने में (१) **बिल्व (बेल)** का, दूसरे कोने में (२) **अशोक** का, तीसरे कोने में (३) **निम्ब (नीम)** का, चौथे कोने में (४) **अश्वत्थ (पीपल) या वट (बरगद)** का और इन चारों के मध्य अर्थात् क्षेत्र के केन्द्र-स्थल में (५) **आमलकी (आँवले)** का वृक्ष लगाया जाता है । इस प्रकार प्रस्तुत '**पञ्च-वटी**' के चारों ओर **रक्त-जवा पुष्प** की बाड़ लगाकर उसके

बगल में माधवी लता या कृष्णा अपराजिता लगाई जाती है। इस पञ्च-वटी के मध्य भाग को तीर्थ-स्थान की पवित्र मिट्टी से शुद्ध बनाया जाता है।

'सामान्य पञ्च-वटी' के सम्बन्ध में 'स्कन्द-पुराण' के 'हेमाद्रि-व्रत-खण्ड' में लिखा है–

अश्वत्थ बिल्व-वृक्षश्च, वट-धात्री अशौककः। वटी-पञ्चकमित्युक्तं, स्थापयेत् पञ्च-दिक्षु च ।।
अश्वत्थं स्थापयेत् प्राची, बिल्वमुत्तर-भागतः। वटं पश्चिम-भागे तु, धात्रीं च दक्षिणे तथा ।।
अशोकं वह्नि-दिक् स्थाप्यं, तपस्यार्थं सुरेश्वरि! मध्ये वेदीं चतुर्हस्तां, सुन्दरीं सुमनोहराम् ।।
प्रतिष्ठां कारयेत् तस्याः, पञ्च-वर्षोत्तरं शिवे! अनन्त-फल-दात्री सा, तपस्या फल-दायिनी ।।

वहीं 'वृहत् पञ्च-वटी' के सम्बन्ध में निम्न प्रकार निर्दिष्ट है–

बिल्व-वृक्षं मध्य-भागे, चतुर्दिक्षु चतुष्टयं। वट-वृक्षं चतुष्कोणे, बेद-संख्यं प्ररोपयेत् ।।
अशोकं वर्त्तुलाकारं, पञ्च-विंशति-सम्मितं। दिग्विदिक्ष्वामलकीं चैव एकैकं देवेश्वरि! ।।
अश्वत्थं च चतुर्दिक्षु, वृहत् पञ्च-वटी भवेत्। यः करोति महेशानि! साक्षादिन्द्र-समो भवेत् ।।
इह-लोके मन्त्र-सिद्धिः, परे च परमा गतिः।

वेदी-करण : प्रशस्त वृक्ष के नीचे साधना हेतु '**वेदी**' बनाने की विधि है, जैसा कि '**सामान्य पञ्च-वटी**' सम्बन्धी कथन के अन्तर्गत उल्लिखित है। अतः '**वेदी-करण**' के विषय में 'रुद्र-यामल' का निम्न उद्धरण ध्यान रखने योग्य है–

अश्वत्थ-बिल्व-मूले वा, वेदीं कुर्याद् विधान-वित्। उत्तराश्य-मुखो भूत्वा, वेदिकां रचयेत् सुधीः ।।
ईशाने सूत्र-पातं स्यादग्नौ च स्तम्भ-रोपणम्। नवधा सदन-विस्तारः, प्रस्थं च तावदेव हि ।।
मूलायामं परित्यज्य, अष्ट-हस्तमिहेष्यते। ऊर्ध्वं वितस्ति-मानं हि, वेदीं कुर्यात् सुलक्षणाम् ।।
चतुर्हस्त-मतां वेदीं, दैर्घं मध्ये तु तन्त्र-वित्। तदेव पूर्व-वत् सर्वं, सूत्रं च स्तम्भ रोपणम् ।।
आयाम-दैर्घ्यं तद्-वद् वै, कर्त्तुर्हस्तश्चतुश्चतुः। तद्-वदेव हस्त-मात्रं परित्यज्य सु-साधकः ।।

(६) '**श्मशान**' के सम्बन्ध में 'तारा-भक्ति-सुधार्णव' में लिखा है–

श्मशानं द्वि-विधं प्रोक्तं, चिता-योनि-प्रभेदतः। असंस्कृता चिता ग्राह्या, केवलं शीघ्र सिद्धिदा ।।

अर्थात् '**श्मशान**' दो प्रकार के कहे हैं–**१. चिता, २. योनि**। जहाँ असंस्कृत चिता हो, वही '**श्मशान**' शीघ्र सिद्धि-दायक होता है।

'त्रि-शक्ति-तन्त्र' में इस विषय की उक्ति निम्न प्रकार है–

दह्यन्ते व्यसनो यत्र, शव-कीलक-संकुले। गृध्र-गोमायु-काकाद्यैर्मांस-लुब्धैः सदावृतम् ।।
तत् श्मशानमिति ख्यातं, पिशाच-गण-सेवितम्।

अर्थात् शव-रूपी कीलकों से परिपूर्ण, मांस-लोभी गिद्ध, सियार और कौवों से सदा घिरा हुआ स्थान '**श्मशान**' नाम से प्रसिद्ध है, जहाँ पिशाचों का निवास रहता है। वहाँ व्यसन नष्ट हो जाते हैं।

'कुल-सार' में इस सम्बन्ध में लिखा है–

असंस्कृता चिता ग्राह्या, न संस्कार-संस्कृतं। चाण्डालादि-चिता ग्राह्या, केवलं शीघ्र-सिद्धिदा ।।

अर्थात् संस्कार द्वारा शुद्ध की गई चिता साधना के उपयोगी नहीं होती। बिना संस्कारवाली चिता ही, विशेष कर चाण्डाल आदि की ग्रहण करने योग्य है। वही शीघ्र सिद्धि-दायिनी है।

'ज्ञान-कारिका' की विशेष व्याख्या निम्न प्रकार है–

शोभते च यदा देहं, सर्वेषां एक-देहिनां । निःश्वास-श्वास-संयुक्तं, श्मशानं परि-कीर्तितम् ।।

वहीं चिता-श्मशान की साधना के अधिकारी व्यक्ति के भी लक्षण बताए हैं । यथा–

महा-बलो महा-बुद्धिर्महा-साहसिको शुचिः । महा-स्वच्छो दयावांश्च, सर्व-भूत-हिते रतः ।।

अर्थात् अति शक्ति-शाली, अत्यन्त मेधावी, साहसी, सच्चरित्र, पवित्रात्मा, दयालु और समस्त प्राणियों का कल्याणेच्छु व्यक्ति ही श्मशान में साधना करने का अधिकारी है ।

३. स्थान-विशेष का फल

'वायवीय संहिता' में लिखा है कि गृह में जप करने का सामान्य फल होता है । उससे सौ गुना अधिक फल **गो-शाला** में, **उपवन** और **तपोवन** में सहस्र गुना अधिक, **पर्वत** में अयुत (दस सहस्र) गुना अधिक, **पवित्र नदी** के किनारे लक्ष गुना अधिक, **देव-देवी-मन्दिर** में कोटि-गुना अधिक और **शिव-लिङ्ग** के समीप अनन्त गुना अधिक फल होता है ।

सूर्य, चन्द्र, अग्नि, गुरुदेव, प्रज्वलित दीपक, ब्राह्मण, गाय के समीपस्थ स्थान में बैठकर साधना करना शीघ्र फल-प्रद होता है ।

४. त्याज्य स्थान

जहाँ **दुष्ट लोग** और **हिंसक पशु, सर्पादि** का निवास हो, उस स्थान पर साधना न करे ।

जहाँ **लोगों का आवागमन अधिक** हो, **धर्म-कर्म की निन्दा** होती हो, **दुर्भिक्ष** की अवस्था अर्थात् खाने-पीने की वस्तुओं का अभाव हो, **उपद्रव** अर्थात् झगड़े-झंझट आदि होते रहते हों, **शासकीय वर्ग** अर्थात् **मन्त्री, अधिकारी, प्रभाव-शाली लोग** आते-जाते हों, वहाँ साधना का स्थान कभी न चुने ।

जहाँ अपने रहने, खाने-पीने आदि के लिए दूसरों पर अवलम्बित रहना पड़े, वहाँ साधना नहीं करनी चाहिए ।

जीर्ण (टूटे-फूटे) देवालय, जीर्ण उद्यान-गृह, जीर्ण वृक्ष के नीचे, जीर्ण नदी-तट, जीर्ण गुफा या **जीर्ण भू-गर्भस्थ कक्ष** आदि स्थानों को छोड़ दे ।

५. कूर्म-चक्र या दीप-स्थान का विचार

'शारदा-तिलक', द्वितीय पटल में लिखा है कि '**कूर्म-चक्र**' द्वारा '**दीप-स्थान**' का निर्णय करे क्योंकि वहीं बैठकर साधना करना फल-प्रद होता है । 'क' से 'क्ष' तक के व्यञ्जन वर्ण 'दीप' कहलाते हैं और स्वर '**षोडश-पीठ**' । '**कूर्म-चक्र**' के ९ कोष्ठों में से जिस कोष्ठ में '**दीपाक्षर**' होता है, उसी 'कोष्ठ' से '**दीप-स्थान**' की सूचना मिलती है ।

पर्वत, समुद्र-तट, तपोवन, पुण्य नदी-तट, कुरुक्षेत्र, प्रयाग, गङ्गा-सागर-सङ्गम, काशी, उज्जैन जैसे स्थानों में '**कूर्म-चक्र**' या '**दीप-स्थान**' के विचार की आवश्यकता नहीं । इनके अतिरिक्त गाँव, नगर, बस्ती, पीठ-क्षेत्र या घर में साधना करते समय उक्त विचार का करना श्रेयस्कर होता है ।

'**दीप-स्थान**' के सम्बन्ध में '**हिन्दी तन्त्रसार**' या '**मन्त्र-सिद्धि का उपाय**' में विचार की विधि चित्र के साथ दी गई है ।

●●●

आसन

१. आसन का महत्त्व : प्राय: लोग **लकड़ी का पटड़ा** बिछा कर अथवा नदी आदि जलाशय के किनारे **प्रस्तर-शिला** पर बैठ कर अपने नित्य-नैमित्तिक आदि पूजन-कार्य करते हैं, किन्तु उपर्युक्त दोनों प्रकार के **'आसन'** निषिद्ध हैं। पूजा में **'आसन'** का विशेष महत्त्व है। **'पहले आसन-शुद्धि तब मन्त्र-सिद्धि'**-यह कहावत प्रचलित है। **मन्त्र-सिद्धि** के लिए **'भूमि'** और **'आसन'** की शुद्धता नितान्त आवश्यक है।

सामान्यत: सन्ध्या और पूजा-पाठ के लिए **१. कुशाऽऽसन, २. ऊर्णासन** और **३. कम्बलासन** पवित्र माने गए हैं।

मन्त्र-शास्त्र में भिन्न-भिन्न **विविध कामनाओं के अनुसार विविध आसनों का निर्देश** है। इसी प्रकार **पृथक्-पृथक् देवताओं के उपासकों के लिए पृथक्-पृथक् आसन** भी निर्दिष्ट हैं।

२. देहासन और परिभाषाऽऽसन : 'देहासन' अर्थात् भिन्न-भिन्न जीवों के शरीर से बने हुए आसन। देह का अर्थ शरीर होता है, अतएव **'देहासन'** का अर्थ **'शरीरासन'** है।

व्याघ्र-मुण्ड, नाना प्रकार के **कम्बल, मृग-चर्म** आदि अनेक प्रकार के बने हुए आसन, नाना प्रकार के **तृण, लता, गुल्म** और **औषधियों** से रचित, **ऊँटों के बालों** तथा **चर्म** से विरचित तथा **कुश, काँस** आदि से निर्मित आसनों को **'परिभाषाऽऽसन'** कहते हैं।

३. सजीव और निर्जीव आसन : (१) सजीव और (२) निर्जीव के भेद से दो प्रकार के आसन होते हैं अर्थात् एक **प्राणवाले आसन** और दूसरे **बिना प्राण के आसन**। ये दोनों प्रकार के आसन सब प्रकार की सिद्धियों के देनेवाले हैं। तथापि **'सजीव आसन'** अर्थात् **जीव-धारी प्राणियों के आसन** मुख्य हैं और ये रहस्य-पूर्ण हैं। यदि जीवित **प्राणियों के ऊपर बैठकर मन्त्र-जप** किया जाए, तो शीघ्र सिद्धि प्राप्त होती है। जीवित प्राणियों के अभाव में ही **निर्जीव (मृत) प्राणियों के चर्म से बने हुए आसनों पर बैठने का विधान** है। अतएव 'शक्ति-सङ्गम तन्त्र' में लिखा है-जीवित प्राणियों के आसनों के न मिलने पर मृतक प्राणियों के चर्म से बने हुए आसनों को काम में लाना चाहिए।

जिन पशुओं की योग्यता वाहन बनने की नहीं है, जिन पर सवारी नहीं की जा सकती, उनके समूह में बैठकर, उनके साथ भोजन-भजन आदि करना चाहिए। जिनको ऐसा करने का भी अवसर प्राप्त न हो, वे उक्त पशुओं का चर्म प्राप्त कर उसे साधना के लिए काम में ला सकते हैं।

आसनोपयोगी जीव-अश्व, हाथी, शल्लकी, मनुष्य, वृषभ (बैल), भालू, बन्दर, बाघ, कुत्ता, शिवा (गीदड़), मेंढा, बकरा, ऊँट, चित्तल, हरिण आदि मृग, शरभ, गवय, शूकर, शबर, कुक्कुट और मगर (मकर)। ये जीव आसन के उपयोगी हैं और इनके आसन को **'वरासन'** कहते हैं।

अश्व आसन : 'जीवितासन'-प्रकरण में सबसे पहले **'अश्व' (घोड़ा)** आया है। उसके भेद निम्न प्रकार हैं-**१. वाह्लीक, २. काम्भोज, ३. कोंकण, ४. ऐराक** और **५. वनायु** देशों के भेद से पाँच प्रकार और अठारह जाति के घोड़े होते हैं। ये घोड़े नव-ग्रहों के रङ्ग के समान अलग-अलग नौ रङ्गों के होते हैं। इस प्रकार इनके बहुत भेद हैं।

रङ्ग के अनुसार अश्व के ऊपर बैठकर जप करने का फल निम्न-लिखित है–

सूर्य के समान रङ्गवाले (रक्त-वर्ण) घोड़े पर बैठकर बीस हजार मन्त्र जपने से उपासक त्रैलोक्य-विजयी बन जाता है । **कवच, स्तोत्र** और **सहस्त्र-नाम** सिद्ध करने के लिए उसकी केवल एक हजार आवृत्ति करनी चाहिए ।

सोम-वर्ण के (श्वेत) घोड़े पर बैठकर दश हजार जपने से उपासक कीर्ति और लक्ष्मीवान् बनता है । **भौम-वर्ण (लाल)** वाले पर तीन हजार जप से दरिद्री मनुष्य धनाढ्य हो जाता है । **बुध वर्ण (पीले)** वाले पर चढ़कर तीस हजार जपने से रोगी नीरोग और दरिद्र धनी हो जाता है । **वृहस्पति-वर्ण (पीले)** अश्व पर नौ हजार जप से नव-निधियाँ मिलती हैं । **शुक्र-वर्ण (श्वेत)** के घोड़े पर सवार होकर एक लक्ष जप करने से सब सिद्धियाँ मिलती हैं । **शनि-वर्ण (काले)** पर तीन हजार जप से मनुष्य सब प्रकार की बाधाओं से छुटकारा पा जाता है । **राहु-वर्ण (काले)** पर ७० हजार जप से धनी बन जाता है । **केतु-वर्ण (धूम्र)** वाले पर २५ हजार जप से दूसरे राज्य में जय मिलती है । केवल **श्वेत-वर्ण** वाले पर एक लाख जप से शत्रु का नाश होकर राज्य-सुख प्राप्त होता है । **श्याम-वर्ण** आदि श्रेष्ठ अश्वों के आसन पर १० हजार जप से सभी इच्छाएँ पूर्ण होती हैं तथा इस आसन पर स्तोत्र, कवच आदि के पाठ से इनके सिद्ध होनें पर सर्वत्र विजय मिलती है ।

नव-ग्रह-वर्णों के अतिरिक्त **कृष्ण, पीत, नील, हरित, धूसर, श्याम, कपिल, कबरा, धूम्र रङ्गवाले घोड़ों** पर बैठकर जप करने का अलग-अलग बड़ा माहात्म्य है । **अनेक रङ्गोंवाले घोड़े** पर जप करना नितान्त प्रशस्त है, ऐसे घोड़े पर एक मास तक प्रति-दिन एक सौ जप करने से भगवती प्रसन्न होकर एक मास के उपरान्त वर दे देती हैं ।

काम्बोज देश के अश्वों पर बैठ जप करने से केवल एक पक्ष (१५ दिन) में और **वाह्लीक देश के अश्वों** पर अनुष्ठान करने से केवल तीन दिन में और **पर्वत-प्रदेश के अश्वों** पर साधना करने से निश्चित-रूपेण सिद्धि शीघ्र प्राप्त होती है । यह **जीवित 'अश्वासन'** का वर्णन है । जीवित के अभाव में **'आसन'** के लिए **अश्व-चर्म** काम में लाया जाता है ।

गजासन : 'गज' (हाथियों) के विषय में यह प्रसिद्धि है कि मुनियों के शाप के कारण और **देव-राज इन्द्र** की आज्ञा से हाथी स्वर्ग-लोक से भू-लोक पर आए हैं । **ब्रह्मा जी** ने इनकी सृष्टि **साम-वेद** से की है । मन्त्र-शास्त्र में इनका बड़ा महत्त्व दर्शाया है और इनके ऊपर बैठकर साधना करना सिद्धि-प्रद बताया है ।

हाथी–१. भद्र, २. मन्द, ३. मृग और **४. मिश्र** भेद से चार प्रकार के होते हैं । दक्षिणी हाथी अत्यन्त ऊँचे और अत्यन्त नीचे होने से दो प्रकार के माने जाते हैं । मलय पर्वत के दक्षिण में अति ऊँचे हाथी होते हैं और अत्यन्त नीचे हाथी दक्षिणी समुद्र के किनारे मिलते हैं । इनमें भी एक जाति लोम (रोम) वाले हाथियों की है और दूसरी निर्लोमों (बालों से रहित) की । इस प्रकार इनकी बहुत सी जातियाँ हैं ।

गजासन पर बैठकर दो लाख मन्त्र जपने से सार्वभौम-पद अथवा अपना अभिलषित पद मिलता है ।

जाति-भेद से पृथक्-पृथक् हाथियों का फल निम्न प्रकार है–**१. 'भद्र'** जाति के हाथी पर बैठकर अर्ध लक्ष जप करने से औरों का वशीकरण तो एक ओर रहा, अपने **इष्ट-देवता** तक वश में हो जाते हैं । **२. 'मृग'** हाथी पर बैठकर तीन हजार जप करने से त्रिलोकों में श्रेष्ठ पद मिलता है, इसी **मृग-गजासन** पर प्रति-दिन एक

हजार मन्त्र जप करने से **इन्द्रादि देवता** वश में हो जाते हैं । ३. **'मिश्र'** जाति के हाथी पर एक हजार प्रति-दिन जपने से छः मास में जिसकी चिन्ता करे, उसको अपने हाथ में आया हुआ जाने ।

दक्षिण देश के हाथी पर प्रति-दिन तीन सौ बार मन्त्र जपने से साधक **शिव**-तुल्य होकर सिद्धि प्राप्त कर लेता है । **समुद्री हाथी** पर तीन मास पर्यन्त एक सौ आठ बार मन्त्र जपने से राज्य-लक्ष्मी प्राप्त होती है । **पूर्वी हाथी** पर बैठकर स्तोत्र, कवच का पाठ करने से निश्चय रूप से शत्रु-हानि होती है । **उत्तर दिशा के हाथी** पर बैठकर एक सहस्र मन्त्र-जप प्रति-दिन करने से साधक संग्राम में **इन्द्र** के समान विजयी होकर **भगवान् शरभ देव** के समान हो जाता है ।

जिसके यहाँ हाथी हो, प्रातः-काल उठकर निम्न पद्य से उसे प्रणाम करे-

सामोद्भवाय शुभ-लक्षण-लक्षिताय, दिव्यात्मने सकल-देव-निकेतनाय ।
कल्याण-मङ्गल-महोत्सव-कारणाय, तुभ्यं नमः श्रेष्ठाय करि-वराय नित्यम् ।।

अर्थात् हे श्रेष्ठ करि-वर! तुम्हारे लिए नित्य नमस्कार हो । तुम्हारी उत्पत्ति साम-वेद से हुई है, तुम शुभ लक्षणों से युक्त हो, तुम्हारी आत्मा दिव्य है और सम्पूर्ण देवता तुम्हारे शरीर में वास करते हैं । तुम सब प्रकार के कल्याण, मङ्गल और उत्सवों के देनेवाले हो ।

प्रातः-काल उठकर श्रेष्ठ हाथी के दर्शन से दुःस्वप्न, दुष्ट-ग्रह और दुष्ट-चेष्टाएँ शीघ्र ही विनष्ट होती हैं ।

शल्लकी और गण्डकी-आसन : शल्लकी **(सेही)** के ऊपर प्रातः, मध्याह्न और सायं मन्त्र-जप से उपासक संसार में विजयी होता है । गण्डकी (गैंडे) के ऊपर बैठकर तीनों सन्ध्याओं में जप करने से दास-कुलोत्पन्न मनुष्य भी राजा बन जाता है ।

मनुष्य का आसन : 'मनुष्य' के आसन पर बैठकर जो **काली** के मन्त्र को जपता है, वह साधक राजा बन जाता है । यहाँ 'मनुष्य' से अन्य जीवों की भाँति **'जीवित मनुष्य'** समझना चाहिए । **'शवासन'** (मृत) का विषय आगे दिया जाएगा ।

महिषासन : 'महिष' **(भैंसे)** पर बैठकर ७० हजार मन्त्र जप करने से मनुष्य शत्रु-संहारक बनता है ।

वृषभ, भालू, वानर के आसन : 'वृषभ' (बैल) के आसन पर बैठकर मन्त्र जप करने से मनुष्य के ऊपर विजय और शत्रु-विद्वेषण होता है । वृषभ के ही ऊपर दश सहस्र जप करने से साधक **शिव**-तुल्य हो जाता है । **'भालू' (रीछ)** के ऊपर बैठकर प्रतिदिन **भैरव**-मन्त्र जपने से उपासक वेताल-सिद्धि प्राप्त कर शत्रु-नाशक बन जाता है । **'वानर'** पर बैठकर नौ हजार मन्त्र-जप करने से साधक राक्षसों को वश में कर शत्रु-नाशक होता है ।

व्याघ्रासन : जो उपासक सर्वदा **'व्याघ्र'** पर बैठकर जप करता है, वह भगवती के तुल्य हो जाता है । **'चित्र' व्याघ्र** के ऊपर बैठकर **काली**-मन्त्र जपने से वाक्-सिद्धि मिलती है । **'अष्ट व्याघ्र'** के ऊपर बैठकर एक लक्ष जप करने से साधक त्रिलोकीश्वर बन जाता है । एक मास पर्यन्त प्रातः, सायं और मध्याह्न में **'वल्ली' व्याघ्र** के ऊपर बैठकर मन्त्र जप करने से देव-दुर्लभ सिद्धि प्राप्त होती है । तीनों सन्ध्याओं में **'धूसर' व्याघ्र** के ऊपर तीन सौ मन्त्र प्रत्यह जपने से साधक त्रिकालज्ञ बन जाता है । **'बिन्दु-मान् ' व्याघ्र** के ऊपर बैठकर साधना करने से साधक शत्रु-राज्य को जीतकर सर्व-कार्य-सिद्धि प्राप्त करता है, यह प्रयोग केवल एक पक्ष

का है। **महा-व्याघ्र** के ऊपर बैठकर एक मास पर्यन्त **महा-विद्या-मन्त्र** के जप से साधक सिद्धि प्राप्त कर खेचर बन जाता है। '**महा-विद्या**' से **काली, तारा, षोडशी** आदि का आशय है। '**रोमश**' **व्याघ्र** के ऊपर बैठकर एक पक्ष पर्यन्त तीनों सन्ध्याओं में तीन सहस्र जप करने से साधक खेचर-सिद्धि प्राप्त करता है। '**कृष्ण**' **व्याघ्र** पर बैठकर प्रति-दिन एक सौ आठ मन्त्र जपने से साधक यक्षिणी-नायक बनता है। '**महाराज**' **व्याघ्र** के ऊपर बैठकर **कालिका** के उपासक को प्रत्यह मन्त्र-जप, पाठ, पूजा आदि करना श्रेयस्कर है।

शिवाऽऽसन : 'शिवा' का अर्थ जम्बूकी (गीदड़ी) है। **शिवा** के साथ परिचय करने से तथा प्रयत्न-पूर्वक **शिवा की पूजा** कर मन्त्र जपने को **शिवासन** कहते हैं। **काली** और **तारा** के उपासकों के लिए **शिवासन** अत्यावश्यक है।

मेष और छागासन : 'मेष' (मेढ़े) पर बैठकर दिन-रात छः मास जप करने से **शाकिनी** प्रसन्न होकर वर देती है। 'छाग' (**बकरे**) पर बैठकर पाँच मास मन्त्र जपने से साधक काम के समान मोहक बनता है।

उष्ट्र और मृगासन : 'उष्ट्र' (**ऊँट**) के आसन पर बैठकर साधक ताम्बूल से मुख पूरित कर यदि तीन मास मन्त्र-जप करता है, तो दुष्टों का नाश होता है। '**मृग**' (**हरिण, चित्तल** आदि) पर बैठकर जप करने से उपासक कुबेर के समान धनवान् और वायु के तुल्य पराक्रम-शील बनता है।

आसन के लिए **जीवित पशु** न प्राप्त हो सकें, तो **कुश से अभीष्ट पशु की मूर्ति** बनाकर उसके ऊपर बैठ सकते हैं। **कुश-निर्मित पशु-मूर्ति** पर बैठकर पूजा, पाठ और जप करने से वही फल मिलता है, जो असली पशु पर बैठकर जप करने से होता है। कुश के न मिलने पर **मिट्टी की मूर्ति** बनाकर अर्थात् **मिट्टी का पशु** बनाकर उसमें प्राण-प्रतिष्ठा कर पूजा, पाठ और जप करने से भी वही फल प्राप्त होता है। '**वानरासन**' के विधान में **सुग्रीव, हनुमान, अङ्गद, नल, नील** आदि वानरों और **जाम्बुवान्** के आसनों का वर्णन है। वहाँ इनकी **कुश की या मृणमय मूर्ति** बनाकर उस पर बैठकर जप करने का ही निर्देश है।

सुग्रीवासन पर नौ हजार जप से राक्षसों का वशीकरण और शत्रु-नाश, **हनुमान** के आसन पर एक लक्ष जप से विष्णु के समान ऐश्वर्य, **जाम्बुवान्** के आसन पर जप करने से रत्नों का स्वामित्व तथा **नल, नील** और **अङ्गद** के आसन पर पाँच सौ जप से साधक पराक्रम-शाली बन जाता है।

कुक्कुटासन : 'कुक्कुट' (**मुर्गे**) पर बैठकर मन्त्र जपने से **भैरवनाथ** प्रसन्न होते हैं और वेताल साधक का दास बन जाता है। **इष्ट-मन्त्र** जपने से सब मनोकामनाएँ सिद्ध होती हैं।

मयूरासन : 'मयूर' (**मोर**) के आसन पर बैठकर एक मास जप करने से साधक **कार्तिकेय** के समान प्रतापी बन जाता है।

शरभादि आसन : 'शरभ' के आसन पर दिन-रात जप करने से उपासक सर्व-सिद्धियों का स्वामी बन जाता है। '**गवय**' के आसन पर मन्त्र-जप से सब दुःखों का नाश होता है और 'शूकर' (**सुअर**) के आसन पर बैठकर त्रिकाल-जप करने से साधक सर्व-पापों से रहित हो जाता है। '**शवर**' के आसन पर आठ हजार मन्त्र जपने से उपासक गन्धर्वों का स्वामी बन जाता है और एक लाख मन्त्र जपने से अणिमा-सिद्धि को प्राप्त करता है।

कूर्मासान : कूर्म (**कछुआ**) के आसन पर बैठकर रात और दिन जप करने से **डाकिनी** प्रसन्न होती है और सब बाधाएँ दूर होती हैं।

वृषभासन : पाँच रङ्गवाले बैल के ऊपर अथवा उसके रथ या शकट (बैलगाड़ी) में बैठकर जप करने से **अश्वासन** के समान ही फल मिलता है। **बैल के रथ** में बैठकर सर्व-काल जप करने से दरिद्र भी धनी बन जाता है।

४. सुखासन : तरणि (नाव), रथ, शकट, डाँडी, डोली और चक्र-दोला–इनकी संज्ञा 'सुखासन' है अर्थात् इनमें बैठकर उपासक सुख-पूर्वक अपना कार्य कर सकता है।

चार पहर **सुखासन** में बैठकर जप करने से साधक सर्व-सिद्धीश्वर हो जाता है। **सुखासन** में बैठकर **भैरवी**-मन्त्र जपनेवाला साधक त्रैलोक्य-विजयी बन जाता है।

नौकाऽऽसन : नौका (नाव) में बैठकर जप करने से साधक महा-विद्येश्वर हो जाता है। महा-नौका का आश्रय लेकर जप करने से साधक त्रिकाल-दर्शी बन जाता है।

रथ और शकटासन : रथासन में बैठकर जप करने से साधक ब्रह्माण्ड-नायक बन जाता है। **शकटासन** में स्थित साधक तीन मास जप करने से त्रिलोकी को वश में कर लेता है तथा **कालिका**-स्वरूप हो जाता है।

डोली-आसन : डोली (पालकी) अथवा डांडी में बैठकर दश हजार मन्त्र जपने से साधक शत्रुओं को जीतकर जय प्राप्त करता है।

नौका आदि उपर्युक्त आसनों में **शक्ति-सहित जप** करनेवाले साधक को शीघ्र सिद्धि प्राप्त होती है।

५. वृक्ष-आसन : जिस प्रकार उपरिलिखित आसनों पर बैठकर मन्त्र-साधना की जाती है, उसी प्रकार **१. नारियल, २. पूगीफल (सुपारी), ३. महुवा, ४. आम्र, ५. वट, ६. पीपल (अश्वत्थ), ७. ताड़, ८. खजूर, ९. पिप्पल, १०. प्लक्ष, ११. शमी** और **१२. जामुन** के वृक्ष पर बैठकर उपासना की जाती है। इनके ऊपर बैठने की असुविधा होने पर साधक इनके नीचे बैठकर भी इष्ट-साधन कर सकते हैं। ये वृक्ष '**कुल-वृक्ष**' के नाम से पुकारे जाते हैं।

१. श्लेष्मान्तक (लिसौढ़ा), २. करञ्ज, ३. बिल्व, ४. अश्वत्थ, ५. कदम्ब, ६. निम्ब, ७. वट, ८. औदुम्बर, ९. चम्पक और **१०. केसर**–ये दस वृक्ष '**काली-वृक्ष**' कहे जाते हैं। इनके ऊपर अथवा नीचे बैठकर एक-एक वृक्ष में दस हजार मन्त्र जपने का माहात्म्य है। इनके नीचे बैठ जप करने से अणिमादि अष्ट-सिद्धियों व मोक्ष की प्राप्ति होती है।

१. निम्ब, २. अश्वत्थ, ३. करञ्ज, ४. लिसौढ़ा, ५. कदम्ब, ६. बेल, ७. वट, ८. शाल, ९. ताल, १०. शाखोट (सेहुड़), ११. खजूर–ये '**तारा-वृक्ष**' हैं और **भगवती तारा** की साधना के लिए उपयोगी हैं।

१. लिसौढा, २. बहेड़ा, ३. शाखोटक (सेहुड़), ४. खजूर, ५. पिप्पल, ६. वट, ७. शाल, ८. ताल–ये '**छिन्नमस्ता-वृक्ष**' हैं। इनके ऊपर या नीचे बैठकर **भ० छिन्नमस्ता** के मन्त्रों को सिद्ध करते हैं।

ऊपर लिखे **नारियल** से **जामुन-वृक्ष** तक के बारह वृक्ष '**श्री श्रीविद्या-वृक्ष**' कहे जाते हैं। इनके नीचे अथवा ऊपर बैठकर मन्त्र-जप करने का फल निम्न-लिखित है–

नारियल में राज्य-लाभ, **पूगी-फल (सुपारी)** में मनोरथ-सिद्धि, **महुवे** में स्त्री-लाभ, **आम्र-वृक्ष** में सर्वज्ञता, **वट** में त्रिकाल (भूत-भविष्य-वर्तमान) का ज्ञान, **अश्वत्थ** में सर्व-काम-पूर्ति, **ताड़-वृक्ष** में जय, **खजूर** में राज्य-मान-प्रतिष्ठा की प्राप्ति, **पिप्पल** में वशीकरण, **प्लक्ष** में आकर्षण, **शमी वृक्ष** में राज्य-लक्ष्मी

और जामुन के पेड़ में धन-लाभ होता है । प्रत्येक वृक्ष के नीचे कम-से-कम दश हजार जप आवश्यक है ।

६. देव-वाहनों द्वारा विविध आसनों का सङ्केत : ध्यान देना चाहिए कि आसनों के लिए जो-जो पशु दर्शाए गए हैं, उनमें से बहुत से देवताओं के वाहन हैं । सिद्धि-प्राप्ति के लिए ही देवता उन्हें अपना वाहन बनाते हैं । यथा-**श्रीदुर्गा का सिंह, इन्द्र का ऐरावत हाथी और उच्चैश्रवा घोड़ा, कार्तिकेय का मयूर, गणेश का मूषक, शिव जी का बैल, यमराज का महिष, भगवान् विष्णु का गरुड़, शीतला माता का गर्दभ (गधा)**-ये सब इनके यान हैं अर्थात् इनके ऊपर आसन जमाकर ये इष्ट का ध्यान करते हैं, अतएव इन्हें सिद्धियाँ प्राप्त हैं । इन्हीं सिद्धियों को ये अपने सेवकों को देते हैं । इस प्रकार स्पष्ट है कि इन **देव-वाहनों** से साधकोपयोगी आसनों का सङ्केत मिलता है ।

कुबेर महाराज का वाहन **नर (मनुष्य)** है, अतएव उनका नाम **'नर-वाहन'** है । **धनद, राज-राज, धनाधिप, वैश्रवण, पौलस्त्य, किन्नरेश** इत्यादि **कुबेर** के अन्य नाम हैं । ये **श्री श्रीविद्या** के बारह प्रसिद्ध उपासकों में से एक हैं । इनके नाम से **'कुबेरोपासिता'** अथवा **'राजराजोपासिता 'श्री श्रीविद्या'** प्रसिद्ध हैं । **कुबेर** के अतिरिक्त शेष देवताओं के आसन पशुओं के हैं ।

जिन-जिन पशुओं के सजीव अथवा निर्जीव आसन बताए गए हैं, उन पशुओं की अस्थियों से बनी हुई मालाएँ भी आसन के बराबर ही महत्त्व रखती हैं ।

७. प्रेतासना महा-विद्याएँ और शवासनादि-विधान : दश महा-विद्याओं में अधिकांश **प्रेतासना (शवासना)** हैं अर्थात् वे शवों के ऊपर विराजमान हैं, इन आसनों पर विराज कर ही इनमें ईश्वरीत्व विद्यमान है और जगदीश्वरी बनी हुई हैं ।

श्री श्रीविद्या-पञ्च-प्रेतासना हैं । **१. ब्रह्मा, २. विष्णु, ३. रुद्र** और **४. ईश्वर**-ये चार सिंहासन के पाए हैं और पाँचवें **सदा-शिव** उसमें लेटे हुए गद्दे का काम देते हैं । उनके ऊपर **श्री श्रीविद्या राज-राजेश्वरी** विराजमान हैं, **कामेश्वर** छादन का काम करते हैं ।

श्रीकालिका भी **पञ्च-प्रेतासना** हैं । **१. अति-काल, २. कराल, ३. विकराल** और **४. कपाल-धारी**-ये चार पाद-रूप हैं, पाँचवें **संहार-शिव**-कशिपु (गद्दा) हैं । **महा-काल**-छादन हैं, उनके हृदय में **श्री महा-कालिका** हैं ।

महोग्र-तारा भी शव-सिंहासन-गता हैं, **भगवती छिन्नमस्ता** भी शवोपरि-विराजिता हैं ।

भगवती बगलामुखी स्वर्ण-सिंहासन-स्थिता, पञ्च-प्रेतासना के भेद से दो प्रकार की मानी गई हैं ।

भगवती राज-मातङ्गिनी उच्छिष्ट-भोजन-परा प्रेतासन-विराजिता और कदम्ब-वन में बिहार करती हैं ।

श्रीमहा-काल-भैरवी प्रेत-पञ्चक-संयुक्ता अर्थात् पञ्च-प्रेतासन पर स्थित हैं ।

धूमावती काकासन-समन्विता हैं और इनके वस्त्र मलिन हैं ।

लक्ष्मी पद्मासनस्था हैं और **भुवनेश्वरी** रत्न-सिंहासन पर विराजमान हैं ।

महा-विद्या योग-काली कुक्कुटासन में आरूढ़ शवोपरि विराजमान हैं ।

गुह्य-काली सप्त-प्रेतासना हैं । सात प्रेत निम्न-लिखित हैं-

ब्रह्मा विष्णुश्च रुद्रश्च, ईश्वरश्च सदा-शिवः । इन्द्रश्च भैरवश्चैव, सप्त-प्रेताः प्रकीर्तिताः ।।

भगवती कुब्जिका पाँच प्रेतों कें आसन पर विराजमान हैं । **वाराही भगवती** अश्वासना (घोड़े पर सवार) हैं । सम्पत्करी रथारूढ़ा हैं, **अघोरा भगवती** गोप-चक्र-स्थिता हैं । **वाराही** शवासना भी हैं ।

८. शवासन (मृतासन) : काली और **तारा** के उपासकों के लिए **शव-साधन-विधान** आवश्यक है । तथापि **शवासन** के अभाव में उसका अनुकल्प भी निर्दिष्ट किया गया है । यदि **शव का आसन** न मिल सके, तो उसके बदले में **कुश का 'विष्टर'** बनाकर उसके ऊपर अपना आसन जमावे । **'विष्टर'** को **रक्त-सूत्र** से अथवा पट्ट-सूत्र से वेष्टित करना चाहिए । **'विष्टर' में शिव** की और **अपने में शक्ति** की कल्पना कर उपासक प्रत्येक कार्य का साधन कर सकता है । **पचास कुशों का 'ब्रह्मा'** बनता है, उससे अधिक कुशों का **'विष्टर'** होता है । 'मेरु-तन्त्र' में उसकी महिमा बताते हुए लिखा है–

विष्टरः सर्व-यज्ञेषु, लक्षणं परिकीर्तितं । सुखोष्णोदक-सम्भूतां, शवासनात् परं स्मृतम् ।।

'मृतासन' के अनेक भेद हैं । यथा–**१. मृदु, २. अचूड़क, ३. कोमल** आदि । **'मृदु'** के सम्बन्ध में **'मत्स्य-सूक्त'** का वचन है–

अर्वाक्-षणमासतो गर्भ-च्युतमाह मृदुं बुधाः। चूड़ोपनयन-हीनं, मृदुमचूड़कं विदुः ।।

वहीं **'कोमल'** के सम्बन्ध में निम्न प्रकार बताया है–

निवृत्त-चूड़को बालो, हीनोपनयनः पुमान् । यो मृतः पञ्चमे वर्षे, तमेव कोमलं विदुः ।।

'योगिनी-हृदय' के अनुसार इन मृतासनों पर बैठकर साधना करने का अधिकार केवल **यति, वन-वासी, ब्रह्मचारी** और **भिक्षुक साधुओं** को ही है ।

९. मुण्डासन : मृत पशु या मानव शव के **'मुण्डों'** को विधि-पूर्वक छाँटकर स-विधि भूमि के भीतर स्थापित किया जाता है । **'मुण्डों'** के ऊपर प्रतिष्ठित **'एक-मुण्डासन', 'पञ्च-मुण्डी'** एवं **'नव-मुण्डी'** आसनों की बड़ी महिमा है । इनके सम्बन्ध में विशेष विवेचन आगे द्रष्टव्य है ।

१०. योगासन : विहित आसन पर बैठने की विविध मुद्राएँ **'योगासन'** नाम से प्रसिद्ध हैं । यथा–**१. पद्मासन, २. अर्धासन, ३. समासन या सुखासन, ४. सिद्धासन, ५. वीरासन** आदि । **इन आसन-मुद्राओं** को अपना कर बैठने से जप, पूजादि करने में विशेष सुविधा मिलती है । साथ ही इन **योगासनों** के अभ्यास के फल-स्वरूप शरीर नीरोग रहता है, मन में विकार नहीं उत्पन्न होते और मन एकाग्र होता है, जिससे समाधि लगकर देवता से तादात्म्य स्थापित होता है तथा साधक मोक्ष प्राप्त करता है ।

(१) पद्मासन : दोनों पैरों को जङ्घाओं के मध्य में इस प्रकार रखे कि दोनों तलुए ऊपर की ओर रहें । दोनों घुटनों पर दोनों हाथ भी ऐसे रखे कि हथेलियाँ ऊर्ध्व-मुखी रहें ।

(२) अर्धासन : दाईं जङ्घा पर बाँयाँ पैर रखकर बाँईं जङ्घा पर दायाँ पैर रखे, तो यह बनता है ।

(३) सिद्धासन : बाँएँ पैर की एड़ी को गुह्य-स्थान से लगाकर दाएँ पैर को बाँईं जङ्घा पर रखे ।

(४) वीरासन : दोनों घुटने मोड़कर दोनों पैर पीछे इस प्रकार रखे कि दोनों एड़ियों व तलुओं के ऊपर सुख-पूर्वक बैठा जा सके ।

●●●

पुष्प

'साधना' में पूजा के अवसर पर उपासक **चतुष्षष्ट्युपचार, षोडशोपचार, दशोपचार** अथवा **पञ्चोपचार** आदि से देवता का अर्चन करता है । इन सभी उपचारों में पुष्पों की गणना है । अतः पूजा के लिए **पुष्प** नितान्त आवश्यक हैं ।

१. पुष्पों के भेद : 'प्रयोग-पारिजात' में–**१. पर, २. अपर, ३. उत्तम, ४. मध्यम** और **५. अधम**–पाँच प्रकार के पुष्पों का उल्लेख है । मणि, रत्न और स्वर्ण-रजतादि धातु से बने पुष्प **'पर'** कहलाते हैं । ये पुष्प कभी भी पर्युषित नहीं माने जाते । वस्त्र और कागज के कटे हुए पुष्प **'अपर'** हैं । इनकी शुद्धि प्रति-दिन पूजावसर पर **जल-प्रोक्षण** से हो जाती है । वृक्षों से समुत्पन्न कुसुम **'उत्तम'** हैं । इन्हें प्रातः-काल चुनकर तीन सन्ध्या-पर्यन्त कार्य में ला सकते हैं । पुष्पों के अभाव में **फलों** से भी पूजा हो सकती है, अतः **फल-स्वरूप पुष्प–'मध्यम'** और फलाभाव में **पत्र** और **जल–'अधम पुष्प'** माने जाते हैं ।

'भविष्य-पुराण' लिखता है कि वन या उपवन में उत्पन्न **अपर्युषित** (जो बासी न हों), **कृमि-कीट-रहित, निश्छिद्र, प्रोक्षित पुष्प** और **पत्रों** से देवताओं की पूजा करनी चाहिए । ब्राह्मणों को **समिधा, पुष्प** और **कुश** अपने आप तोड़ कर लाने चाहिए । शूद्र द्वारा मँगाए गए अथवा मूल्य देकर खरीदे गए **समिधा, पुष्प** और **कुशों** से कर्म करनेवाला ब्राह्मण नरक-गामी होता है । ब्राह्मण के लिए निषेध **नित्यार्चन के पुष्पों** के विषय में है । यदि **एक सहस्त्र अथवा लक्ष पुष्प** चढ़ाने हों, तो वे मूल्य देकर लिए जा सकते हैं । यदि अपना उपवन न हो, तो दूसरों के उपवन से भी पुष्प लेने में चोरी नहीं मानी जाती ।

'वराह-पुराण' लिखता है कि किसी से **माँगे हुए पुष्पों से पूजा** करना अपराध है, किन्तु 'प्रयोग-पारिजात' की सम्मति है कि केवल **जल के निकट पुष्पों का माँगना** निषिद्ध है । अन्यत्र **पूजा के लिए पुष्पों की याचना** करने में दोष नहीं है । ब्राह्मण **क्रय-क्रीत कुसुमों** से भी अर्चना कर सकता है ।

२. त्यागने योग्य पुष्प–कृमि और कीटों से युक्त, पंखुड़ियों से हीन, पर्युषित (बासी, कुम्हलाए) तथा अपने आप भूमि में गिरे हुए, मिट्टी आदि से युक्त, केश-कीटादिकों से दूषित, निर्गन्ध अथवा अत्यन्त उग्र गन्धवाले, मलिन, सूँघे हुए, जो अपने आप न खिले हों और प्रयत्न द्वारा खिलाए गए हों, अशुद्ध-पात्र में स्थापित और माँगे हुए पुष्प पूजा के लिए निषिद्ध हैं ।

'स्वच्छन्द-सार' लिखता है कि **पलाश, जपा, बन्धूक** और **मन्दार पुष्प** निर्गन्ध होने पर भी चढ़ाए जा सकते हैं । फूल लाते समय यह ध्यान रखे कि पुष्प वस्त्र में न बाँधे जाएँ, न शिर में रखकर लाए जाएँ । उन्हें दोने में रखकर और दोने को हाथ में धारण कर लाना चाहिए । अग्नि के साथ पुष्प अथवा जल या अन्न नहीं ले जाना चाहिए । जल, अग्नि, गन्ध और पुष्प को कन्धे या सिर पर न ले जाना चाहिए । शरीर पर धारण किए हुए, धोती में बँधे हुए, बाँएँ हाथ में रखे हए तथा जल से प्रक्षालित पुष्प पूजा के लिए निषिद्ध हैं । **समिधा, पुष्प** और **कुशा** को ले जानेवाले पुरुष को प्रणाम न करना चाहिए, न इनको ले जानेवाला पुरुष किसी को प्रणाम करे ।

अर्थात् ये वस्तुएँ **मौन धारण** कर ले जानी चाहिए। **सूखा, पर्युषित (बासी),** काला, भूमि में गिरा हुआ **पुष्प** देवताओं को नहीं चढ़ता। **फूलों की कलियाँ** देवताओं को नहीं चढ़ाई जातीं। **चम्पा और कमल** के विषय में शुष्कादि दोष लागू नहीं होते।

३. सभी देवताओं के योग्य पुष्प : जाती, शमी, कुश, कुटज, मल्लिका, करवीर, नाग, पुन्नाग, अशोक, रक्त-कमल, नील-कमल, चम्पक, वकुल, बिल्व-पत्र और पवित्रक।

भगवती के योग्य पुष्पों के विषय में 'देवी-पुराण' लिखता है कि जिस ऋतु में जो पुष्प होते हैं, वे **जगदम्बिका** को चढ़ाए जा सकते हैं। इनके अतिरिक्त मल्लिका, जाति, किंशुक (ढाक), चम्पा, किङ्करात (किङ्किरा), पाटल, प्रवकुल, मन्दार, निरीटक (लोध्र-पुष्प), कनेर, अर्क-पुष्प, शिंशुप, अपराजिता (विष्णु-क्रान्ता), सब प्रकार के कमल पुष्प, दमन, सिन्दुवार (निर्गुण्डी), इन्द्राणिका, मरुवक (मरुवा), कुशोकी, मञ्जरी, बिल्व-पत्र, सब प्रकार के स्थल-कमल, यथा-योग्य समस्त औषधियों के सुन्दर पत्र और पुष्प, सब धान्यों के फूल और पत्र **माता की पूजा** में उपयोगी हैं। 'पुष्प-सार-निधि' और 'प्रयोग-पारिजात' में लिखा है कि **बिल्व-पत्रों** से पूजा करने से राजसूय यज्ञ का फल मिलता है। **करवीर-माला** के चढ़ाने से अग्निष्टोम का फल और **वकुल पुष्पों** की माला चढ़ाने से वाजपेय यंज्ञ का फल मिलता है।

'शाक्तानन्द-तरङ्गिणी' में लिखा है कि **रक्त-कमल, रक्त-जवा, कालागरु पुष्प, अपराजिता** और **करवीर** (कनेर)–ये पाँच प्रकार के पुष्प देव-मय हैं। **विष्णु, गणेश, सूर्य, ब्रह्मा** तथा **कालिका**–ये पाँच देवता पञ्च-दलों में सदैव निवास करते हैं। **जवा, करवीर** और **अपराजिता**–इन तीन प्रकार के पुष्पों को **महादेवी** को अर्पित करने से कोटि-पूजा का फल मिलता है। इन सब पुष्पों के मध्य-भाग में **ब्रह्मा**, मूल-भाग में **विष्णु**, अग्र-भाग में **रुद्र** और फलों (पत्तों) में सब देवता निवास करते हैं। मल्लिका, उत्पल (कमल), शमी, पुन्नाग, चम्पक (चम्पा), अशोक, कर्णिकार, द्रोण-पुष्पं, करवीर, जवा, कुंकुम, नागकेशर–इन सब पुष्पों को जो भक्ति-भाव से **दुर्गा भगवती** को चढ़ाता है, वह परम पद को पाता है।

अन्यत्र लिखा है कि पुष्प के मूल में **ब्रह्मा**, मध्य में **विष्णु**, अग्र-भाग में **रुद्र**, फलों (पंखुड़ियों) में सब देवता और पुष्प के रस में चराचर स्थित है। **पुष्प सर्व-देव-मय** है, अतः उसके द्वारा पूजा करने से देवताओं की तृप्ति होती है। यही कारण है कि सब प्रकार की पूजाओं में पुष्प अवश्यमेव रखा गया है और यह कहा जाता है कि बिना पुष्पों के पूजा नहीं होती।

'रुद्र-यामल' और 'शक्ति-यामल' में लिखा है कि **सुन्दरी, भैरवी, काली, तारा, ब्रह्मा** और **सूर्य** की पूजा यदि बिना **तुलसी** के की जाती है, तो वह कदापि पूरी नहीं होती। **सावित्री, भवानी, दुर्गा देवी** और **सरस्वती** की पूजा जो **तुलसी-पत्रों** से करता है, उसकी सब मनोकामनाएँ पूर्ण होती हैं।

'हेमाद्रि' लिखता है कि–**कमल** पाँच रात तक, **बिल्व-पत्र** दस रात पर्यन्त और **तुलसी** ग्यारह दिन तक प्रक्षालन कर चढ़ाए जा सकते हैं।

४. उक्त और अनुक्त पुष्प : पाटला और **शमी पत्र**–**दुर्गा** के लिए विहित (उक्त) भी हैं और निषिद्ध (अनुक्त) भी। **तिलक पुष्प, मालती, वाण** (कर-शाला), **तुलसी, भृङ्गराज** और **तमाल**–**शिव** तथा **दुर्गा** के लिए उक्त एवं अनुक्त दोनों हैं अर्थात् चढ़ाने की बात भी है और निषेध भी है। **जय, काश, सफेद-कमल,**

शुभ्र-मन्दारक-दुर्गा और **भगवान् विष्णु** के लिए उक्त तथा अनुक्त दोनों हैं । **विष्णु** और **शिव** के लिए **अगस्ति, अति-मुक्त (माधवी लता)** और **तिरीट (लोध्र पुष्प)** निषिद्ध भी हैं और विहित भी हैं । **अपामार्ग** का पुष्प दुर्गा के लिए हिताहित दोनों है ।

५. निषिद्ध पुष्प : अक्षत, अनर्क और **धुत्तूर (धतूरा)** पुष्प **भगवान् विष्णु** के लिए नहीं चढ़ाए जाते । 'मेढाद्रि' का सिद्धान्त है कि **अक्षत केवल शालग्राम शिला** पर नहीं चढ़ाए जाते, **भगवान् की मूर्ति** पर चढ़ाए जाते हैं । **सदा-शिव** के लिए **बन्धूक, केतकी (केवड़ा), कुन्द, केसर, कुब्ज, जपा, मालती** और **यूथिका** पुष्प नहीं चढ़ाए जाते हैं । **शक्ति** के लिए **दूर्वा** और **मन्दार** पुष्प चढ़ाने का निषेध है । **सूर्य भगवान्** के लिए **बिल्व-पत्र** और **तगर पुष्प** चढ़ाने में दोष है । **तगर पुष्प**–शुभ्र और नील वर्ण के भेद से दो प्रकार के होते हैं । **गणेश जी** के लिए **तुलसी** नहीं चढ़ाई जाती ।

६. मध्यम फल-रूप 'पुष्प' : जम्बू (जामुन), दाड़िम (अनार), जम्बीर (जैमरा), चिञ्चिणी (इमली), बीजापूर (बिजौरा), कदली (केला), धात्री (आँवला), बेर, आम, कटहल के फलों से देवताओं की पूजा हो सकती है ।

७. अधम पत्र-रूप 'पुष्प' : तुलसी, वकुल (मौलसिरी), चम्पा, सरोजनी, बिल्व-पत्र, कल्हार (रक्त-कमल), दमन, मरुवक (मरुवा), कुश, दूर्वा, नाग-वल्ली (पान), अपा-मार्ग, विष्णु-क्रान्ता, अगस्ति और धात्री (आँवला) के पत्रों और फलों से भी देवताओं की पूजा की जा सकती है ।

८. पर्युषित पुष्प-विचार : 'भविष्य-पुराण' में लिखा है कि **कमल, चम्पक, तुलसी, अगस्त्य, वकुल, बिल्व-पत्र** और **गङ्गा-जल**–इनके बासी होने या माली के घर में रहने का दोष नहीं होता ।

पर्युषित (बासी) का अपवाद–'पारिजात' में लिखा है कि फूल, पत्ते तथा जल बासी नहीं लेने चाहिए, किन्तु **तुलसी, बिल्व-पत्र, अगस्ति-पत्र** तथा **गङ्गा-जल** के बासी होने का दोष नहीं होता । 'स्कन्द-पुराण' का वचन है कि **दमनक (द्रोण-पत्र)** की माला **भगवान् विष्णु** और **भगवती जगदम्बा** को परम प्रिय है, अतः वह बासी या सूखी हुई भी दूषित नहीं होती । 'प्रयोग-पारिजात' में लिखा है कि विकार-रहित पुष्पादिकों के बासी होने पर गन्धोदक से तीन बार प्रोक्षण कर उनको पूजा के कार्य में ले लेना चाहिए तथा **बिल्व-पत्र, तुलसी-दल** और **वकुल-पुष्प** सूखे हुए भी देवताओं पर चढ़ा देने चाहिए ।

स्थल-कमलों और **जल-कमलों** से, विहित (शास्त्रोक्त) और अविहित (शास्त्रों में निषिद्ध) जैसे भी पुष्प मिलें, **देवी की पूजा** भक्ति-पूर्वक करनी चाहिए । वस्तुतः **देवी** की ही नहीं, सब **देवताओं की पूजा** सब प्रकार के पुष्पों से, चाहे वे शास्त्रों में उक्त हों या अनुक्त, भक्ति के साथ भक्त बराबर कर सकता है । इसमें कोई दोष नहीं अर्थात् **भक्त की भक्ति** के सामने विहित-अविहित, निषिद्ध-अनिषिद्ध की कोई बात नहीं । जिस वस्तु को वह प्रेम-पूर्वक चढ़ाता है, उसे उसका **इष्ट-देव** स्वीकार करता ही है क्योंकि भगवान् तो भक्तों के वश में रहते हैं । श्री ललिता-सहस्त्र-नाम में लिखा है कि जगदम्बा भक्त-प्रिया है, भक्ति के वशीभूत है और भक्ति से ही मिल सकती है–भगवान् के लिए भी ऐसा ही लिखा है ।

अतः साधक प्रत्येक प्रकार के **पत्र-पुष्प** अपने **इष्ट-देवता** के लिए **भक्ति-भाव** से चढ़ा सकता है ।

●●●

जप-माला

१. 'माला' की आवश्यकता

दीक्षा के अनन्तर मन्त्र-सिद्धि के लिए **'पुरश्चरण'** करना आवश्यक है । **पुरश्चरण** के पाँच अङ्ग हैं— **१. मन्त्र-जप, २. होम, ३. तर्पण, ४. अभिषेक** और **५. ब्राह्मण-भोजन** । इन अङ्गों को क्रमशः एक साथ करना **'पुरश्चरण'** कहलाता है । कई लोग निश्चित समय तक मन्त्र-जप कर लेते हैं, किन्तु उत्तम पक्ष यही है कि नित्य-प्रति पुरश्चरण के सब अङ्गों की पूर्ति की जाए । जब तक मन्त्र-सिद्धि न हो, तब तक **पुरश्चरण** करते रहना चाहिए । **'पुरश्चरण' में मन्त्र का जप** मुख्य है और उसके लिए **'माला'** सबसे आवश्यक वस्तु है क्योंकि **बिना माला के जप की संख्या** का निश्चय नहीं हो सकता । **अनिश्चित संख्या में मन्त्र का जप** करना **'पुरश्चरण'** में लाभकारी नहीं होता ।

२. 'माला' के भेद

मन्त्र-शास्त्र में **१. वर्ण-माला** (अक्षर-माला), **२. कर-माला** (अंगुलि-पर्व-माला—अँगुलियों के पोरों की माला), **३. चर-माला** अर्थात् मणियों (मनकों) की माला—ये तीन प्रकार की मालाएँ बताई हैं ।

शती-माला और **अष्टोत्तर-शती** के भेद से प्रथम दो मालाएँ दो प्रकार की होती हैं । **अष्टोत्तर-शती-माला** भी दो प्रकार की है । अतः **'वर्ण-माला'** तीन प्रकार की होती है—**१. शती-वर्ण-माला** पचास अक्षरों के अनुलोम-विलोम से बन जाती है । **२. शती-माला** में 'अ-क-च-ट-त-प-य-श'—इन आठ वर्गाक्षरों को जोड़ देने से **अष्टोत्तर-शती (एक सौ आठ अक्षरों की)** माला हो जाती है, **३. अष्टोत्तर-शती-माला** का दूसरा प्रकार पूर्वोक्त पचास वर्णों के साथ **'ह्रीं ऐं क्लीं श्रीं'** इन चार बीजाक्षरों के जोड़ देने से तथा चौवन के **अनुलोम-विलोम** से बन जाता है । इन तीनों प्रकार की मालाओं का **मेरु 'क्ष'-कार** माना जाता है ।

३. सर्व-श्रेष्ठ 'वर्ण-माला' (अक्षर-माला, मातृका-माला, रहस्य-माला)

शास्त्रों ने सर्व-प्रकार की मालाओं में **'वर्ण-माला'** को सर्व-श्रेष्ठ बतलाया है । इसे **'मातृका-माला', 'अक्ष-माला', 'स्थिर-माला', 'रहस्य-माला'** भी कहते हैं । यथा (शक्ति-सङ्गम तन्त्र, तारा-खण्ड)—

१—वर्ण-माला तथा देवि!, सर्व-कायार्थ-साधिनी ।

२—मातृका-मालया जपः, सर्वत्रैव प्रशस्यते ।

३—अथ विद्या-मयी देवि!, मालिका कार्य-साधिनी ।

४—मातृका-वर्ण-रूपां च, मालिकां कारयेच्छिवे! जपस्तेन प्रकर्तव्या, सर्व-देव-स्वरूपिणी ।।

५—पञ्चाशन्मणिभिर्माला, सर्व-कर्म-साधिका । अनया सर्व-मन्त्राणां, जपः सर्व-समृद्धिदः ।।

गौतमीय तन्त्र—

६—प्रत्येक-वर्ण-युग्-मन्त्राः, जप्ताः स्युः सर्व-सिद्धिदाः । आर्याद्या अपि किं चान्यत्, प्रोक्तेयं स्थिर-मालिका ।।

'वर्ण-माला' इस प्रकार सबसे श्रेष्ठ माला है । इस **'अक्षर-माला'** या **'वर्ण-माला'** के अक्षरों को विस-तन्तु (कमल-नाल के तन्तु) के समान अत्यन्त सूक्ष्म (बारीक) चित्रिणी नाड़ी में ग्रथित (गुँथी हुई)

मान कर मन्त्र जपना चाहिए। अर्थात् जिस प्रकार दाने (मनके) किसी सूत्र में गूँथे जाते हैं, वैसे ही यह **अक्षर-मालिका- चित्रिणी नाड़ी से गुँथी हुई है, यह मानना चाहिए।**

उपर्युक्त **वर्ण-माला का ध्यान** निम्न-लिखित प्रकार से करना चाहिए-

अन्तर्विद्रुम - भासमान - भुजगां, सुप्तोत्थ - वर्णोज्ज्वलाम् ।
आरोहामवरोहिकां शत - मयीं, वर्गाष्टकाष्टोत्तरीम् ।।
साक्षात् ब्रह्म - मयीं 'क्ष' मेरु - सहितां, श्रीमातृकाक्षावलीम् ।
विद्यां नौमि समस्त - मन्त्र - जननीं, ज्ञानैक - दीपांकुराम् ।।

उक्त ध्यान में **पञ्चाशत्-वर्णों** के **आरोहावरोह-क्रम (अनुलोम-विलोम)** से **शती** और **'अ-क-च-ट-त-प-य-श'** के योग से **अष्टोत्तर-शती**, 'क्ष'-कार मेरु-सहित, सम्पूर्ण मन्त्रों को देनेवाली, ज्ञान-प्रदीप की अंकुर-स्वरूपा, ब्रह्म-मयी **'अक्षर-माला'** (अ से लेकर क्ष-कार-पर्यन्त अक्षरों की माला) को नमस्कार किया गया है।

'विश्वसार तन्त्र' के अनुसार **'वर्ण-माला'** का उक्त ध्यान निम्न प्रकार है-

अन्तर्विद्रुम - भासमान - भुजगी सु - प्रोत - वर्णोज्ज्वला।
आरोह - प्रति - रोहतः शत - मयी वर्गाष्टकाष्टोत्तरा ।।

देवनागरी लिपि के **अकारादि-क्षकारान्त पञ्चाशत् वर्णों** की यह माला **शब्द-ब्रह्म-स्वरूपिणी** है। यह **सर्व-देव-मयी** है और **सद्यः सिद्धि-दात्री** है। इस माला से **सभी देवताओं के मन्त्र** जपे जा सकते हैं। सब आचारों में यह माला प्रशस्त है। **'अ'** से **'क्ष'** तक के **पचास वर्णों** में से प्रत्येक वर्ण से अपने इष्ट-मन्त्र को संयुक्त करके **'वर्ण-माला'** से **अनुलोम-विलोम** से जपना चाहिए। **'क्ष'** इस माला का **मेरु** है।

'मुण्डमाला-तन्त्र' में **अष्टोत्तर-शती-माला** का एक अन्य प्रकार यह बताया है कि **'वर्ण-माला'** के आदि में **'ऋ ॠ ऌ ॡ'** इन क्लीव-चतुष्टय को जोड़कर अनुलोम-विलोम करे।

'वर्ण-माला' में जप करने के पूर्व अभ्यास द्वारा **'माला'** को मन में स्थिर कर लेना चाहिए। इसके लिए पहले **'अं आं इं ईं'** इत्यादि क्रम से **'शं षं सं हं ळं'** तक **'अनुलोम'**-पाठ करे। यह पाठ करना सरल होगा, फिर **'विलोम'** अर्थात् उलटा पाठ करे अर्थात् **'ळं हं सं षं शं'** से प्रारम्भ कर **'ईं इं आं अं'** तक पाठ करे। अन्त में **'अं कं चं टं तं पं यं शं'** इन आठ वर्णों का उच्चारण करे। इस प्रकार **१०८ वर्णों की 'मातृका-माला'** बन जाती है। **'क्ष-कार'** मेरु-रूप रहेगा, जिसे मन्त्र में पुटित नहीं किया जाएगा।

'विलोम' पाठ में प्रारम्भ में कठिनाई होगी, किन्तु प्रति-दिन ५-७ बार पाठ करने से एक सप्ताह में अभ्यास हो जायगा और पूरी **'वर्ण-माला'** मन में स्थिर हो जायगी।

उक्त प्रकार से मन में स्थिर बनी **'वर्ण-माला' में अभीष्ट मन्त्र का जप** करे। उदाहरणार्थ **'राम'**-मन्त्र जपना है। पहिले **'ॐ'** का उच्चारण कीजिए। यह माला का **'शीर्ष'** (प्रारम्भ) हो गया। इसके बाद **'राम'** बोलिए। फिर **'अं'**, फिर **'राम'**, फिर **'आं'**, फिर **'राम'**, इसी प्रकार **'हं ळं'** तक चले चलिए। पुनः विलोम से **'राम'**, फिर **'ळं'**, फिर **'राम'**, फिर **'हं'**, फिर **'राम'**, फिर **'सं'**, इसी प्रकार **'अ'**-कार तक चले जाइए। यह **'शती-माला'** हो गई। इसी प्रकार **अष्टोत्तर-शती-माला** भी समझिए।

'कुण्डलिनी'-रूपी सूत्र में निबद्ध 'वर्ण-माला' का विधान

'कुण्डलिनी' के दो मुखों में से प्रथम मुख उठाकर **'मूलाधार'** के **चतुर्दल** से विलोम-क्रम में **'सं षं शं वं'** इन चार वर्णों को क्रमशः एक-एक दल से ग्रास करे। फिर **'स्वाधिष्ठान'** के **षट्-दल** से **'लं रं यं मं भं बं'** इन छः वर्णों को उसी प्रकार ग्रास करे। तब **'कुण्डलिनी'**-मुख को उठाकर **'मणिपूर'** के दश-दलों में स्थित **'फं पं नं धं दं थं तं णं ढं डं'** इन दश वर्णों को ग्रास कर **'अनाहत'** के **द्वादश दलों** से **'ठं टं ञं झं जं छं चं ङं घं गं खं कं'** इन बारह वर्णों को क्रमशः ग्रास करे। तदनन्तर **'विशुद्ध'** के **षोडश दलों** से **'अः अं औं ओं ऐं एं लृं ऌं ॠं ऋं ऊं उं ईं इं आं अं'** इन सोलह वर्णों को क्रमशः ग्रास कर **'आज्ञा'**-चक्र के द्वि-दल में स्थित **'क्ष'**-वर्ण को कुछ ग्रास करे। इसके बाद **'कुण्डलिनी'** के द्वितीय मुख अर्थात् पुच्छ **(पूँछ)** को उठाकर उसके द्वारा **'ळं'** वर्ण को ग्रास कर **'हं'** का ग्रास करे। पुनः **'क्षं'** को कुछ ग्रास करे। इस प्रकार **अ-कार** से **ळ-कार** तक **५० वर्णों की 'मातृका-माला'– 'कुण्डलिनी'**-रूप सूत्र में ग्रथित होगी। दोनों मुखों द्वारा ग्रहीत **'क्षं'**-कार इस माला का **'मेरु'** रहेगा। इस विशिष्ट माला का चित्र भी आवरण-पृष्ठ पर दिया गया है।

'मातृका-माला' (वर्ण-माला) में जप की विधि

उक्त **'मातृका-माला'** के प्रत्येक वर्ण से अभीष्ट मन्त्र को सम्पुटित कर जप करने की विधि है। मानस जप में **श्वास रोक कर १०८ जप करने की रीति है।** जो उतने समय तक श्वास न रोक सके, उनके लिए **५० वर्णों** अथवा केवल **अष्ट-वर्गाक्षरों** में ही जप करने का निर्देश है। श्वास छोड़कर जप करने से **'माला'** में छिन्न-दोष उत्पन्न होता है और छिन्न-माला से आयु-क्षय होता है। इसी से उक्त प्रकार की विधि निर्दिष्ट है।

'कुण्डलिनी' को **सहस्त्रार** तक पहुँची हुई ध्यान करना चाहिए अर्थात् वह माला के आकार में परम शिव को वेष्ठित किए है। सर्वत्र **शिव-शक्त्यात्मक कुण्डलिनी शक्ति** या **ब्रह्म-नाड़ी** को ही **'वर्ण-माला'** के सूत्र में भावना करनी चाहिए।

'वर्ण-माला' की उत्कृष्टता

'वर्ण-माला' का जप कठिन अवश्य है, परन्तु सन्देह नहीं कि सद्यः सिद्धि-दायिनी है। इसलिए शास्त्रों ने जहाँ यह देखा कि जप में अन्य मालाएँ ही सुगम होने के कारण विशेष करके प्रयुक्त होंगी, तो **मातृका-न्यास** तथा **मातृकाओं से संपृक्त न्यास** अनिवार्य कर दिए। ये न्यास-प्रयोग **'वर्ण-माला'** की उत्कृष्टता को सिद्ध कर देते हैं। मनुष्य का विज्ञान-मय **षट्-चक्र-शरीर-वर्ण-माला** का ही बना हुआ है। शरीर का **मेरु-दण्ड** ऊपर शिर से और नीचे कमर से मिला है। शिर के अन्दर **सहस्त्रार पद्म** है, जिसे **'अकुल'** तथा **'शून्य-चक्र'** कहते हैं। इसके नीचे क्रम से मेरुदण्ड पर–**१. आज्ञा, २. विशुद्ध, ३. अनाहत, ४. मणिपुर, ५. स्वाधिष्ठान, ६. मूलाधार**–ये छः चक्र हैं।

१. आज्ञा-चक्र का स्थान **भ्रू-मध्य** है। यह **द्वि-दल-पद्म** है–एक पर **'क्षँ'** और दूसरे दल पर **'हँ'** वर्ण है। **२. मूलाधार-चतुर्दल** के एक-एक दल पर क्रम से **'सँ, षँ, शँ, वँ'** चार वर्ण हैं। **३. स्वाधिष्ठान-षड्-दल** के एक-एक दल पर **'लँ, रँ, यँ, मँ, भँ, बँ'** वर्ण क्रम से अवस्थित हैं। **४. मणिपुर-दश-दल** के एक-एक दल पर क्रम से **'फँ, पँ, नँ, धँ, दँ, थँ, तँ, णँ, ढँ, डँ'** वर्ण हैं। **५. अनाहत-द्वादश-दल** के एक-एक दल पर क्रम से **'ठँ, टँ, ञँ, झँ, जँ, छँ, चँ, ङँ, घँ, गँ, खँ, कँ'** वर्ण तथा **६. विशुद्ध-षोडश-दल** के एक-एक दल पर क्रम से **'अः, अँ, औँ, ओँ, ऐँ, एँ, लृँ, ऌँ, ॠँ, ऋँ, ऊँ, उँ, ईँ, इँ, आँ, अँ'** वर्ण हैं।

इस प्रकार **विज्ञान-मय शरीर पञ्चाशत्-वर्ण-मातृकाओं** का ही बना हुआ है । इससे भी '**वर्ण-माला**' की महिमा स्पष्ट होती है ।

यही नही **वर्णात्मक शरीर** स्वयं **सदा-शिव का शब्द-ब्रह्म-स्वरूप** है । इसीलिए जीव को शिव कहा है । पाश-बद्धता के कारण ही उसका जीवत्व है । उसे अपना शिवत्व याद रहे और वह जीवत्व छोड़ दे, इसके लिए अपने **शब्द-ब्रह्म-स्वरूप शरीर** का सदा ध्यान करना चाहिए । **पञ्चाशत्-वर्ण-मातृका** ही उसका यह शरीर है । अतएव जीव को शिवत्व प्राप्त करने के लिए '**वर्ण-माला' का जप** आवश्यक है ।

सदा-शिव का '**शब्द-ब्रह्म**' शरीर ही **पञ्चाशद्-वर्ण-मातृका** है । देखिए 'शिव-पुराण', अध्याय ३–

'**भगवान्** शङ्कर लिङ्ग में हँसते हुए **दिव्य-शब्द-मय स्वरूप** को धारण कर स्थित हुए । '**अ**' उनका शिर, '**आ**' ललाट, '**इ**' दक्षिण-नेत्र, '**ई**' वाम-नेत्र, '**उ**' दक्ष-श्रोत्र, '**ऊ**' वाम-श्रोत्र, '**ऋ**' '**ॠ**' कपोल-द्वय, '**ऌ**' '**ॡ**' नासा-पुट-द्वय, '**ए**' '**ऐ**' ओष्ठाधर, '**ओ**' '**औ**' दन्त-पंक्ति-द्वय, '**अँ**' '**अः**' तालु-द्वय, **क-वर्ग** के पञ्चाक्षर दक्षिण भुजा, **च-वर्ग** के पञ्चाक्षर वाम-भुजा, **ट-वर्ग** के पञ्चाक्षर दक्ष-पाद, **त-वर्ग** के पञ्चाक्षर वाम-पाद, '**प**' उदर, '**फ**' दक्षिण-पार्श्व, '**ब**' वाम-पार्श्व, '**भ**' स्कन्ध, '**म**' हृदय, '**य, र, ल, व, श, ष, स**' सात-वर्ण त्वक्, असृग्, मांस, मेद, अस्थि, मज्जा, शुक्र–ये सात धातुएँ, '**ह**' उनकी नाभि, '**क्ष**' उनका मेढ्र था ।'

थोड़े से हेर-फेर के साथ लगभग उपर्युक्त प्रकार ही **बहिर्मातृका न्यास** का है । इस प्रकार यह सर्वथा सुस्पष्ट है कि जप-कार्य के निमित्त '**वर्ण-माला**' ही **सर्व-श्रेष्ठ माला** है ।

यही '**वर्ण-माला**'–**कालिका** की '**मुण्ड-माला**' है । निरुत्तर तथा भैरव तन्त्रों में **कालिका** के ध्यान में '**पञ्चाशद्-वर्ण-मुण्डाली**' शब्द का प्रयोग है । इससे भी स्पष्ट '**राधा-तन्त्र**' का निम्न वचन है–

अकारादि-क्षकारान्ता-पञ्चाशन्मातृकाक्षरा, अव्यया अपरिच्छिन्ना, त्रिपुरा-कण्ठ-संस्थिता ।।

अर्थात्–**अ-कार** से **क्ष-कार** तक पचास अव्यय अपरिच्छिन्न मातृकाक्षर त्रिपुरा के कण्ठ में स्थित हैं । 'कामधेनु तन्त्र' का निम्न पद भी द्रष्टव्य है–**मम कण्ठे स्थितं बीजं, पञ्चाशद्-वर्णमद्भुतम् ।**

अर्थात्–मेरे गले में **पञ्चाशद्वर्ण-बीज** स्थित हैं । तात्पर्य यह कि काली-मूर्ति के ध्यान में जो '**मुण्ड-माला**' बतलाई गई है, वह '**वर्ण-माला**' ही है । यह '**वर्ण-माला**'–नाम-रूपात्मक विश्व की द्योतक है । **अक्षर** अथवा **वर्ण-माला**–'शब्द' तथा उसके 'अर्थ' की मूर्ति है । जब जगदम्बा ने स्थूल प्रपञ्च का संहार करके उसको अपने में लय कर दिया, तो **नाम-रूपात्मक** जगत् का उसमें लय होना ठीक ही हुआ । वही **जगदम्बा में विलीन नाम-रूपात्मक विश्व जगदम्बा के कण्ठ** की '**वर्ण-माला**' हो गया । इसी को निर्देश करके 'शक्ति-सङ्गम तन्त्र' में कहा है–

१–ब्रह्म-माला मुण्ड-माला, तद्धाना तु कालिका ।
२–ब्रह्म-माला-धारणात्तु, ब्रह्म-विद्या प्रकीर्तिता ।
३–केवलं मुण्ड-माला तु, सर्व-सिद्धि-पराम्बिका ।
४–मुण्ड-रूपाश्च मणयः, सर्व-सिद्धि-मयाः स्मृताः ।

'पुरश्चरण-बोधिनी' में इस सम्बन्ध के निम्न वचन मननीय हैं–

अकारादि-क्षकारान्ता, मातृका-बीज-रूपिणी । विसर्गश्चैव विन्दुश्च, त्रिशक्तिर्ब्रह्म-विग्रहः ।।

वर्णात् प्रजायते ब्रह्मा, तथा विष्णुः प्रजायते । रुद्रश्च जायते देवि! जगत्-संहार-कारकः ।।
मम कण्ठे स्थिता या सा, शारदा वाम-लोचना । तस्या गर्भे स्थिता देवि! वीजानि विविधानि च ।।
विधृत्य कण्ठ-देशे तु, शिवोऽहं कमलानने! नाना-वर्ण-युतं शुद्धं, तन्त्राणां सारमुत्तमम् ।।
पञ्चाशत् -मातृका देवी, नाना-सुख-विलासिनी । नाना-विद्या-मयी देवी, महा-विद्या-मयी तथा ।।
सर्व-वर्ण-मयी देवी, सर्व-वर्ण-मयी परा ।

'गौतमीय तन्त्र' में लिखा है–

पञ्चाशल्लिपिभिर्माला, विहिता जप-कर्मसु । अकारादि-क्षकारान्ता, अक्ष-माला प्रकीर्तिता ।।
क्षर्णं मेरु-मुखं तत्र, कल्पयेन्मुनि-सत्तम! । अनया सर्व-मन्त्राणां, जपः सर्व-समृद्धिदः ।।

उपर्युक्त उद्धरणों से 'वर्ण-माला' की सर्वोत्कृष्टता स्पष्ट है । 'वर्ण-माला' द्वारा जप-साधना करके सब प्रकार की अभीष्ट-सिद्धि ही नहीं, नाम-रूपात्मक संसार से सहज ही मुक्ति मिल सकती है ।

'वर्ण-माला' के अन्तर्गत दो 'ल' का रहस्य

'वैशम्पायन संहिता' में लिखा है कि रुद्र-रूप महादेव ने प्रलयाग्नि से पृथ्वी का उद्धार करते समय पृथ्वी-वीज 'ल-कार' का भी उद्धार किया था । अतः इस 'ल'-कार को लेकर 'वर्ण-माला' में दो 'ल' विद्यमान हैं । इसी से ह-कार के बाद 'ल' का एक बार पुनः उच्चारण होता है ।

४. 'कर-माला' (अँगुलियों के पोरों से बनी)

'कर-माला' में अँगुलियों की केवल दश पोरियों (पर्वों) में ही जप होता है । इन दस पोरियों में दश बार जपने से **शती-माला** के जप के बराबर जप हो जाता है ।

(१) शक्ति-माला : शक्ति-'कर-माला' के विषय में 'यामल' में निम्न वचन है–

अनामा की तीन पोरी, कनिष्ठा की तीन पोरी, मध्यमा की तीन पोरी और तर्जनी के मूल पर्व (पोरी) पर दक्षिण की ओर जपने से अर्थात् अनामा के मध्य पर्व से आरम्भ कर, अनामा के मूल पर्व में जप कर कनिष्ठा के मूल, मध्य और अग्र पर्वों में क्रमशः जप करे । फिर अनामा के अग्र पर्व में जप कर मध्यमा के अग्र, मध्य और मूल–इन तीन पर्वों पर क्रमशः जप कर अन्त में तर्जनी के मूल पर्व पर जपने से दश संख्या बन जाती है । तर्जनी के मध्य और अग्र–इन दो पोरों को **'मेरु'** माने । उनमें जप न करे ।

उक्त प्रकार जप दाएँ हाथ की अँगुलियों में करना चाहिए । इसके लिए दाएँ हाथ को हृदय पर इस प्रकार रखे कि कर-तल ऊर्ध्व-मुख रहे । अँगुलियाँ कुछ मुड़ी हुई परस्पर मिली रहें । उनके बीच में छिद्र न रहे । अँगूठे के अग्र भाग से पर्वों के मध्य भाग को स्पर्श करते हुए जप करना चाहिए । पर्वों के सन्धि-स्थान या उनके अग्र भाग का स्पर्श नहीं होना चाहिए, अन्यथा जप निष्फल होता है । जप-काल में हाथ वस्त्र से ढँका रहना चाहिए ।

गणना के लिए बाँयाँ हाथ भी वस्त्र से ढँका हुआ दाएँ हाथ के नीचे हृदय के समीप ही रहना चाहिए । जब पहली बार दस बार जप चुके, तब बाँएँ हाथ के अँगूठे के अग्र भाग से बाँईं अनामिका के मध्य पर्व को स्पर्श करे । दूसरी बार दस की जप-संख्या पूरी होने पर अँगूठे को उठाकर अनामा के मूल पर्व के मध्य में स्पर्श करे । इसी प्रकार क्रमशः बाँईं तर्जनी के मूल पर्व तक पहुँचने पर जप-संख्या १०० हो जाएगी ।

अन्त में आठ बार जपने के लिए (१) दाईं अनामिका के मूल पर्व से प्रारम्भ कर, (२) कनिष्ठा के मूल, (३) मध्य, (४) अग्र पर्वों में जप कर, (५) अनामा के अग्र-पर्व में जप करे । फिर क्रमशः (६) मध्यमा के अग्र, (७) मध्य, (८) मूल पर्वों में जप करे । इस प्रकार अतिरिक्त आठ बार जप होकर १०८ की जप-संख्या पूर्ण हो जाएगी ।

इस '**शक्ति-कर-माला**' में जो तर्जनी के अग्र-भाग और मध्य-भाग में जप करता है, उसकी आयु, विद्या, यश और बल नष्ट हो जाते हैं ।

(२) शिव-माला : पुरुष देवताओं के मन्त्र जपने की '**कर-माला**'–तर्जनी, अनामा और कनिष्ठा के तीन-तीन पर्व और मध्यमा का एक पर्व ग्रहण कर दस-संख्यक जप करे । इस माला में मध्यमा के दो निचले पर्व '**मेरु**'-स्वरूप माने जाते हैं । जप के समय अनामा के मध्य पर्व से आरम्भ कर अनामा के मूल पर्व में जप करे । फिर कनिष्ठा के मूल-मध्य-अग्र पर्वों में क्रमशः जप कर अनामा और मध्यमा के अग्र पर्वों में जप करते हुए तर्जनी के अग्र, मध्य, मूल पर्वों में क्रमशः जप कर दस जप-संख्या पूर्ण करे । इसी क्रम से बाँएँ हाथ द्वारा गणना करते हुए जब १०० बार जप कर चुके, तो शेष आठ-संख्यक जप के लिए (१) अनामा के मूल पर्व से आरम्भ कर क्रमशः (२) कनिष्ठा के मूल-(३) मध्य-(४) अग्र पर्वों में जप कर (५) अनामा के अग्र पर्व, (६) मध्यमा के अग्र पर्व और (७) तर्जनी के अग्र तथा (८) मध्य पर्व में क्रमशः जप करे । यह माला '**शिव-कर-माला**' के नाम से ज्ञात है ।

इस '**शिव-कर-माला**' में मध्यमा के मध्य और मूल पर्वों में जप करने का निषेध है ।

'कर-माला' के शोधन का मन्त्र

'आगम-रहस्य' में उक्त मन्त्र का उद्धार दिया है–'**काली कामः कृपा कुन्ती, कर-माले हर वनम्** ।' इस उद्धार के अनुसार ११ अक्षरों का मन्त्र निम्न प्रकार प्रस्तुत होता है–

क्रीं क्लीं त्र्ह्रं क्रीं कर-माले फट् स्वाहा ।

उक्त **एकादशाक्षर मन्त्र** को अभीष्ट '**कर-माला**' में तीन बार जप लेने से **माला की शुद्धि** हो जाती है । इस प्रकार '**कर-माला' का शोधन** कर अभीष्ट मन्त्र का जप प्रारम्भ करे ।

नित्य का जप '**कर-माला**' से हो सकता है, किन्तु **काम्य जप** अर्थात् जो जप किसी कामना से किया जाए, उसे '**कर-माला**' से न करे, किन्तु यदि ऐसे स्थान पर जप करना पड़ जाए, जहाँ माला सुलभ न हो, तो '**कर-माला**' से भी काम्य जप किया जा सकता है ।

५. 'मणि-माला' (विविध प्रकार के मनकों से बनी माला)

रुद्राक्ष-माला सबसे उत्तम है क्योंकि यह भुक्ति-मुक्ति और सब प्रकार की सिद्धि देनेवाली है । सभी मन्त्रों के जप में '**रुद्राक्ष**' प्रशस्त है ।

माला प्रायः **एक सौ आठ दानों** की अथवा **चौवन दानों** की बनाई जाती है । विशेष कामना से इनके अतिरिक्त भी संख्या बतलाई है । यथा–मुक्ति के लिए २५, धन-प्राप्ति के लिए ३० और अभिचार के लिए १५ मनकों (दानों) की माला निर्दिष्ट है । किन्तु **५४ और १०८** मनकों की मालाएँ सर्वाभीष्ट-दात्री होती हैं ।

शङ्ख, स्फटिक, पद्माक्ष, पुत्र-जीव (जियापोत), **मूँगा** और **मोती** आदि भी माला के लिए प्रशस्त हैं । **शङ्ख-माला**–लक्ष्मी देनेवाली, **स्फाटिकी माला**–मुक्ति-दात्री, **पद्माक्ष-माला**–पुष्टि-कारिणी, **पुत्र-**

जीव-माला-पुत्र, पशु और धान्य-समृद्धि की बढ़ानेवाली, **मूँगे की माला**-पुत्र, सौभाग्य और वश्य-कारिणी, **मोतियों की माला**-मुक्ति और सर्व-सम्पद्-कारी, **कुश-मयी (कुशाओं की) माला**-पाप-नाशिनी और **स्वर्ण तथा चाँदी की माला**-मनो-कामना की पूर्तिकरी होती है ।

काली की उपासना में **दन्त-माला**, तारा की उपासना में **नर-शङ्ख-माला (अस्थि-माला)**, छिन्नमस्ता की उपासना में **नरास्थि-माला**, त्रिपुरा की उपासना में **लाल चन्दन की माला** और भैरवी की उपासना में **स्वयम्भू माला** प्रशस्त है । माताङ्गी के मन्त्र-जप में **गुञ्जा (रत्ती) माला**, धूमावती-मन्त्र जपने में **खर-दन्त-माला** (खर=गधा), बगलामुखी के मन्त्र में **हरिद्रा (हल्दी) माला**, कमला (लक्ष्मी) मन्त्र के जपने में **कमल-माला**, सरस्वती और भुवनेश्वरी के मन्त्र-जप में **स्फाटिकी माला** और सिद्ध-विद्या के जप में **सफेद रत्ती की माला** श्रेष्ठ है । विष्णु के मन्त्र-जप में **शङ्ख-माला**, शरभ के मन्त्र में **भद्राक्ष-माला**, गणेश के लिए **हाथी-दाँत की माला**, त्रिपुरा के लिए **पुत्र-जीव की माला**, गोविन्द के लिए **तुलसी की माला** उत्तम है ।

रत्न-माला, स्वर्ण-माला, रौप्य (चाँदी) माला तथा **ताम्र-मालाएँ** अत्यन्त पवित्र हैं । ये प्राय: सभी देवताओं के जप के लिए मान्य हैं । **औदुम्बर के बीजों की माला, बट-बीज-माला, सुपारियों की माला** और **जाती-फल की माला** मधुमती और वीर-विद्याओं के जप में श्रेष्ठ हैं । सूर्य के जप में **प्रवाल (मूँगे) की माला** और सब शक्तियों के जप में **मुक्ता-माला (मोतियों की माला)** उत्तम है ।

वर्ण-भेद से माला-भेद

ब्राह्मण को **कुश-ग्रन्थि** से, क्षत्रियों को **सुवर्ण-माला** से, वैश्यों को **पुत्र-जीव की माला** से और शूद्रों को **पद्माक्ष की माला** से जप करना श्रेयस्कर है ।

कार्य-भेद से माला-भेद

सर्व-कार्य के लिए **रुद्राक्ष**, पुष्टि के लिए **पद्माक्ष**, कान्ति के लिए **चन्दन**, मुक्ति के लिए **मोती**, वशीकरण के लिए **मूँगा**, मोहन-कार्य के लिए **गुञ्जा**, भाग्य-सम्पत्ति के लिए **भद्राक्ष**, राज्य-प्राप्ति के लिए **पुत्र-जीवक**, विद्वेषण के लिए **अरिष्ट (रीठा)**, मारण के लिए **वदरी (बेर)**, भय के लिए **काली मिर्च** और संहार (विनाश) के लिए **पिचु-मर्द (निम्ब)** की माला उत्तम होती है ।

महा-शङ्ख की माला से अभीष्ट-सिद्धि अकस्मात् मिलती है । **दन्त-माला** से सृष्टि की अखिल सिद्धियाँ हाथ लगती हैं । **हड्डी से बनी माला (अस्थि-माला)** सर्व-शत्रु-नाशिनी है । **खर-दन्त-माला** से शत्रु-नाश होता है और **गज-दन्त-माला** से साधक सबका गुरु बन जाता है । **स्वयम्भू-कुसुम-माला** से साधक सब विद्याओं का ईश्वर हो जाता है । सब प्रकार की **अस्थियों की माला** शत्रुओं को भयभीत कर उनका नाश कर डालती है । **स्फाटिकी माला** वाक्-सिद्धि देनेवाली, भूतों के नाश के लिए **औदुम्बर-माला**, दारिद्र्य-विनाश के लिए **भद्राक्ष-माला**, यक्षिणी-सिद्धि के लिए **बट-बीज-माला** और ऐश्वर्य के लिए **कपर्दिका (कौड़ी) की माला** उत्तम है ।

संयुक्त-माला

रुद्राक्ष और सोने के दानों की बनी माला हरि-हरात्मिका (शिव-विष्णु-रूपा) तथा **रुद्राक्ष और चाँदी के दानों से बनी माला** ब्रह्म-शिवात्मिका (शिव और ब्रह्मा के रूपवाली) कहलाती है ।

आम्नाय-भेद से माला-भेद

पूर्वाम्नाय में **स्फाटिकी माला**, दक्षिणाम्नाय में **रुद्राक्ष-माला**, पश्चिमाम्नाय में **प्रवाल** और **मौक्तिक माला**, उत्तराम्नाय तथा ऊर्ध्वाम्नाय में **महा-शङ्ख-माला** प्रशस्त हैं, किन्तु दिन में **रुद्राक्ष-माला से शक्ति के मन्त्र का जप करना निषिद्ध है**, ऐसा करनेवाला दुर्गति को प्राप्त होता है व उसका जप निरर्थक हो जाता है।

निषिद्ध माला

उत्तराम्नाय में **पुत्र-जीव की माला** से न जपना चाहिए। **शङ्ख की माला** से तारा और कालिका के मन्त्रों को कदापि न जपे, अन्यथा मन्त्र-सिद्धि नहीं होती और भलाई के बदले बुराई हो जाती है।

माला-ग्रथन (गूँथने) की विधि एवं अन्य बातें

ग्रथन-सूत्र–शाक्त साधक–**रेशमी डोरे**, वैष्णव– **सूती या पद्म-सूत्र** में और शैव–ऊनी या **वक्कल** (सन या पाट) सूत्र में माला का ग्रथन करें। जिसका पुत्र जीवित हो, जो सुन्दरी हो, पतिव्रता हो–ऐसी स्त्री के हाथ से कते हुए सूत्र में माला गूँथनी चाहिए। ब्राह्मण कुमारी, जो सुशील हो, सुन्दर हो, स्वच्छ रहनेवाली हो, जिसके शरीर में कोई कमी-वेशी न हो, जो रजस्वला न हुई हो और लज्जा-शीला हो, उसके हाथ से कते हुए सूत्र से माला पिरोनी चाहिए। ब्राह्मण कुमारी ऐसी न मिले, तो उक्त लक्षणोंवाली क्षत्रिय या वैश्य कन्या के हाथ का सूत्र ग्रहण करे। माला गूँथने के पूर्व सूत्र को त्रि-गुणित कर लेना चाहिए। उक्त सूत्रों के अभाव में चाँदी या सोने के तार में माला पिरोई जा सकती है।

मणियों का चयन–रुद्राक्ष या अभीष्ट दानें सब समान हों। कोई छोटा और कोई बड़ा न हो। पुराने, खण्डित, कीड़ों के खाए हुए दानों को निकाल दे।

एक प्रकार के दानों की माला में दूसरे प्रकार के दाने कभी न लगाए। यथा–रुद्राक्ष में **तुलसी, चन्दन** आदि या **तुलसी, चन्दनादि** में **रुद्राक्ष, स्फटिक** आदि का मिश्रण न करना चाहिए।

वैष्णव के लिए '**तुलसी**' की और शैव, शाक्त, सौर, गाणपत्य के लिए '**रुद्राक्ष**' की माला सर्वोत्तम है। देवता के रूप-भेद से मणियों का चयन बदल जाता है। जैसे शैवों में '**मृत्युञ्जय**' के लिए मुक्ता की, **दक्षिणामूर्ति** के लिए **स्फटिक** की, शाक्तों में **श्यामा (काली)** के लिए '**दन्त, कपालास्थि**' आदि की, षोडशी के लिए '**माणिक्य**' या '**प्रवाल**' की, **बगला** के लिए '**हरिद्रा**' की, गाणपत्यों में **उच्छिष्ट-गणपति** के लिए '**निम्ब**' की, **हरिद्रा-गणेश** के लिए '**हल्दी**' की और वैष्णवों में **कृष्ण** के लिए '**श्वेत चन्दन**' की, **हनुमान** के लिए '**रक्त चन्दन**' की, **व्यास** के लिए '**स्फटिक**' आदि की माला का निर्देश है।

कामना-भेद से भी माला में अन्तर होता है।

ग्रथन-सूत्र का रङ्ग–शान्ति-कर्म में '**श्वेत**', वशीकरणादि में '**रक्त**' और अभिचार-कर्मों में '**कृष्ण**'-सूत्र उपयोगी होता है। ब्राह्मणों के लिए '**श्वेत**', क्षत्रियों के लिए '**रक्त**', वैश्यों के लिए '**पीत**' और शूद्रों के लिए '**कृष्ण**'- सूत्र निर्दिष्ट है, किन्तु '**रक्त**'-**सूत्र** सब वर्णों के व्यक्ति सब अनुष्ठानों में ग्रहण कर सकते हैं।

मुख-पुच्छ का विचार–रुद्राक्ष जैसे दानों में '**मुख**' और '**पुच्छ**' होते हैं। '**मुख**' का भाग कुछ उठा हुआ और पुच्छ का दबा हुआ होता है। **माला-ग्रथन** करने में मुख-से-मुख और पुच्छ-से-पुच्छ को मिलाना चाहिए।

माला-ग्रथन हेतु मुहूर्त विचार–शुभ दिन, शुभ नक्षत्र (अश्विनी, रोहिणी, मृगशिर, पुनर्वसु, पुष्य, तीनों उत्तरा, हस्त, स्वाती, विशाखा, अनुराधा, ज्येष्ठा, श्रवण, धनिष्ठा, शतभिषा या रेवती अथवा अपने इष्ट-देव जिस नक्षत्र के स्वामी हैं), शुभ मास (वैशाख, श्रावण, आश्विन, कार्तिक, मार्गशीर्ष, माघ या फाल्गुन), शुभ तिथि (२। ६। ७। १०। १३। १५), शुभ वार (रवि, चन्द्र, गुरु, शुक्र) में जब **चन्द्र और तारा अपने अनुकूल हों, गुरु और शुक्र उदित हों**, शुभ लग्न (**वैष्णव**–वृष, सिंह, वृश्चिक या कुम्भ लग्न में, **शैव**–मेष, कर्क, तुला या मकर लग्न में एवं **शाक्त**–मिथुन, कन्या, धनु या मीन लग्न में) में जब **द्वादश भाव शुद्ध** हो, उस मुहूर्त-काल में नित्य-कृत्य से निवृत्त हो स्नानादि शरीर-शोधन कर पवित्र स्थान अथवा इष्ट-मन्दिर में बैठकर निश्चिन्तता-पूर्वक '**माला-ग्रथन**' का कार्य करे।

'**माला-ग्रथन**' यदि साधक स्वयं करे, तो उसे पहले अपनी पद्धति के प्रातः-कृत्य के अनुसार **अन्तर्याग** तक का **पूजन-कर्म** कर लेना चाहिए। अन्तर्यजन के बाद निम्न प्रकार '**दीप**' स्थापित करे–

दीप-स्थापन–अपनी बाँईं ओर सम्मुख घी का और यदि तेल का हो, तो अपने दाहिनी ओर सम्मुख दीप स्थापित करे। घी या तेल से भरकर जितने अक्षर का इष्ट-मन्त्र हो, उतने ही **सूत्रों की वर्त्तिका** डाले। फिर '**ॐ**' का उच्चारण करते हुए उस दीपक को जला कर नीचे लिखे '**सुदर्शन-मन्त्र**' से गन्ध-पुष्पादि द्वारा उसकी पूजा करे–

ॐ रां रीं रूं रैं रौं रः ॐ सहस्रार हुं फट् स्वाहा श्रीदीपनाथाय नमः आसनं समर्पयामि नमः, पाद्यं समर्पयामि नमः, अर्घ्यं समर्पयामि नमः, आचमनं समर्पयामि नमः, स्नानं समर्पयामि नमः, वस्त्रं समर्पयामि नमः, गन्धं समर्पयामि नमः, पुष्पं समर्पयामि नमः, धूपं समर्पयामि नमः, दीपं समर्पयामि नमः, नैवेद्यं समर्पयामि नमः, आचमनीयं समर्पयामि नमः, ताम्बूलं समर्पयामि नमः इत्यादि।

यदि **तैल का दीपक** हो, तो निम्न-लिखित '**पाशुपतास्त्र मन्त्र**' से उसका पूजन करे–

'**ॐ श्लीं पशु हुं फट् स्वाहा।**'

दीपक की पूजा करके निम्न मन्त्र से दोनों हाथों से उसकी शिखा को स्पर्श करे–

'**ॐ घोराय घोर-तमाय महा-रौद्राय वीर-भद्राय ज्वाला-मालिने सर्व-दुष्ट-संहर्त्रे हुं फट् स्वाहा।**'

दीपक के तेज को अपने आप में समर्पित कर उससे वाणी, शरीर और चित्त के शुद्ध होने की भावना करे। उपरान्त '**ॐ हुं फट् स्वाहा**' से मुख का स्पर्श कर **मुख-शोधन** करे। तब हृदय पर हाथ रखकर **रक्षा-मन्त्र**–'**ॐ रक्ष रक्ष हुं फट् स्वाहा**' के द्वारा आत्म-रक्षा कर '**आं**' मन्त्र से चन्दन और पुष्प हाथ में लेकर उन्हें दोनों हाथों से मसल कर नीचे लिखे मन्त्र से उन्हें **ईशान (पूर्व उत्तर) कोण** में दूर फेंके–

ॐ ते सर्वे विलयं यान्तु, ये मां हिंसति हिंसकाः। मृत्यु-रोग-भय-क्लेशाः, पतन्तु रिपु-मस्तके॥

अब हाथ धोकर **कुण्डलिनी का ध्यान** कर भावना द्वारा **मूलाधार** से उसे उठाकर **श्रीगुरु-चक्र** में ले जाए। **श्रीगुरु-चक्र** में **कुण्डलिनी** का परम सुन्दर षोडशी-रूप में चिन्तन कर उन्हें **श्रीगुरु-शक्त्यम्बा** में लीन कर दे। **श्रीगुरुदेव** को **शिव-रूप** में ध्यान कर **श्रीगुरु-शक्त्यम्बा** को **शक्ति-रूप** में स्मरण कर उनके सामरस्य से लाख के रङ्ग का रस स्रवित होने की भावना करे और यह ध्यान करे कि इस रस की धारा से सम्पूर्ण पद्म विकसित और ऊर्ध्वोन्मुख हो गया है। पुनः कुण्डलिनी को यथा-स्थान पहुँचा कर अपने को परम दिव्य हुआ समझे।

यह रहस्य-पूर्ण भावना ही वह **'योनि-मुद्रा'** है, जिसके विषय में कहा गया है कि **'मन्त्रार्थं मन्त्र-चैतन्यं, योनि-मुद्रां न वेत्ति यः । शत-लक्ष-प्रजप्तोऽपि, तस्य मन्त्रः न सिद्धः'** अर्थात् **मन्त्रार्थ, मन्त्र-चैतन्य** और **योनि-मुद्रा** को जो नहीं जानता, सौ लाख जप करने पर भी उसका मन्त्र सिद्धि नहीं दे सकता । यहाँ यह विधि संक्षिप्त कही गई है । **योनि-मुद्रा में षट्-कोण-ध्यान** का विधान भी है । किन्तु प्रारम्भिक साधकों के निमित्त प्रस्तुत विधि सर्वथा उपयोगी है ।

यह कार्य सम्पन्न करके १०८ समान सुन्दर मध्यम आकार के अखण्ड नए रुद्राक्ष एवं १ उनसे बड़ा रुद्राक्ष ग्रहण कर उपर्युक्त सूत्र लेकर सूत्र के एक सिरे को मोम से सख्त कर लें । अब **अनुलोम-विलोम** (उलटा-सीधा) **मातृका वर्णों का सम्पुट इष्ट-मन्त्र में देते हुए** एक-एक मणि सावधानी से पिरोवें । उदाहरणार्थ यदि **'इष्ट-मन्त्र'** है **'नमः शिवाय'** तो **'अं नमः शिवाय अं'** से एक मणि पिरोवें, **'आं नमः शिवाय आं'** से दूसरी मणि पिरोवें, **'इं नमः शिवाय इं'** से तीसरी-इसी प्रकार **प्रत्येक वर्ण से सम्पुटित इष्ट-मन्त्र** से मणि पिरोवें । **वर्ण-माला** पूरी होने पर विलोम वर्णों से बाकी ५० पिरोवें । शेष आठ वर्गों के आदि अक्षरों से जैसे **वर्ण-माला-जप** में किया जाता है । प्रत्येक मणि (रुद्राक्ष) पिरोने के बाद **ब्रह्म-ग्रन्थि** (साढ़े तीन फेरे की गाँठ) देना चाहिए । इससे मणि आपस में नहीं टकरातीं । जप करते हुए अगली मणि को अँगूठे से स्पर्श का डर नहीं रहता, जो बड़ा दोष है । इसके बाद सूत्र के दोनों छोरों में **संयुक्त ब्रह्म-ग्रन्थि** देकर केवल **'क्ष'** का उच्चारण कर **सुमेरु** पिरोवे । **'क्ष'** के साथ मन्त्र का उच्चारण न करे । फिर **ब्रह्म-ग्रन्थि** दे (इसी प्रकार माला को संस्कार करने के दिन से पहिले भी किसी दिन सन्ध्यादि से निवृत्त होकर पवित्रता से पिरोकर संस्कार के लिए तैयार रखा जा सकता है) ।

माला-संस्कार-विधि

माला-संस्कार दश-विद्याओं के भेद से अनेक प्रकार से होता है । **सामान्य विधि** निम्न प्रकार है-

अश्वत्थ (पीपल) की नौ पत्तियों को लेकर एक पत्ती बीच में रखकर शेष आठ पत्तियों को इस प्रकार रखे कि **अष्ट-दल कमल** का आकार बन जाए । इस **अष्ट-दल-कमल** पर **'माला'** को स्थापित करे और नीचे लिखे मन्त्र से उसे **पञ्च-गव्य से प्रक्षालित** करे-

ॐ अं आं इं ईं उं ऊं ऋं ॠं लृं लॄं एं ऐं ओं औं अं अः । कं खं गं घं ङं । चं छं जं झं ञं । टं ठं डं ढं णं । तं थं दं धं नं । पं फं बं भं मं । यं रं लं वं । शं षं सं हं ळं ।।क्षं।। ॐ सद्योजातं प्रपद्यामि, सद्यो-जाताय वै नमो नमः । भवे भवे नाति-भवे, भवस्य मां भवोद्भवाय नमः ।।क्षं।। ळं हं सं षं शं । वं लं रं यं । मं भं बं फं पं । नं धं दं थं तं । णं ढं डं ठं टं । ञं झं जं छं चं । ङं घं गं खं कं । अः अं औं ओं ऐं एं लॄं लृं ॠं ऋं ऊं उं ईं इं आं अं ॐ ।

पुनः उक्त मन्त्र से उसे शुद्ध जल से धोवे । 'पञ्च-गव्य' की विधि इस प्रकार है-

पीली गाय का दूध, सफेद गाय का गोबर, ताम्र रङ्ग की गाय का गो-मूत्र, नीली गाय का दही, काली गाय का घी **'पञ्च-गव्य'** और **'पञ्चामृत'** में ग्रहण किया जाता है । यथा-साध्य जितने रङ्गवाली गाएँ मिल सकें, उनसे ये वस्तुएँ ग्रहण करे । वर्ण-भेद में इतना दोष नहीं, जितना मात्रा-भेद में होता है । मात्रा ठीक-ठीक ले । यथा-**गोबर से दुगुना गो-मूत्र, चौगुना घी, आठ गुना दूध और आठ ही गुना दही ग्रहण करे ।**

ब्रह्म-गायत्री ('ॐ भूर्भुवः' इत्यादि) मन्त्र से गो-मूत्र ग्रहण कर निम्न मन्त्र से गोबर ग्रहण कर गो-मूत्र में मिलाए–

ॐ गन्ध-द्वारां दुराधर्षां, नित्य-पुष्टां करीषिणीम् । ईश्वरीं सर्व-भूतानां, तामिहोपह्वये श्रियम् ।।

निम्न मन्त्र से उसमें दूध मिलावे–

ॐ आप्यायस्व समेतु ते विश्वतः सोम वृष्ण्यम् भवा वाजस्य सङ्गथे ।

निम्न मन्त्र से उसमें दही डाले–

ॐ दधि क्राव्णोऽकारिषं जिष्णो रवस्य वाजिनः, सुरभि नो मुखा करत्प्रण आयू ँ षितारिषत् ।

निम्न मन्त्र से घी डाले–

ॐ तेजोऽसि शुक्रमस्यमृतमसि धामनामासि । प्रियं देवानामना धृष्टं देव-यजनमसि ।

अन्त में निम्न मन्त्र से कुश द्वारा सब वस्तुओं को मिलावे–

ॐ देवस्य त्वा सवितुः प्रसवोऽश्विनोर्बाहुभ्याम्पूष्णो हस्ताभ्याम् ।

अब 'वामदेव०' मन्त्र से घिसे हुए चन्दन, अगर, गन्धादि सुगन्धित द्रव्य से माला का घर्षण करे । फिर 'अघोर०' मन्त्र से उसे धूप से धूपित करे । इसके बाद 'तत्पुरुष०' मन्त्र से गन्ध (इत्र) द्रव्य का लेपन माला पर करे । फिर माला को ग्रहण कर उसके प्रत्येक मणि (दाने) पर १००-१०० बार (अथवा असमर्थ होने पर १-१ बार) 'ईशान०' मन्त्र का जप करे । ये सभी मन्त्र क्रमशः इस प्रकार हैं–

वामदेव-मन्त्र–ॐ वामदेवाय नमो, ज्येष्ठाय नमः, श्रेष्ठाय नमो, रुद्राय नमः, कल-विकरणाय नमो, बल-विकरणाय नमः, बलाय नमो, बल-प्रमथनाय नमः, सर्व-भूत-शमनाय नमो, मनोन्मनाय नमः ।

अघोर-मन्त्र–ॐ अघोरेभ्योऽथ घोरेभ्यो घोर-घोर-तरेभ्यः सर्वेभ्यः सर्व-शर्वेभ्यो नमस्तेऽस्तु रुद्र-रूपेभ्यः ।

तत्पुरुष-मन्त्र–ॐ तत्पुरुषाय विद्महे महादेवाय धीमहि तन्नो रुद्रः प्रचोदयात् ।

ईशान-मन्त्र–ॐ ईशानः सर्व-विद्यानामीश्वरः सर्व-भूतानां ब्रह्माधि-पतिर्ब्रह्मणोऽधिपतिर्ब्रह्मा शिवो मेऽस्तु सदा-शिवोम् ।

अब माला में इष्टदेव की प्राण-प्रतिष्ठा करे । इसके लिए सर्व-प्रथम माला को पूर्वोक्त अष्ट-दल कमल पर स्थापित कर मण्डूक से पर-तत्त्व तक सम्पूर्ण पीठ-देवताओं की एक साथ 'ॐ मण्डूकादि-पर-तत्त्वान्त-पीठ-देवताभ्यो नमः' मन्त्र से गन्धाक्षत द्वारा संक्षिप्त पूजा करे । फिर जयादि नौ पीठ-शक्तियों का एक साथ 'ॐ जयादि-पीठ-शक्तिभ्यो नमः' मन्त्र से पूजन कर भगवती प्राण-शक्ति के पीठ की 'ॐ आं ह्रीं क्रों पीठाय नमः' मन्त्र से पूजा करे । तब निम्न प्रकार ध्यान करते हुए माला में स्थापित किए हुए पीठ पर श्री प्राण-शक्ति के अवतरित होने की भावना करे–

रक्त-समुद्र-मध्य अति सुन्दर अमल कमल अति अरुण ललाम,
पाश-धनुष-अंकुश-शर एवं शूल कपाल लिए सुख-धाम ।
छः हाथों में, रक्त-वर्ण तनु, तीन नयन अति शोभित, अम्ब!
चिर-यौवन-तनु-अतिशय सुन्दर प्राण-शक्ति जग की अवलम्ब ।।

इस प्रकार **प्राण-शक्ति की भावना** कर माला पर हाथ रख कर नीचे लिखा मन्त्र तीन बार पढ़ते हुए दृढ़ भावना करे कि माला में **इष्ट-देव के प्राणों का सञ्चार** हो रहा है–**ॐ आं ह्रीं क्रों यं रं लं वं शं षं सं हं ळं क्षं हंसः सोऽहं अस्यां मालायां 'अमुक'-देवतायाः प्राणाः इह प्राणाः ।**

फिर निम्न मन्त्र को तीन बार पढ़ते हुए यह दृढ़ भावना करे कि **माला में इष्ट-देव के जीव का प्रवेश** हो रहा है । **'अमुक'** के स्थान पर अपने **इष्ट-देव का नामोच्चारण** करे । जैसे **शिव** षडक्षर-मन्त्र के देवता हैं **'भगवान् ईशान'**, अतः षडक्षर के निमित्त **माला का संस्कार** करते हुए **'अमुक'** के स्थान पर **'ईशान'** कहा जाएगा–**ॐ आं ह्रीं क्रों यं रं लं वं शं षं सं हं ळं क्षं हंसः सोऽहं अस्यां मालायां 'अमुक'-देवतायाः जीव इह स्थितः ।**

इसके बाद निम्न मन्त्र को तीन बार बोलते हुए माला में **इन्द्रिय-जन्य चैतन्यत्व** का अनुभव करे–

ॐ आं ह्रीं क्रों यं रं लं वं शं षं सं हं ळं क्षं हंसः सोऽहं अस्यां मालायां अमुक-देवतायाः सर्वेन्द्रियाणि वाङ्-मनस्त्वक्-चक्षुः-जिह्वा-श्रोत्र-घ्राण-पाणि-पाद-पायूपस्थानि इहैवागत्य सुखं चिरं तिष्ठन्तु स्वाहा । अन्त में **'ॐ'** का **१५** बार जप कर कहे–

अनेन प्रणव-जपेन अस्य माला-विग्रहस्य पञ्चदश-संस्कारान् सम्पादयामि ।

अब माला में इष्ट-देव का षडङ्ग-न्यास कर आवाहनादि षोडशोपचारों से पूजन करे । पुनः प्रणाम कर माला को ग्रहण कर एक-एक **मातृका वर्ण से पुटित कर इष्ट-मन्त्र का जप** उस पर करे । फिर माला को शिर पर स्थापन-पूर्वक सविधि **जप-समर्पण** करे । अन्त में माला की पञ्चोपचारों से पूजा कर निम्न प्रकार उसे प्रणाम करे–**ॐ मां माले महा-माये, सर्व-सिद्धि-स्वरूपिणि!**

चतुर्वर्गस्त्वयि न्यस्तं, तस्मान्मां सिद्धिदा भव ।।

पूजा के अनन्तर माला में **देवत्व-सिद्धि** के लिए **१०८ घृताहुतियों** से होम भी करना चाहिए । यदि होम करने में असमर्थ हो, तो **अष्टोत्तर-शत का द्वि-गुण जप** कर ले । इस माला से **इष्ट-मन्त्र** के अतिरिक्त अन्य मन्त्र का जप निषिद्ध है । माला गुरु को भी न दिखानी चाहिए, दूसरों की बात ही क्या !

संक्षिप्त माला-संस्कार

पञ्च-गव्य और पञ्चामृत से माला का प्रक्षालन कर मूल-मन्त्र से गन्धाक्षत-पुष्प-धूप-दीप और नैवेद्यादि से पूजाकर प्राण-प्रतिष्ठा करे । तदनन्तर **एक सौ आठ बार मूल-मन्त्र का जप** करे । इस प्रकार संस्कृत माला जप-कर्म में प्रशस्त मानी गई है ।

माला-प्रार्थना

जप के समय माला की प्रार्थना करे । फिर 'ऐं श्रीं अक्ष-मालायै नमः'–इस मन्त्र से उसकी पूजा करके जप करे । प्रार्थना निम्न प्रकार है–

ॐ मां माले महा-माये, सर्व-शक्ति-स्वरूपिणि! न्यस्तस्त्वयि चतुर्वर्गस्तस्मान्मे वरदा भव ।।

अविघ्नं कुरु माले! त्वं, गृह्णामि दक्षिणे करे । जप-काले च सिद्ध्यर्थं, प्रसीद मम सिद्धये ।।

विसर्जन

त्वं माले सर्व-देवानां, प्रीतिदा शुभदा भव । शिवं कुरुष्व मे भद्रे! यशं वीर्यं च सर्वदा ।।

उक्त मन्त्र से माला को लेकर गुप्त स्थान में रखकर प्राणायाम और न्यास-ध्यान करके विसर्जन करे ।

●●●

वर्णौषधि तथा दिव्यौषधि

'मेरु-तन्त्र' में जिन **वर्णौषधियों** का प्रसङ्ग आता है, उनका बड़ा महत्त्व है क्योकि **साधना में उनके** ठीक-ठीक उपयोग से अत्यन्त सहायता मिलती है। इन **वर्णौषधियों** के सम्बन्ध में विशेष रूप से अनुसन्धान करने की आवश्यकता है क्योंकि इनमें से अनेक औषधियों के प्रचलित नाम ज्ञात नहीं हैं। यहाँ **'मेरु-तन्त्र'** के आधार पर विवरण प्रस्तुत है–

१. चन्दनं–श्वेत चन्दन। २. **रक्ताख्य-चन्दनम्**–लाल चन्दन। **३. अगरुः**–काला अगर। **४. कर्पूर**। **५. उशीर**–खस। **६. कुष्ठः**–कूट। **७. बालकम्**–नेत्रवाला या सुगन्ध-वाला। **८. केसरम्**–केशर। **९. कङ्कोलकम्**–कङ्कोल। **१०. जाति-फलम्**–जायफल। **११. जटा-मासी**–जटामांसी। **१२. मुरा**–?। **१३. ग्रन्थिकम्**–गठिवन। **१४. रोचना**–गोरोचन। **१५. जाती-पत्रं**–तेजपात। **१६. पिप्पल**–पीपल या अश्वत्थ। **१७. बिल्व**–बेल। **१८. पृश्नि-मर्णी**–पिठवन। **१९. चित्रकं**–चीता (सफेद या लाल ?)। **२०. लवङ्गम्**–लौंग। **२१. कतृणं**–रोहिषतृण ?। **२२. कट्-फलम**–कुटकी। **२३. गुञ्जा**–चिरमी, रत्ती, घूंघची, गुञ्जा (श्वेत, रक्त या कृष्ण ?)। **२४. उदम्बरक**–गूलर। **२५. काश्मीरी**–कसेरु।

२६. पद्म-कांष्ठम् (?)। **२७. शङ्ख-पुष्पी**–शङ्खोली, शङ्खाहूली। **२८. मयूरस्य शिखा**–मोर-शिखा (?)। **२९. प्लक्षः**–पाकड़। **३०. अग्नि-मन्थः**–अरणी। **३१. मुद्ग-पर्णी**–मूँगपर्णी। **३२. कुशाः**–कुश, डाभ। **३३. पाषण-भेदक**–पत्थर-चटा। **३४. कृष्ण-शङ्ख-पुष्पी**–काली शङ्खाहोली। **३५. रोहिणी**–कुटुकी। **३६. स्योनोकः**–स्योनाक। **३७. बृहती**–बड़ी कटेली। **३८. पाटली**–गुलाब।

'पाषाण-भेदक' और **'शङ्ख-पुष्पी'** के बीच में **'कृष्ण'** शब्द है। **'शङ्ख-पुष्पी'** का नाम २७ वीं संख्या पर आ चुका है। **'पाषाण-भेद'** एवं **'शङ्ख-पुष्पी'** दोनों ही **कृष्ण** वर्ण की नहीं मिलतीं।

३९. मूष-कर्णिका–मूसाकानी (इसके विषय में बड़ा मत-भेद है)। **४०. तुलसी**–(श्यामा या रामा ?)। **४१. शिखरी**–अपामार्ग (?)। **४२. इन्द्र-वल्ली**–इन्द्रायण, फरफेन्दुवा। **४३. भृङ्गाधिपो नृपः**–भृङ्गराज। **४४. अपराजिता**–कोयल (श्वेत या कृष्ण)। **४५. ताल-मूली**–ताल वृक्ष का मूल (?)। **४६. कृताञ्जली**–हाथा-जोड़ी (इसके विषय में बड़ा मत-भेद है)। **४७. दूर्वा**–दूब (श्वेत या कृष्ण)। **४८. श्रीदेवि**–कन्या (?)। **४९. भार्गी**–भारङ्गी। **५०. भद्र-मुस्तकः**–नागर-मोथा।

'सु-प्रभेद' और 'मेरु-तन्त्र' में लिखा है कि–

यो यो मन्त्रास्तस्य तस्य, वनौषधि विनिर्मिता। तत्तद्-वर्णोत्थ-संख्याभिर्गुटिका मन्त्र-सिद्धिदा।।
तथाभिषेकस्तु हवनं तस्योदस्तद्-विलेपनं। तत्-पूजा च तथा सिद्धि-दायकं स्यात्र चान्यथा।।

अर्थात् मन्त्र के वर्णों के अनुसार **वनौषधियाँ** निर्मित हुई हैं। उनकी संख्या के अनुसार गुटिका बनाकर उन पर जप करने से **मन्त्र-सिद्धि** होती है। इसी प्रकार इन **वर्णौषधियों** के द्वारा **हवन**, इनके जल से अभिषेक और विलेपन तथा पूजन करने से सिद्धि मिलती है, इसमें सन्देह नहीं। **वर्णों के अनुसार वनौषधियों का विवरण निम्न प्रकार है–**

अ–(श्वेत-चन्दन)। आ–कुचन्दन (रक्त-चन्दन)। इ–अगरु (अगर)। ई–कर्पूर (रस-कपूर)। उ–उशीर (रक्स)। ऊ–रोग (कूड़)। ऋ–जल (वाला)। ॠ–घुसृण (कुंकुम)। ऌ–कङ्कोल (काकोली)। ॡ–जाती-फल (जायफल)। ए–जटामांसी (भूतकेशी)। ऐ–मुरा-मांसी। ओ–चोर (चोर-पुरी, ढोल

कलम्बी) । औ–ग्रन्थि (गठिवन) । अं–रोचना (गोरोचन) । अः–पत्र (तेज-पत्र) । क–पिप्पल (अश्वत्थ) । ख–बिल्व (बेल) । ग–गुहा (जयन्ती) । घ–अरुण तृण (पृष्ठि-पर्णी) । ङ–फल-रङ्ग (कामराङ्गा) । च–कुम्भी (गाम्भारी) । छ–वल्लिनी (ताम्बूली) । ज–शोलम्बर (छोलङ्ग) । झ–काश्मरिका (कसेरु) । ञ–स्थिरा (बाला २) । ट–अब्ज (इञ्जल-हिञ्जल) । ठ–दर-पुष्पिका (तिल-पुष्प) । ड–मयूर-शिखा (अपामार्ग-विशेष) । ढ–प्लक्ष (वट, पाकड़) । ण–अग्नि-मन्थ (अरणी) । त–सिंही (पीली कण्टकारी) । थ–कुश । द–दर्भ (काश-विशेष) । ध–कृष्ण (पिप्पली) । न–दर-पुष्पी (द्रोण-पुष्पी) । प–रोहिण (कुटुकी) । फ–तिन्दुक (गाव) । ब–वृहती-कण्टकारी । भ–पाटल (पारनी) । म–चित्रा (चीत) । य–तुलसी (राधा-तुलसी) । र–अपा-मार्ग । ल–शत-मख-लता (इन्द्र-लता, इन्द्र-वारुणी) । व–द्विरेफा-भृङ्गराज । श–विष्णु-क्रान्ता (नीली अपराजिता) । ष–मूषली । स–लज्जावती । ह–दूर्वा । ळ–श्रीदेवी (धान्य) । क्ष–लक्ष्मी (शत-मूली) । –सदा (रुद्र-जटा) । –भद्रा (भद्र-पर्पटी) ।

'शारदा-तिलक तन्त्र' में 'महा-लक्ष्मी-विधान' में १८ दिव्यौषधियों का वर्णन मिलता है । यथा–

दूर्वा देवी महा-लक्ष्मी, विष्णुक्रान्ता मधुव्रता । मुशली शक्रवल्ली च, सदा-भद्राऽञ्जलि-प्रिया ।।
हरिचन्दन-कर्पूर-चन्दनाङ्कोल-रोचना । मालूर-केशरौ कुष्ठं, सर्वं पिष्ट्वा निशा-रसैः ।।
अष्टोत्तर-सहस्रं तु, जपित्वा तिलक-क्रियाम् , कुर्वतो मन्त्रिणः सर्वे, वशे तिष्ठन्त्यहर्निशम् ।।

अर्थात् **१. दूर्वा** (दूब), **२. देवी** (सहदेवी), **३. महा-लक्ष्मी** (धान्य), **४. विष्णुक्रान्ता** (नीली अपराजिता), **५. मधुव्रता** (भृङ्गराज), **६. मुशली** (पञ्चा-मुशली), **७. शक्र-वल्ली** (इन्द्र-वारुणी, इन्द्रायण), **८. सदा-भद्रा** (नागर-मोथा), **९. अञ्जलि-प्रिया** (हत्था-जोड़ी, हाता-जोड़ी । मतान्तरे-लज्जावती), **१०. हरि-चन्दन** (द्वारिका की मिट्टी), **११. कर्पूर** (भीमसेनी), **१२. चन्दन** (श्वेत-चन्दन), **१३. अङ्कोल** (ढेरा, आँकड़े-गाछ), **१४. गोरोचन, १५. मालूर** (बेल), **१६. केशर** (नाग-केशर), **१७. कुष्ठ** (कूट), **१८. निशा** (हल्दी) ।

उक्त १८ औषधियों में से क्रमाङ्क ६ की पञ्चा-मूषली, ९ की अञ्जलि-प्रिया (हाता-जोड़ी या कृताञ्जलि) और १८ की कुष्ठ (चूट) शीत-प्रधान प्रदेशों में मिलती है । अन्य औषधियाँ सर्वत्र सुलभ हैं ।

अन्त में **'वर्णौषधि-पुरश्चरण'** का विषय उद्धृत करना भी उपयोगी होगा । **'मेरु-तन्त्र'** में कहा है–

अयोग्य-गुरुतो लब्ध्वा, कार्यादि-स्थानमाश्रिताः । दुर्देशत्वात् पुरश्चर्यां, कर्त्तुं चेच्छक्यते न हि ।।
राज्ञो भाग्यमतो वापि, सुकुमारस्य वा यथा । सिद्धिर्भवेत् तथा वक्ष्ये, वर्णौषधि-पुरस्क्रियाम् ।।
सप्तधा सा परिज्ञेया, वर्ण-मासैस्तु सिद्धिदा ।

मन्त्र-वर्णौषधि-काष्ठै, रचयेद् गुटिका शुभा । वर्ण-क्रमेण ताः प्रोह्य, अनुलोम-विलोमतः ।। स्थूलादिकाश्च लघ्वन्ताः, कर्तव्या मणयो यथा । सर्प-द्वयाकृतिर्माला, भवेन्नित्यं तया जपेत् ।। मालया मणि-संख्याकं, प्रथमोऽयं जपः स्मृतः ।।१।। सर्वे समाना मणयः, प्रोतव्याः स्वर्ण-सूत्रके । कण्ठे धार्या कण्ठ-माला, नित्यमेष द्वितीयकः ।।२।। तथैव राजते सूत्रे, प्रोह्यैताः परिपूजयेत् । तद्देव-कल्प-मार्गेण, प्रक्रमोऽयं च तृतीयः ।।३।। वर्णौषधीनां क्वाथेन, नित्य-स्नानं चतुर्थकः ।।४।। वर्णौषधि रजो लिह्याद्, गो-घृतेन तु पञ्चमः ।।५।। तच्चूर्णोद्वर्त्तनं कुर्यादेष षष्ठः प्रकीर्त्तितः ।।६।। तद्भस्म-धारणं नित्यं, कुर्यादिति तु सप्तमः ।।७।।

●●●

सङ्कल्प

साधक को सबसे पहले **समय** और **स्थान** का उल्लेख कर **परमेश्वर की प्रसन्नता** एवं अपने अनुष्ठान को उत्तम प्रकार से करने के लिए **सङ्कल्प** करना चाहिए ।

सङ्कल्प=इच्छा । इच्छा मन की प्रकृति है । **सङ्कल्प**=इच्छा=मन । मन ही मुक्ति व बन्धन का कारण है । उपनिषदों ने स्पष्ट शब्दों में कहा है कि **सङ्कल्प** ही बन्ध व मुक्ति का कारण है–'**सङ्कल्प-मात्र सम्भवो बन्धः ।**'

आत्मा को संसार इत्यादि से भिन्न देखने के कारण इच्छा बन्धन की हेतु है । यह बाहरी दृश्य स्थान, समय और उद्देश्य की सीमा के साथ-साथ रहता है । मन की सूक्ष्म-दर्शिता और एकाग्रता की सहायता से कल्पित सीमा-निरूपण से निर्मुक्त होकर, स्थान आदि की वास्तविक प्रकृति को स्पष्टतया मनन करने से **शिव- अन्तरात्मा से भिन्न नहीं** दिखता । इस बात को जानना ही **सङ्कल्प** का विशेष प्रयोजन है–'**सम्यक् कल्पते इति सङ्कल्पः ।**'

'**देश-कालौ सङ्कीर्त्य**'–देश और काल का उच्चारण **समय** और **स्थान** को पार करने के उद्देश्य से होता है । इस प्रकार यह **सङ्कल्प-शुद्धि** ज्ञान-वाशिष्ठ में वर्णित सात सोपानों में से तीसरा सोपान है, जिसे '**तनु-मानसी**' या '**सूक्ष्म मन**' कहते हैं । इससे **ज्ञानाधिपति परमेश्वर** का अनुग्रह प्राप्त होता है ।

सङ्कल्प-शक्ति ही मनुष्य के जीवन में उन्नति और अवनति का कारण होती है । उपनिषदों में बताया गया है कि–'**सङ्कल्प-मयोऽयं पुरुषः**' अर्थात् मनुष्य-**सङ्कल्प** का ही बना हुआ है ।

सङ्कल्प-मूलः कामो वै, यज्ञः सङ्कल्प-सम्भवः । व्रत-नियम-धर्माश्च, सर्वे सङ्कल्पजा स्मृताः ।।

अर्थात् सब प्रकार की कामनाओं का मूल **सङ्कल्प** है । यज्ञ **सङ्कल्प** से उत्पन्न होता है । व्रत, नियम, धर्म, सब कार्य **सङ्कल्प** से ही सम्भव हैं ।

अतएव साधक को **सङ्कल्प** अवश्य करना चाहिए । **सङ्कल्प** न करने पर साधक दोषी बन सकता है । यामल में लिखा भी है–

अवश्यं तान्त्रिकं कालं, उल्लिखेदन्यथा शिवे! बहिर्मुखं तु तत्कर्म, भवेद् भस्म-हुतं यथा ।।

अनुभवी ऋषियों द्वारा '**सङ्कल्प**' की मुख्यतः दो विधियाँ बताई गई हैं–१ सामान्य, २ विशेष । सामान्य '**सङ्कल्प**' प्रचलित पञ्चाङ्ग (तिथि-पत्र) पर आधारित होता है, जिसमें ज्योतिष की गणना के अनुसार तिथि, **वार, नक्षत्र, योग, करण** और **ग्रह** की स्थिति दी रहती है । पञ्चाङ्ग से इन्हें जानकर '**सङ्कल्प**' के प्रारूप में यथा-स्थान जोड़ लिया जाता है । इस **सामान्य सङ्कल्प** को तीन भागों में बाँट सकते हैं ।

पहले भाग में कल्याण-वाचक शब्दों के साथ वर्तमान काल के पहले का व्यतीत समय और विश्व के अन्तर्गत वह स्थान उल्लेखनीय है, जिसमें साधक की स्थिति है । इसमें कोई अंश बदलना नहीं होता ।

दूसरे भाग में पूजा जिस विशिष्ट स्थान में की जा रही है, उस स्थान का उल्लेख करते हुए वर्तमान **वर्ष, मास, तिथि, वार** आदि काल-खण्डों का स्मरण किया जाता है, इस भाग के जिन अंशों में परिवर्तन वांछित है, वहाँ '**अमुक**'-शब्द द्वारा सङ्केत किया जाता है ।

अन्तिम तीसरे भाग में उस कामना का उल्लेख रहता है, जिसकी पूर्ति के लिए **जप, पूजा या अनुष्ठान** किया जाता है। साथ ही अपना **सङ्कल्प (प्रतिज्ञा)** भी व्यक्त किया जाता है कि उस कामना की सिद्धि के लिए कितनी संख्या या किस विधि के अनुसार किस मन्त्र या स्तोत्र या अनुष्ठान को सम्पन्न किया जाएगा–स्पष्ट है कि इस भाग में विभिन्न कामनाओं और विविध मन्त्र, स्तोत्र, पूजादि के अनुसार वाक्य में परिवर्तन करना पड़ता है।

सङ्कल्प के उक्त तीनों भागों को निम्न उदाहरण से सहज ही समझा जा सकता है–

(१) ॐ विष्णुर्विष्णुर्विष्णुः ॐ स्वस्ति श्रीमन्मुकुन्द-सच्चिदानन्दस्याज्ञया प्रवर्तमानस्याद्यपरार्द्ध-द्वय-जीविनो ब्रह्मणो द्वितीये परार्धे एक-पञ्चाशत्तमे वर्षे प्रथम-मासे प्रथम-पक्षे प्रथम-दिवसे अह्नो द्वितीये यामे तृतीय-मुहूर्ते रथान्तरादि-द्वात्रिंशत् -कल्पानां मध्ये अष्टमे श्रीश्वेत-वाराह-कल्पे स्वायम्भुवादि-मन्वन्तराणां मध्ये सप्तमे वैवस्वत-मन्वन्तरे कृत-त्रेता-द्वापर-कलि-संज्ञानां चतुर्युगानां मध्ये वर्तमाने अष्टाविंशति-तमे कलि-युगे तत् -प्रथम-चरणे तथा पञ्चाशत् -कोटि-योजन-विस्तीर्ण-भू-मण्डलान्तर्गत-सप्त-द्वीप-मध्य-वर्तिनि जम्बू-द्वीपे तत्रादि श्रीगङ्गादि-सरिद्भिः पाविते परम-पवित्रे भारत-वर्षे आर्यावर्तान्तर्गत-काशी-कुरुक्षेत्र-पुष्कर-प्रयागादि-नाना-तीर्थ-युक्त-कर्म-भूमौ मध्य-रेखायाः–

(२) अमुक-दिग्-भागे अमुक-क्षेत्रे ब्रह्मवर्तादमुक-दिग्-भागावस्थितेऽमुक-जनपदे तज्जनपदान्तर्गते अमुक-ग्रामे श्रीगङ्गा-यमुनयोरमुक-दिग्-भागे श्रीनर्मदाया अमुक-प्रदेशे देव-ब्राह्मणानां सन्निधौ श्रीमन्नृपति वीर-विक्रमादित्य-समयतोऽमुक-संख्या-परिमिते प्रवर्तमान-संवत्सरे प्रभवादि-षष्ठि-संवत्सराणां मध्येऽमुक-नाम-संवत्सरे, अमुकायने, अमुक-गोले, अमुक-ऋतौ, अमुक-मासे, अमुक-पक्षे, अमुक-तिथौ, अमुक-वासरे, यथांश-लग्न-मुहूर्त, नक्षत्र-योग-करणान्वित, अमुक-राशिस्थे श्रीसूर्ये, अमुक-राशिस्थे चन्द्रे, अमुक-राशिस्थे देव-गुरौ, शेषेषु ग्रहेषु यथा-यथा-राशि-स्थाने स्थितेषु सत्सु एवं ग्रह-गुण-विशिष्टेऽस्मिन् शुभ-क्षणे–

(३) अमुक-गोत्रोऽमुक-शर्मा (वर्मा, गुप्तो, दासो वा) सपत्नीकोऽहं श्रीअमुक-देवता-प्रीत्यर्थं अमुक-कामनया अमुक-मन्त्रस्य अमुक-संख्यक-जपं तद्-दशांश-होमः, तद्-दशांश-तर्पणं, तद्-दशांश-अभिषेकं, तद्-दशांश-ब्राह्मण-भोजन-रूपं कर्म करिष्ये।

'सङ्कल्प' का जो उदाहरण ऊपर दिया गया है, उसे और संक्षिप्त रूप में भी कर सकते हैं–

ॐ तत्-सदद्यैतस्य ब्रह्मणो द्वितीय-प्रहरार्द्धे श्वेत-वाराह-कल्पे जम्बू-द्वीपे भरत-खण्डे, आर्यावर्तैक-देशान्तर्गते पुण्य-क्षेत्रे 'अमुक'-जनपदे, 'अमुक'-नाम-संवत्सरे, 'अमुक'-मासे, 'अमुक'-पक्षे, 'अमुक'-तिथौ, 'अमुक'-वासरे, 'अमुक'-गोत्रोत्पन्नो, 'अमुक'-नाम-शर्मा (वर्मा, गुप्तो, दासो वा) 'अमुक'-कामना-सिद्ध्यर्थे 'अमुक'-कर्माहं करिष्ये।

उक्त प्रारूप में जहाँ-जहाँ '**अमुक**'-शब्द है, वहाँ उचित नामों का उल्लेख करना होता है। साधना-मार्ग में अग्रसर जो व्यक्ति 'अभिषिक्त' होते हैं, उनके लिए विशेष निर्देश 'कुल-चूड़ामणि तन्त्र' के अनुसार निम्न प्रकार है–

यथा नारी पतिर्गोत्रं, विवाहान्तरे गृह्णाति। तथा शक्त्युपदेशेन, कौला गोत्रान्तरं ब्रजेत्।
सङ्कल्पादिषु कार्येषु, पूर्व-गोत्रं वदेन्न च ।।

अर्थात् जैसे नारी विवाहोपरान्त पिता के गोत्र को छोड़कर पति के गोत्र का आश्रय लेती है, उसी प्रकार **शक्ति-मन्त्र** से उपदिष्ट होकर **कौल-गोत्र** की प्राप्ति होती है। **सङ्कल्प** आदि में **पूर्व-गोत्र** का उल्लेख नहीं करना चाहिए। **पूर्णाभिषिक्त साधकों** को गुरु से प्राप्त नाम का ही उल्लेख **सङ्कल्पादि** में करना होता है।

तान्त्रिक सङ्कल्प की विधि

तन्त्र-शास्त्र में **चतुरङ्ग, पञ्चाङ्ग, अष्टाङ्ग, द्वादशाङ्ग** और **षोडशाङ्ग** निर्दिष्ट किए गए हैं, जिनसे ज्ञात होता है कि प्रत्येक **दिग्-भाग** और **काल-विभाग** में किस देवता का निवास है। इनका विवरण इस प्रकार है–

चतुरङ्ग–१. तार-त्रय, मूल-विद्या, २. वर्ष, ३. मास, ४. दिनोदय।

पञ्चाङ्ग–१. दिन, २. वार, ३. पक्ष, ४. मास, ५. छत्तीस दिन।

अष्टाङ्ग–१. वार, २. घटिका, ३. दिन, ४. नित्या, ५. वर्ष, ६. मास, ७. युग, ८. परिवृत्ति।

द्वादशाङ्ग–१. वार, २. घटि, ३. युग, ४. मास, ५. पक्ष, ६. तिथि, ७. परिवृत्ति, ८. महा-युग, ९. पूर्ण, १०. शवल, ११ दिन, १२ महा-परिवृत्ति।

षोडशाङ्ग–१. श्री चक्र-स्थान, २. युग, ३. परिवृत्ति, ४. वर्ष, ५. ऋतु, ६. मास, ७. दिन-नित्या, ८. महा-नित्या, ९. तत्त्व-दिन, १०. वासर, ११. चक्रेश्वरी, १२. उदय-वर्ण, १३. नक्षत्र, १४. योग, १५. करण, १६. भूत।

इन सब अङ्गों की गणना करना सामान्य साधक के लिए सम्भव नहीं रहा है। **'राष्ट्र-गुरु' स्वामी जी की कृपा से 'षोडशाङ्ग तान्त्रिक पञ्चाङ्ग'** का प्रकाशन होने लगा है। **उसी की सहायता से उक्त अङ्गों को सहज ही जानकर 'तान्त्रिक सङ्कल्प' कर सकते हैं।**

उक्त षोडशाङ्ग तान्त्रिक-पञ्चाङ्ग में निम्न अङ्गों की योजना है–१. पूर्ण, २. सत्य, ३. शबल, ४. खर्व, ५. राम, ६. महा-परिवृति, ७. परिवृति, ८. महा-युग, ९. युग, १०. वर्ष, ११. मास, १२. लघु-मास, १३. पक्ष, १४. दिन, १५. तिथि-नित्या और १६. वार, घटी, नक्षत्र, योग, करण। यद्यपि 'विद्या' 'महा-विद्या' और **'शुक्रादि वारों'** की उपर्युक्त अङ्गों में स्थान नहीं है, तथापि **'मन्त्र-पारायण'** में इनका उपयोग रहने से पञ्चाङ्ग में इन्हें भी स्थान दिया गया है।

तान्त्रिक पञ्चाङ्ग का गणित

१० विद्या=१ महा-विद्या। ३६ दिन=१ मास। ७२ दिन=२ मास=१ ऋतु। ५७६ दिन=१६ मास=८ ऋतु=१ वर्ष। २०७३६ दिन=५७६ मास=२८८ ऋतु=३६ वर्ष=१ परिवृति। ७४६४९६ दिन=२०७३६ मास=१२९६ वर्ष=३६ परिवृति=१ युग।

पूर्ण–अं शिव-तत्त्वम्। सत्य–षं आकाश-तत्त्वम्। शबल–हं तेज-तत्त्वम्। खर्व–ह्स्ख्फ्रें। राम–क्लीं। महा-परिवृति–स्ह्ख्फ्रें। महा-युग–शून्य। युग–खं सदाशिव-तत्त्वम्।

युग–अहर्गण में ७४६४९६ से भाग दें। भाग-फल में १ जोड़ देने पर, जो योग प्राप्त हो वह–अं, कं, खं····· हं, ळं, क्षं (कुल ३६) क्रम से।

परिवृति–उपरोक्त 'युग' की गणना में भाग देने पर, जो शेष बचे उसमें पुनः २०७३६ से भाग दें। भाग-फल में १ जोड़ देने पर, जो योग प्राप्त हो वह–अं, कं, खं·····हं, ळं, क्षं (कुल ३६) क्रम से।

वर्ष–उपरोक्त 'परिवृति' की गणना में भाग देने पर, जो शेष बचे उसमें पुनः ५७६ से भाग दें। भाग-फल में १ जोड़ देने पर, जो योग प्राप्त हो वह–**अं, कं, खं······हं, ळं, क्षं** (कुल ३६) क्रम से।

ऋतु–उपरोक्त 'वर्ष' की गणना में भाग देने पर, जो शेष बचे उसमें पुनः ७२ से भाग दें। भाग-फल में १ जोड़ देने पर, जो योग प्राप्त हो वह–**श्रीकरी, मोहिनी, कामिनी, विमला, हारिणी, भ्रामिणी, गौरी, लक्ष्मी (कुमारिका)** क्रम से।

मास–उपरोक्त 'वर्ष' की गणना में भाग देने पर, जो शेष बचे उसमें पुनः ३६ से भाग दें। भाग-फल में १ जोड़ देने पर, जो योग प्राप्त हो वह–**अं, कं, खं······हं, ळं, क्षं** (कुल ३६) क्रम से।

दिन-तत्त्व–उपरोक्त मास (जो ३६ दिनों का होता है) की गणना में भाग देने पर, जो शेष बचे वह–**अं, कं, खं······हं, ळं, क्षं** (कुल ३६) क्रम से।

लघु-मास–दोनों पक्षों (शुक्ल एवं कृष्ण) को मिलाकर अर्थात् ३० दिनों में–**अं, कं, खं······हं, ळं, क्षं** (कुल ३६ क्रम से) होते हैं। दोनों पक्षों में ५, १० तथा १५/३० तिथि को २-२ अक्षर एवं शेष तिथियों में १ अक्षर होता है। उदाहारण-स्वरूप–**शुक्ल-पक्ष**, प्रथम तिथि–अं, द्वितीय तिथि–कं, पञ्चम तिथि–घं, ङ, दशम तिथि–ञं, टं, पूर्णिमा तिथि–तं, थं। **कृष्ण-पक्ष**, प्रथम तिथि–दं, द्वितीय तिथि–धं, पञ्चम तिथि–फं, बं, दशम तिथि–लं, वं, अमावास्या तिथि–ळं, क्षं।

पक्ष–प्रत्येक पक्ष (१५ दिनों) में–**अं, कं, खं······हं, ळं, क्षं** क्रम से कुल ३६ होते हैं। इनका प्रारम्भ प्रत्येक पक्ष की प्रथम तिथि से होता है। प्रत्येक पक्ष में ५, १० तथा १५/३० तिथि को ४-४ अक्षर एवं शेष तिथियों में २ अक्षर होता है। उदाहरण-स्वरूप–प्रत्येक पक्षों की प्रथम तिथि–**अं, कं**, द्वितीय तिथि–**खं, गं**, पञ्चम तिथि–**जं, झं, ञं, टं**, दशम तिथि–**नं, पं, फं, बं**, पूर्णिमा/अमावास्या तिथि–**सं, हं, ळं, क्षं**।

तिथि नित्या–अहर्गण में ३० का भाग दें। शेष–**अं, आं, इं, ईं, उं, ऊं, ऋं, ॠं, ऌं, ॡं, एं, ऐं, ओं, औं, अं, अं, औं, ओं, ऐं, एं, ॡं, ऌं, ॠं, ऋं, ऊं, उं, ईं, इं, आं, अं** क्रम से।

नाथ (वार)–अहर्गण में ९ का भाग दें। शेष–**अं, ऌं, कं, चं, टं, तं, पं, यं, शं** क्रम से।

उदय-घटी–अहर्गण में ५ का भाग दें। शेष–**अं, एं, चं, तं, यं** क्रम से।

नक्षत्र–अहर्गण में ३६ का भाग दें। शेष–**ऌं, ॡं, एं, ऐं, ओं, औं, अं, अः, कं, खं, गं, घं, ङ, चं, छं, जं, झं, ञं, टं, ठं, डं, ढं, णं, तं, थं, दं, धं, नं, पं, फं, बं, भं, मं, यं, रं, लं** क्रम से।

योग–अहर्गण में ३६ का भाग दें। शेष–**अं, आं, इं, ईं, उं, ऊं, ऋं, ॠं, ऌं, ॡं, एं, ऐं, ओं, औं, अं, अः, कं, खं, गं, घं, ङं, चं, छं, जं, झं, ञं, टं, ठं, डं, ढं, णं, तं, थं, दं, धं, नं** क्रम से।

करण–अहर्गण में १२ का भाग दें। शेष–**ऋं, ॠं, ऌं, ॡं, एं, ऐं, ओं, औं, अं, अः, कं, खं** क्रम से।

दिन–अहर्गण में ७ का भाग दें। शेष–**शुक्र, शनि, रवि, सोम, मङ्गल, बुध, गुरु** क्रम से।

विद्या–अहर्गण में १० का भाग दें। शेष–**काली, कला, मालिनी, मातङ्गी, विजया, जया, भगवती, देवी, शिवा, शाम्भवी** क्रम से।

महा-विद्या–अहर्गण में १०० का भाग दें। शेष–(१-१०) **शक्ति**। (११-२०) **शङ्कर-वल्लभा**। (२१-३०) **त्रि-नयना**। (३१-४०) **वाग्वादिनी**। (४१-५०) **भैरवी**। (५१-६०) **ह्रींङ्कारी**। (६१-७०) **त्रिपुरा**। (७१-८०) **परापरमयी**। (८१-९०) **बाला**। (९१-००) **कुमारी** क्रम से।

तान्त्रिक पञ्चाङ्ग के अनुसार ३६ तत्त्वों का विवरण

१-अं-शिव	१०-झं-काल	१९-दं-चक्षु	२८-रं-स्पर्श
२-कं-शक्ति	११-ञं-नियति	२०-धं-जिह्वा	२९-लं-रूप
३-खं-सदा-शिव	१२-टं-पुरुष	२१-नं-घ्राण	३०-वं-रस
४-गं-ईश्वर	१३-ठं-प्रकृति	२२-पं-वाक्	३१-शं-गन्ध
५-घं-शुद्ध-विद्या	१४-डं-अहङ्कार	२३-फं-पाणि	३२-षं-आकाश
६-ङं-माया	१५-ढं-बुद्धि	२४-बं-पाद	३३-सं-वायु
७-चं-कला	१६-णं-मन	२५-भं-पायु	३४-हं-अग्नि
८-छं-विद्या	१७-तं-श्रोत्र	२६-मं-उपस्थ	३५-ळं-सलिल(तेज)
९-जं-राग	१८-थं-त्वक्	२७-यं-शब्द	३६-क्षं-भूमि

तान्त्रिक पञ्चाङ्ग के अनुसार नव-नाथों का विवरण

	श्री-कुल	काली-कुल
१. अं-	प्रकाशानन्दनाथ	प्रह्लादानन्दनाथ
२. लं-	विमर्शानन्दनाथ	सकलानन्दनाथ
३. कं-	आनन्दानन्दनाथ	कुमारानन्दनाथ
४. चं-	ज्ञानानन्दनाथ	वशिष्ठानन्दनाथ
५. टं-	सत्यानन्दनाथ	क्रोधानन्दनाथ
६. तं-	पूर्णानन्दनाथ	सुरानन्दनाथ
७. पं-	स्वभावानन्दनाथ	ध्यानानन्दनाथ
८. यं-	प्रतिभानन्दनाथ	बोधानन्दनाथ
९. शं-	सुभगानन्दनाथ	शुक्रानन्दनाथ

तान्त्रिक पञ्चाङ्ग के अनुसार १६ मासों एवं ८ ऋतुओं का विवरण

	श्री-कुल	काली-कुल	चन्द्र-कला (दोनों कुल)	सदाशिव-कला (दोनों कुल)	ऋतु
१. अं-	कामेश्वरी	काली	अमृता-कला	निवृति-कला	श्रीकरी
२. आं-	भग-मालिनी	कपालिनी	मानद-कला	प्रतिष्ठा-कला	श्रीकरी
३. इं-	नित्य-क्लिन्ना	कुल्ला	पूषा-कला	विद्या-कला	मोहिनी
४. ईं-	भेरुण्डा	कुरु-कुल्ला	तुष्टि-कला	शान्ति-कला	मोहिनी
५. उं-	वह्नि-वासिनी	विरोधिनी	पुष्टि-कला	इन्धिका-कला	कामिनी
६. ऊं-	वज्रेश्वरी	विप्रचित्ता	रति-कला	दीपिका-कला	कामिनी
७. ऋं-	शिवदूती	उग्रा	धृति-कला	रेचिका-कला	विमला

८. ऋं-	त्वरिता	उग्रप्रभा	शशिनी-कला	मोचिका-कला	विमला
९. लं-	कुल-सुन्दरी	दीप्ता	चन्द्रिका-कला	परा-कला	हारिणी
१०. लॄं-	नित्या	नीला	कान्ति-कला	सूक्ष्मा-कला	हारिणी
११. एं-	नील-पताका	घना	ज्योत्सना-कला	सूक्ष्मामृता-कला	भ्रामिणी
१२. ऐं-	विजया	बलाका	श्री-कला	ज्ञाना-कला	भ्रामिणी
१३. ओं-	सर्व-मङ्गला	मात्रा	प्रीति-कला	ज्ञानामृता-कला	गौरी
१४. औं-	ज्वालामालिनी	मुद्रा	अङ्गदा-कला	आप्यायिनी-कला	गौरी
१५. अं-	चित्रा	सिता	पूर्णा-कला	व्यापिनी-कला	लक्ष्मी
१६. अः-	महा-त्रिपुर-सुन्दरी	असिता	पूर्णामृता-कला	व्योम-रूपा-कला	लक्ष्मी

'मन्त्र-पारायण' की विधि में और **'तान्त्रिक सन्ध्या'** के अवसर पर तथा अन्य अनुष्ठानों में **तान्त्रिक सङ्कल्प** का उपयोग करने से विशेष अनुभूति की प्राप्ति होती है। **'तान्त्रिक सङ्कल्प'** का सामान्य प्रारूप निम्न प्रकार है-

'तान्त्रिक सङ्कल्प' का सामान्य प्रारूप – एक उदाहरण
(ज्येष्ठ शुक्ला प्रतिपदा, संवत् २०६२ विक्रमी-७ जून, २००५ हेतु सङ्कल्प)

ॐ ऐं ह्रीं श्रीं (१) अं पूर्णे, (२) षं सत्ये, (३) हं शबले, (४) ह्स्ख्फ्रें खर्वे, (५) क्लीं रामे, (६) स्ह्ख्फ्रें महा-परिवृत्तौ, (७) शून्यं महा-युगे, (८) खं तृतीय युगे, (९) थं अष्टादश-परिवृत्तौ, (१०) हं तेज-तत्त्व चतुर्त्रिंशत-वर्षे, (११) कुमारिका-ऋतौ, (१२) अः महा-त्रिपुर-सुन्दरी-मासौ, (१३) अं लघु-मासे, (१४) अं कं पक्षे, (१५) दं दिन-तत्त्वे, (१६) अं तिथि-नित्यायां, अ नाथे, अ उदय-घटिकायां, टं नक्षत्रे, गं योगे, ओं करणे, काली-विद्यायां, परापर-मयी महा-विद्यायां, भौम-वासरे शाम्भव-गोत्रोत्पन्नो अमुकानन्द-नाथोऽहं श्रीअमुक-देवता-प्रीत्यर्थे नित्यां, नैमित्तिकां वा पूजा-जपादिकं कर्म करिष्ये।

उक्त प्रारूप में भी 'अमुक' के स्थान पर देवता के नाम का उच्चारण करना होता है।

सारांश

'सङ्कल्प' का महत्त्व यह है कि साधक साधना करने के पूर्व अपनी स्थिति को समुचित रूप से हृदयङ्गम करते हुए गृहीत साधना के प्रति मनसा, वाचा, कर्मणा अपनी दृढ़ता की पुष्टि करता है। इसी के लिए प्रत्येक अनुष्ठान के पूर्व हाथ में **जलाक्षत-पुष्प-कुशादि** लेकर **'सङ्कल्प'** की क्रिया करनी होती है। अधिक उन्नत अवस्था को पहुँचकर केवल **मानसिक सङ्कल्प** द्वारा ही यह क्रिया सम्पन्न हो जाती है, किन्तु प्रारम्भिक एवं माध्यमिक स्तर में **'सङ्कल्प'** की यह क्रिया आवश्यक रूप से कर्त्तव्य है।

यहाँ यह उल्लेखनीय है कि काम्य-प्रयोगों में **'सङ्कल्प'** के कामना-परक वाक्य के संयोजन में विशेष सावधानी अपेक्षित है। इस प्रकार के वाक्य की रचना में प्रायः अनुष्ठान-कर्त्ताओं को कठिनाई अनुभव होती है। अतः यहाँ कुछ प्रारूप उद्धृत किए जाते हैं। इन प्रारूपों की प्रतिलिपि एक क्रिया-सिद्ध तान्त्रिक **स्व०**

बच्चूलाल तिवारी के पुत्र पं० वामदेव से प्राप्त हुई थी और इनका प्रकाशन 'चण्डी' वर्ष-१३-सं० २०११ के पृष्ठ ३१९ पर किया गया था।

उद्धृत प्रारूपों के पूर्व 'सङ्कल्प' के प्रथम एवं द्वितीय भागों की पूर्ति पूर्वोक्त सङ्कल्प-प्रारूप के आधार पर कर लेनी चाहिए क्योंकि ये प्रारूप तीसरे भाग से सम्बन्धित हैं–

(१) दुर्गा सप्तशती–सर्व-शत्रु-पराजय हेतु

श्रीमहा-काली-महा-लक्ष्मी-महा-सरस्वती-देवता-प्रसाद-सिद्धि-द्वारा मम (अमुक-नाम-यजमानस्य वा) अमुक-न्याय-शालायां विजय-प्राप्त्यर्थं नाना-गोत्राणां स-साक्षिणां स-प्राङ्सिकानां स-प्रतिकूल-कारिणां अमुक-नाम-प्रभृतिकानां सर्व-शत्रूणां पराजयार्थं तेषां च जिह्वा-कीलनार्थं बुद्धि-विनाशनार्थं वाङ् -मुख-बुद्धि-स्तम्भनार्थं मार्कण्डेय-पुराणान्तर्गत-सावर्णिक-मन्वन्तरीय-देवी-माहात्म्य-स्वरूपस्य सप्तशती-स्तोत्रस्य 'मार्कण्डेय उवाचे' त्यारभ्य 'सावर्णिर्भविता मनु' रिति पर्यन्तस्य प्रति-मन्त्रे 'ॐह्रीं' मिति सम्पुटितस्यान्ते 'स्वाहा'-पल्लव-सहितस्याष्टादशावृत्ति-पाठमहं करिष्यामि।

अद्य पूर्वोच्चरित-संख्या-पूर्णार्थं तदङ्गत्वेनादौ कवचार्गल-कीलक-रात्रि-सूक्त-पठनमाद्यन्तयोरष्टोत्तर-शत-संख्याक-नवार्ण-बीज-पूर्वकं क्रमेण देवी-सूक्त-पठनमन्ते रहस्य-त्रय-पठनमहं करिष्यामि तदङ्गत्वेनादौ भूत-शुद्ध्यादि मातृकाद्यनेक-न्यास-करण-पूर्वकं सावरण-श्रीमहा-लक्ष्मी-पीठार्चनमहं करिष्यामि।

♦♦♦

(२) दुर्गा सप्तशती–विजय-प्राप्ति एवं कारागार आदि दण्डों से मुक्ति हेतु

श्रीमहा-काली-महा-लक्ष्मी-महा-सरस्वती-देवता-प्रसाद-सिद्धि-द्वारा अमुक-नगरस्थ उच्च-न्यायालयाख्य-न्याय-शालायां नाना-गोत्राणां अमुक-नामादीन् प्रभृतिकानां प्राप्त-राज-दण्डानां यजमानानां राज-दण्ड-विनिर्मुक्ति-प्रतिबन्धकाशेष-दुरित-क्षय-पूर्वक-विजय-प्राप्त्यर्थं कारागार-वासार्थ-दण्डादि-सर्व-राज-दण्ड-विनिर्मुक्त्यर्थं शत्रूणां पराजयार्थं मार्कण्डेय-पुराणान्तर्गत-सावर्णिक-मन्वन्तरीय-देवी-माहात्म्य-स्वरूपस्य सप्तशती-स्तोत्रस्य 'मार्कण्डेय उवाचे' त्यारभ्य 'सावर्णिर्भविता मनुरिति पर्यन्तस्य सप्तशती-स्तोत्रपाठमहं करिष्यामि।

अद्य पूर्वोच्चरित-संख्या-पूर्णार्थं तदङ्गत्वेनादौ कवचार्गल-कीलक-रात्रिसूक्त-पठनमाद्यन्तयोरष्टोत्तर-शत-संख्याक-नवार्ण-बीज-पूर्वकं क्रमेण देवी-सूक्त-पठनमन्ते रहस्य-त्रय-पठनमहं करिष्यामि तदङ्गत्वेनादौ भूत-शुद्ध्यादि मातृकाद्यनेक-न्यास-करण-पूर्वकं सावरण-श्रीमहा-लक्ष्मी-पीठार्चनमहं करिष्यामि।

♦♦♦

(३) दुर्गा सप्तशती–पदोन्नति हेतु

श्रीमहा-काली-महा-लक्ष्मी-महा-सरस्वती-देवता-प्रसाद-सिद्धि-द्वारा मम (अमुक-नाम-यजमानस्य वा) तद्-देशाधिकारि अमुक-नाम-अधिकारी-सकाशाज्झटिति अमुक-पद-प्राप्ति-कामनया

मार्कण्डेय-पुराणान्तर्गत-सावर्णिक-मन्वन्तरीय-देवी-माहात्म्य-स्वरूपस्य सप्तशती-स्तोत्रस्य 'मार्कण्डेय उवाचे' त्यारभ्य 'सावर्णिर्भविता मनु' रिति पाठमहं करिष्यामि ।

अद्य पूर्वोच्चरित-संख्या-पूर्णार्थं तदङ्गत्वेनादौ कवचार्गल-कीलक-रात्रि-सूक्त-पठनमाद्यन्तयोरष्टोत्तर-शत-संख्याक-नवार्ण-बीज-पूर्वकं क्रमेण देवी-सूक्त-पठनमन्ते रहस्य-त्रय-पठनमहं करिष्यामि तदङ्गत्वेनादौ भूत-शुद्ध्यादि मातृकाद्यनेक-न्यास-करण-पूर्वकं सावरण-श्रीमहा-लक्ष्मी-पीठार्चनमहं करिष्यामि ।

♦♦♦

(४) सन्तान-गोपाल मन्त्र-सन्तान-प्राप्ति हेतु

सन्तान-प्रद-श्रीकृष्ण-प्रसाद-सिद्धि-द्वारा मम (अमुक-नाम-यजमानस्य वा) जन्मान्तरीय-सन्तति-प्रतिबन्ध-दुर्दृष्ट-जनिताशेष-दोष-परिहारार्थं तद्-धर्म-पत्न्याश्चतुर्विध-वन्ध्यात्व-दोष-शान्त्यर्थं तद्-धर्म-पत्न्यामायुष्मन्छुभ-सन्तान-प्राप्त्यर्थं लक्ष-संख्याकं सन्तान-गोपाल-मन्त्र-जपमहं करिष्यामि ।

अद्य पूर्वोच्चरित-संख्या-पूर्णार्थमष्टोत्तर-त्रि-सहस्र-संख्याकं सन्तान गोपाल-मन्त्रस्य जपमहं करिष्यामि । तदङ्गत्वेन भूत-शुद्धि मातृकाद्यनेक-न्यास-करण-पूर्वक सावरण-श्रीकृष्ण-पीठ-पूजनमहं करिष्यामि ।

♦♦♦

(५) शरभ पक्षिराज-सर्व-रोग-निग्रह हेतु

श्रीशरभ-पक्षिराज-प्रीति-द्वारा मम (अमुक-नाम-यजमानस्य वा) शरीरे शरीरान्तर्गते प्लीहादि-सर्व-ज्वर-सर्व-रोग-निग्रहणार्थं सप्तावृत्ति शरभ-पक्षिराज-महा-कवच-पठन-पूर्वक तत्-कवचान्तर्गत 'ये मर्म-घातका' इति श्लोक-द्वयात्मक-मन्त्रस्य 'ॐ ऐं ह्रीं श्रीं' बीजादौ, अन्ते हुं फट् 'स्वाहा' पल्लवान्वितस्य पञ्च-विंशत्युत्तर-शत-संख्याक-जपमहं करिष्यामि । तदङ्गीभूतासन-भूत-शुद्ध्यादि-मातृकाद्यनेक-न्यास-करण-शरभ-शालुव-पक्षिराज-पूजन-पूर्वक शरभ-स्तोत्र-तिथि-कवच-पाठमहं करिष्यामि ।

●●●

'तिथि' का ध्यान-पूजनादि

साधक जो कुछ भी उपासना आदि करता है, उसमें **देश-काल** का ध्यान रखना आवश्यक है। जिस तरह **स्थान, आसन, माला** आदि की उत्तमता के अनुसार साधना शीघ्र सफल होती है, उसी प्रकार **'समय'** या **'काल'** का भी साधना के प्रतिफलन से गहरा सम्बन्ध है। इसी से **समय या काल** की दृष्टि से पृथक्-पृथक् उपासना पर शास्त्रों में जोर दिया है और उपासना की दृष्टि से **समय, प्रहर, मास, ऋतु** और यहाँ तक कि **'तिथि'** अर्थात् **दिन** और उसके **नक्षत्र, करण, योग** आदि का भी महत्त्व बताया गया है। अत: **सकाम** हो या **निष्काम**– सभी साधना-आराधना में **'तिथि'** आदि का **'सङ्कल्प'** में उल्लेख करते ही हैं पर बिना उसका महत्त्व समझे !

'तिथि-पूजा' का क्या महत्त्व है, यह **'गायत्री तन्त्र'** की निम्नोक्ति से स्पष्ट है–

तिथेर्ध्यानं बिना देवि! तिथेर्मन्त्रं तथैव च। अज्ञात्वा परमेशानि! दिन-कृत्यं करोति यः।
तस्य सर्वं भवेद् व्यर्थ, दिन-कृत्यं वरानने! या तिथिः सा महा-माया, आद्य-मूर्तिर्जगन्मयी॥

जिस **तिथि** में हम साधना कर रहे हैं, यदि हमारे उच्चारण एवं ज्ञान के अनुसार वही वर्तमान है, तब हमारी पूजा इष्ट तक पहुँचेगी, अन्यथा वह निरर्थक होगी। **'तिथि'** यदि निकल रही है या निकलनेवाली है, तो **'तिथि-पूजा'** के द्वारा **'तिथि'** को साधक की साधना-पर्यन्त स्थित रहना होगा। इस तथ्य से यह स्पष्ट है कि **'तिथि-पूजा'** कितनी उपयोगी है। अत: साधक को **'तिथि-पूजा'** सदा करनी चाहिए, जिससे साधना का श्रम व्यर्थ न जाय। इस पूजा में समय भी कम ही लगता है क्योंकि ध्यान के बाद केवल **दश-बार मन्त्र-जप** का **विधान** है। **तिथियाँ–अमृत-स्वरूपा** हैं और अमृत देवों को प्रिय है। अत: तिथियाँ भी देवों को प्रिय हैं। ऐसी दशा में **तिथि-पूजा, तिथि-ध्यान** और **तिथि-मन्त्र** का ज्ञान बड़ा आवश्यक और फल-प्रद है। **'तिथि'** के ध्यानादि से पूर्व **'पक्ष'** का ध्यानादि करना चाहिए। **पक्षों के ध्यान और मन्त्र** इस प्रकार हैं–

शुक्ल-पक्ष-स्वरूपिणी देवी का ध्यान और मन्त्र

शङ्ख-कुन्द-समाभासां, नव-यौवन-संयुक्तां। चतुर्भुजां त्रि-नयनां, मत्त-द्विरद-गामिनीम्॥
ललाट-पट्टिका-मध्ये, सिन्दूर-तिलकोज्ज्वलां। भ्रमद्-भ्रमर-नीलाभामञ्जनाञ्चित-लोचनाम्॥
पीतांशुक-परीधानां, कृष्ण-वस्त्रोत्तरीयिणीं। नानालङ्कार-सुभगां, नील-पद्मोपरि-स्थिताम्॥
घूर्णायमान-नयनां, नील-पद्म-विधारिणीं। सदा षोडश-वर्षीयां, कदम्ब-कोरक-स्तनीम्॥
हीरक-द्युति-सङ्काश-दश-ज्योतिरुज्ज्वलां। नाना-पुष्प-मयैर्हारैर्नाना-गन्ध-मयीं पराम्॥

ऐं ऐं क्रीं क्रीं शुक्ल-पक्षाय स्वाहा ऐं ऐं क्रीं क्रीं।

कृष्ण-पक्ष-स्वरूपिणी देवी का ध्यान और मन्त्र–

महा-मरकत-श्यामां, चतुर्बाहु-समन्वितां। पीनोत्तुङ्ग-कचां रम्यां, चित्र-वस्त्र-विलासिनीम्॥
नाना-श्रृङ्गार-वेशाढ्यां, स्फुरच्चकित-लोचनां। सिन्दूर-तिलकोद्दीप्तामञ्जनाञ्चित-लोचनाम्॥
कन्दर्प-धनुराकार-भ्रू-लता-परिशोभितां। रत्न-हारेण सहित-नाग-हार-विराजिताम्॥
पीत-पद्म-समासीनां, चित्र-चूडा-विराजितां। पीत-विद्युत् समाकाशां, तामुत्तरीय-वसनच्छविम्॥
पूर्ण-चन्द्र-मुखीं देवीं, कृष्ण-पक्ष-स्वरूपिणीम्। **–ॐ ॐ कृष्ण-पक्षाय स्वाहा ॐ ॐ**

कृष्ण एवं शुक्ल पक्षों में 'तिथि' को अपने 'पक्ष' के वर्ण अर्थात् काले या गौर स्वरूप की ध्यान करना चाहिए । शुक्ल-पक्ष की प्रत्येक तिथि का ध्यान और मन्त्र निम्न प्रकार है–

शुक्ल-पक्ष की प्रत्येक तिथि का ध्यान और मन्त्र

१–द्वि-भुजां शुक्ल-रूपां च, खेलत्-खञ्जन-गामिनीं । द्वि-लोचनां शशि-कलां, सिन्दूर-तिलकोज्ज्वलाम् ।।
तप्त-हाटक-निर्माण-नानालङ्कार-भूषितां । दाडिमी-बीज-सदृश-दशन-द्युति-शोभनाम् ।।
ध्याये प्रतिपदं देवीं, जप-पूजा-विशुद्धये । –ग्रीं प्रतिपद्भ्यः स्वाहा ।।

२–द्वि-लोचनां शशि-कलां, शुद्ध-स्फटिक-शोभनां । शुद्धाभरण-शोभाढ्यां, शुक्ल-वस्त्र-परिच्छदाम् ।।
नाना-कटाक्ष-संयुक्त-भ्रू-लता-परिशोभितां । सिन्दूर-तिलकोद्दीप्तां, खञ्जनाञ्चित-लोचनाम् ।।
द्वि-भुजां सुन्दराङ्गीं च, किशोरीं नव-यौवनाम् । –ऐं द्वितीयायै स्वाहा ।।

३–शुक्ल-पद्म-प्रतीकाशां, शुक्ल-वस्त्र-परिच्छदां । शुक्लाभरण-शोभाढ्यां, पुण्डरीकोपरि-स्थिताम् ।।
द्वि-लोचनां शशि-कलां, सिन्दूर-तिलकोज्ज्वलां । कटाक्ष-विशिखोपेतां, द्वि-भुजां तृतीयां भजे ।।
–ॐ ऐं तृतीयायै स्वाहा ।।

४–चतुर्थीं शुक्ल-चार्वङ्गीं, सुन्दरी लोल-लोचनां । कुन्द-पुष्प-समाभासां, द्वि-भुजां लोल-लोचनाम् ।।
शुक्ल-वस्त्र-परीधानां, शुक्लाभरण-भूषितां । सिन्दूर-तिलकोद्दीप्तां, खञ्जनाञ्चित-लोचनाम् ।।
–ऐं हुं चतुर्थ्यै स्वाहा ।।

५–शुद्ध-स्फटिक-सङ्काशां, श्वेत-पद्मोपरि-स्थितां । हास्य-युक्तां प्रसन्नास्यां, कटाक्ष-विशिखोज्ज्वलां ।।
कन्दर्प-धनुराकार-भ्रू-लता-परिशोभितां । द्वि-भुजां श्वेत-वर्णां च, श्वेताकार-विभूषिताम् ।।
लोचन-द्वय-संयुक्तां, सिन्दूर-तिलकोज्ज्वलाम् । मृणाल-सदृशाकार-बाहु-वल्ली-विराजिताम् ।।
खेलत्खञ्जन-गामीं च, चारु-चूडा-विराजिताम् । –ह्रीं ऐं ह्रीं पञ्चम्यै स्वाहा● ।।

६–कुन्द-पुष्प-समाभासां, द्वि-भुजां लोल-लोचनां । कटाक्ष-विशिखोद्दीप्तां, सिन्दूर-तिलकोज्ज्वलाम् ।।
दाडिमी-बीज-सदृश-दशन-द्युतिमुज्ज्वलां । शुक्लालङ्कार-सुभगां, शुक्लासन-निवासिनीम् ।।
शुक्ल-वस्त्र-परिच्छिन्नां, शुक्ल-हार-विनोदिनीं । द्वि-भुजां चन्द्र-वदनां, ध्याये चात्म-विभूतये ।।
–ॐ ह्रीं षष्ठ्यै स्वाहा ।।

७–शरच्चन्द्र-प्रतीकाशां, द्वि-भुजां शशि-शेखरां । लोचन-द्वय-संयुक्तां, खेलत्-खञ्जन-गामिनीम् ।।
सिन्दूर-तिलकोद्दीप्तामञ्जनाञ्चित-लोचनां । कटाक्ष-विशिखोपेतां, भ्रू-लता-परिशोभिताम् ।।
शुक्लासन-समासीनां, शुक्लाभरण-भूषितां । शुक्ल-वस्त्र-परीधानां, ध्याये चात्म-विभूतये ।।
–ह्रीं ॐ सप्तम्यै स्वाहा ॐ ह्रीं ।।

●–'ह्री ऐं ह्रीं' विशेषः ।

विशेषतः श्री-पञ्चम्यां, कर्तव्यं पूजनं महत् । निरीक्ष्य दक्षिण-नाथे, ध्यान-पूजनादिकं चरेत् ।।
ध्यायेत् परम-यत्नेन, पञ्चमी-तिथि-रूपिणीं । ध्यात्वा पाद्यादिकं दत्वा, प्रजपेद्दशधा मनुम् ।।

८-राका-चन्द्र-प्रतीकाशां, द्वि-भुजां चन्द्र-शेखरां। पूर्ण-चन्द्र-मुख-श्रेणीं, कुटिलालक-शोभिताम्।।
हास्य-युक्तां प्रसन्नास्यां, श्वेत-वस्त्र-परिच्छदां। श्वेताभरण-शोभाढ्यां, किशोरीं नव-यौवनाम्।।
माला-कटाक्ष-संयुक्तां, भ्रू-लता-परिशोभितां। सिन्दूर-तिलकोद्दीप्तामञ्जनाञ्चित-लोचनाम्।।
-क्रीं हुं ऐं अष्टम्यै स्वाहा ऐं हुं क्रीं ।।

९-श्वेत-पद्म-प्रतीकाशां, द्वि-भुजां लोल-लोचनां। दाडिमी-बीजां-सदृश-दन्त-पंक्ति-परिच्छदाम्।।
शुक्ल-पट्टाम्बर-धरां, शुक्ल-वस्त्रोत्तरीयिणीं। ललाटे पट्टिकां शुद्धां, सिन्दूर-तिलकोज्ज्वलां ।।
मुक्ता-वर्तुल-हारेण, कम्बु-कण्ठ-सुशोभितां। नाना-माल्य-परिच्छिन्नां, चित्र-राज-विराजिताम्।।
-ॐ हुं नवम्यै स्वाहा हुं ॐ ।।

१०-मल्लिका-पुष्प-सङ्काशां, द्वि-भुजां लोल-लोचनां। श्वेतासनोपविष्टां च, श्वेतांशुक-परिच्छदाम्।।
श्वेताभरण-संयुक्तां, श्वेत-गन्ध-विलेपिनीं । सिन्दूर-तिलकोद्दीप्तामञ्जनाञ्चित-लोचनाम् ।।
-ऐं ॐ दशम्यै स्वाहा ॐ ऐं ।।

११-केतकी-पुष्प-सङ्काशां, भ्रू-लता-परिशोभितां। नाना-कटाक्ष-संयुक्तां, मत्त-द्विरद-गामिनीम्।।
नानालङ्कार-सुभगां, पीत-वस्त्र-परिच्छदां। पीत-गन्ध-प्रलिप्ताङ्गीं, सिन्दूर-तिलकोज्ज्वलां ।।
दाडिमी-बीज-सदृश-दन्त-पंक्तिमनुत्तमां । द्वि-भुजां सुन्दरीं देवीं, नमाम्यात्म-विभूतये ।।
-ॐ क्रीं ॐ एकादश्यै स्वाहा ॐ क्रीं ॐ ।।

१२-पीत-गन्ध-समाभासां, शुक्ल-वस्त्र-परिच्छदां। शुक्ल-चन्दन-सिक्ताङ्गीं, द्वि-भुजां लोल-लोचनाम्।।
शुक्लाभरण-शोभाढ्यां, शुक्लासन-समाश्रयां। दाडिमी-बीज-सदृश-दशन-द्युति-शोभनाम्।।
सिन्दूर-तिलकोद्दीप्तां, ललाट-पट्टिकां शुभाम्। -ह्रीं ॐ ह्रीं द्वादश्यै स्वाहा ह्रीं ॐ ह्रीं ।।

१३-रक्त-चन्द्र-प्रतीकाशां, किशोरीं नव-यौवनां। रक्त-पीत-परीधानां, कुटिलालक-मण्डिताम् ।।
द्वि-भुजां सुन्दरीं शुद्धां, पूर्ण-चन्द्र-मुख-प्रभाम्। द्वि-लोचनां चन्द्र-रेखां, विष्णु-पूज्यां वृहत्कटीम्।।
सिन्दूर-तिलकोद्दीप्तामञ्जनाञ्चित-लोचनां। नाना-कटाक्ष-संयुक्तां, नाना-शृङ्गार-शोभनाम्।।
-ॐ ऐं त्रयोदश्यै स्वाहा ऐं ॐ ।।

१४-शुद्ध-स्फटिक-सङ्काशां, हरि-हस्त-विनोदिनीं। नानालङ्कार-सुभगां, पीत-माल्य-परिच्छदाम्।।
श्वेत-पद्म-समासीनां, द्वि-भुजां लोल-लोचनां। कटाक्ष-विशिखोद्दीप्तां, सिन्दूर-तिलकोज्ज्वलाम्।।
दाडिमी-बीज-सदृश-दशन-द्युतिमुज्ज्वलां । कदम्ब-कोरकाकार-स्तन-द्वय-मनोहराम् ।।
हास्य-युक्तां प्रसन्नास्यां, किशोरीं नव-यौवनाम्। -क्रीं ॐ ह्रीं चतुर्दश्यै स्वाहा ह्रीं ॐ क्रीं ।।

१५-कोटि-विद्युल्लताकारां, चतुर्बाहु-समन्वितां । पीतांशुक-परीधानां, रत्न-सार-विराजिताम् ।।
शङ्ख-कङ्कण-केयूर-नाना-शृङ्गार-भूषितां । रत्न-कुण्डल-संयुक्त-स्फुरद्-गण्ड-मनोहराम् ।।
त्रिभङ्ग-ललिताकारां, सिन्दूर-तिलकोज्ज्वलां। कटाक्ष-लक्ष-संयुक्तां, भ्रू-लता-परिशोभिताम्।।
-ह्रीं ॐ क्रीं ॐ पूर्णिमायै स्वाहा ॐ क्रीं ॐ ह्रीं ।।

कृष्ण-पक्ष में तिथियों का ध्यान निम्न प्रकार करे-

नीलाञ्जन-चय-प्रख्याः, किशोर्यो नव-यौवनाः ।

यही ध्यान कृष्ण-पक्ष की प्रत्येक तिथि का करना चाहिए और 'मन्त्र' पूर्व-तिथियों के क्रमानुसार ही इस पक्ष की तिथियों के भी होते हैं। अतः उन्हीं मन्त्रों का जप करना चाहिए। 'अमावास्या' का ध्यान और मन्त्र निम्न प्रकार है-

ललिताञ्जन-सङ्काशां, पीतांशुक-परिच्छदां । पीत-गन्ध-प्रलिप्ताङ्गीं, पीताभरण-भूषिताम् ।।
पीत-पद्म-समासीनां, किशोरीं नव-यौवनां । द्वि-लोचनां चन्द्र-रेखां, द्वि-भुजां कोरक-स्तनीम् ।।
ललाट-पट्टिका-शुद्धां, सिन्दूर-तिलकोज्ज्वलां । खेलत्-खञ्जन-गामीं च, त्रि-भङ्ग-ललिताकृतिम् ।।
दाडिमी-बीज-सदृश-दशन-ज्योतिरुज्ज्वलाम् ।।

–ॐ ह्रीं ह्रीं ॐ अमावास्यायै स्वाहा ॐ ह्रीं ह्रीं ॐ ।

पक्षों और तिथियों के ध्यान एवं मन्त्रों के साथ ही 'तिथि' के 'कवच-स्तोत्र' की भी अपनी उपयोगिता है । अतः उसे भी यहाँ उद्धृत किया जाता है–

तिथि-कवच-स्तवः

विनियोग–ॐ अस्य तिथीनां कवचस्य, अश्वत्थामा-बलि-व्यास-हनुमद्-विभीषण-कृप-परशुरामा ऋषयो, गायत्री छन्दः, श्रीमृत्युञ्जय-शिवो देवता, धर्मार्थ-काम-मोक्षेषु विनियोगः ।

पूर्वे पातु सदा नित्या, क्रीङ्कारी प्रतिपत्-तिथिः । क्लीङ्कारी पातु मे नित्यं, द्वितीया ब्रह्म-पूजिता ।।
ऐङ्कारी पातु मे नित्यं, तृतीया पश्चिमे परा । ब्लुङ्कारी पातु मे नित्या, चतुर्थी विष्णु-पूजिता ।।
ब्लुङ्कारी पातु मे नित्यमूर्ध्व-देहमहर्निशं । ह्रीङ्कारी पातु मे नित्यं, पञ्चमी मुख-मण्डलम् ।।
श्रीङ्कारी पातु मे नित्यं, षष्ठी-रूपा च पार्वती । स्त्रीङ्कारी सप्तमी पातु, नित्यं मे नाभि-मण्डलम् ।।
हुंकारी चाष्टमी नित्यं, कण्ठं मे पातु सर्वदा । श्रीङ्कारी नवमी नित्यं, स्वाधिष्ठानं सदाऽवतु ।।
दशमी पातु मे नित्यं, हस्त-युग्मं यथा तथा । एकादशी सदा पातु, चाक्षि-युग्ममहर्निशम् ।।
द्वादशी पातु मे नित्यं, हस्त-युग्मं यथा तथा । त्रयोदशी महा-लक्ष्मीः, क्षेत्र-स्थान-निवासिनी ।।
त्रयोदशी पातु नित्यं, हंस इत्यक्षरात्मिका । हुङ्कारः पातु मे नित्यं, पाद-युग्ममहर्निशम् ।।
सः कारः पातु मे नित्यं, पादाग्रात् केश-मण्डलम् । चतुर्दशी महा-माया, सर्वत्र परि-रक्षतु ।।
स्वाकारश्चतुर्दशी नित्या, नित्यं मे धन-सम्पदं । हाकारः पूर्णिमा नित्यं, देहि मे आयु-वर्धनम् ।।
श्रीं हुं ह्रीं स्वाहा सर्व-रूपा देवी तिथि-रूपा च मां परिरक्षतु सर्वदा ।
हुं ह्रीं अमावास्या सदा पातु दारान् पुत्र - परिच्छदम् ।
ह्रीं हुं ह्रीं स्वाहा कथितं कवचं देवि! त्रैलोक्येषु दुर्लभम् ।।

।। फल-श्रुति ।।

इदं कवचमज्ञात्वा, कवचान्यं पठेत्तु यः । अन्येषां कवचानां च, तेजांसि हरते तिथिः ।।
तस्मात् यत्नेन हे देवि! तिथीनां कवचं पठेत् । ध्यानं मन्त्रं तथा स्तोत्रं, च कवचं तथा प्रिये ।।
कलि-काल-मतं देवि! पर-तत्त्वं विनिर्गतम् । इति ते कथितं देवि! सारात्सारं परात्परम् ।।

अन्त में यह पुनः उल्लेखनीय है कि 'तिथि-पूजा' में विशेष आडम्बर अपेक्षित नहीं है । केवल ध्यान कर दश बार मन्त्र जप करने से ही 'तिथि-पूजा' हो जाती है । फल-प्राप्ति की दृष्टि से इसका विशेष महत्त्व है । अतः प्रत्येक उपासक को प्रति-दिन अवश्य 'तिथि-पूजा' करनी चाहिए ।

●●●

प्रातःकृत्य एवं भूत-शुद्धि

प्रति-दिन प्रातः समय किए जानेवाले कर्मों को '**प्रातः-कृत्य**' कहते हैं, जिसके बिना साधना का फल नहीं होता। इसीलिए साधना (पूजा-क्रम) के पहले **प्रातः-कृत्य** करना अति आवश्यक है। **प्रातः-कृत्य** से साधना में बल मिलता है। इससे तीनों शरीरों की शुद्धि होती है, चरम ज्ञानोदय होता है। इसी को पशु-पाश-विमोचन कहते हैं। इससे उत्तम पुण्य मिलता है।

रात में गहरी निद्रा से पिछले दिन की शारीरिक और मानसिक सारी थकान दूर हो जाती है। निद्रा टूटने पर शरीर और मन सब चिन्ताओं से छूटकर चित्त प्रसन्न हो जाता है। प्रभात-काल में मधुर और ठण्डी हवा चलती है, जिससे सारे दिन-रात में मङ्गलकारी ध्यान करने का इससे उत्तम समय अन्य कोई नहीं होता। इसी से 'मनु-स्मृति' में कहा है कि-'**ब्राह्म-मुहूर्त्त** या रात्रि के अन्तिम यामार्द्ध में जगकर धर्म और अर्थ का चिन्तन करे, जिससे इन दोनों की सम्पन्नता मिले। इस प्रकार के शारीरिक कष्ट को स्वीकार करे तथा वेद द्वारा प्रतिपाद्य पर-ब्रह्म का निरूपण करे।'

प्रातः-कृत्य के लिए साधक को **ब्राह्म-मुहूर्त** में उठना चाहिए। इस मुहूर्त्त का परिचय देते हुए कहा गया है कि-

ब्राह्म-मुहूर्त्त अर्थात् रात्रि का अन्तिम यामार्द्ध। रात्रि-काल को आठ भागों में विभक्त करे। अन्तिम भाग को, जिसे भोर का समय कहते हैं, दो भागों में बाँटे। इन भागों में से पहला '**ब्राह्म**' और दूसरा भाग '**रौद्र**' माना गया है। अतः प्रायः चार दण्ड रात्रि रहने पर जो समय होता है, वही **ब्राह्म-मुहूर्त्त** है। 'यामल' में कहा है कि रात्रि के दो दण्ड रहने पर जो समय होता है, वही **ब्राह्म-मुहूर्त** है।

इसी प्रकार शास्त्र की यह आज्ञा है कि प्रातः-काल निद्रा टूटने के बाद मन को प्रफुल्लित करने के लिए पुण्यवान् व्यक्तियों, मङ्गल-मय पदार्थों आदि के नाम लेने चाहिए। इससे मन प्रफुल्लित होगा और इस दशा में जो भी कार्य किया जाएगा, वह सफल होगा। मन के उदास होने से कार्य करने में उसकी सफलता नहीं होती। शास्त्र की उक्त आज्ञा का यही उद्देश्य है कि मन प्रफुल्ल हो और वांछित कार्य में सफलता प्राप्त हो। इसीलिए निद्रा समाप्त होते ही देवताओं और ऋषियों आदि के नामों का अवश्य स्मरण करना चाहिए। इसके लिए अनेक प्रकार के स्तव-स्तोत्रों की रचना हुई है, जिनका पाठ करने से उक्त उद्देश्य की सिद्धि सहज ही हो जाती है। यथा-

प्रभाते यः स्मरेन्नित्यं, दुर्गा दुर्गाक्षर-द्वयम्।
आपदस्तस्य नश्यन्ति, तमः सूर्योदये यथा॥

(१) जो प्रति-दिन प्रातः-काल '**दुर्गा**'-इस दो अक्षरवाले दुर्गा-नाम को स्मरण करता है, उसकी सभी आपत्तियाँ उसी प्रकार नष्ट हो जाती हैं, जैसे सूर्य के उदय होने से अन्धकार दूर हो जाता है।

♠♠♠

हरे मुरारे मधु-कैटभारे!, गोपाल गोविन्द मुकुन्द शौरे!
यज्ञेश नारायण कृष्ण विष्णो!, निराश्रयं मां जगदीश! रक्ष॥

(२) हे हरि ! हे मुरारि ! हे मधु-कैटभ के अरि ! हे गोपाल! हे गोविन्द! हे मुकुन्द! हे शौरि! (वासुदेव के पिता का नाम शूर था, उनके वंशज 'शौरि' अर्थात् कृष्ण) हे यज्ञेश्वर! हे नारायण! हे कृष्ण! हे विष्णु! हे जगदीश्वर! मुझ आश्रय-हीन की रक्षा करो ।

♦♦♦

ब्रह्मा मुरारिस्त्रिपुरान्त-कारी, भानुः शशी भूमि-सुतो बुधश्च ।
गुरुश्शुक्रः शनि-राहु-केतवः, कुर्वन्तु सर्वे मम सुप्रभातम् ।।

(३) ब्रह्मा, विष्णु, महेश्वर, सूर्य, चन्द्र, मङ्गल, बुध, वृहस्पति, शुक्र, शनि, राहु और केतु-ये सब मेरे प्रातः-काल को मङ्गल-मय करें ।

♦♦♦

मन्वत्रि-विष्णु-हारीत-याज्ञवल्क्योशनोऽङ्गिराः, यमापस्तम्ब-सम्वर्त्ताः, कात्यायनो वृहस्पतिः ।
पराशर-व्यास-शङ्ख-लिखिता दक्ष-गौतमौ, शातातपो वशिष्ठश्च, धर्म-शास्त्र-प्रयोजकाः ।।

(४) मनु, अत्रि, विष्णु, हारीत, याज्ञवल्क्य, उशना, अङ्गिरा, यम, आपस्तम्ब, सम्वर्त, कात्यायन, वृहस्पति, पराशर, व्यास, शङ्ख, लिखित, दक्ष, गौतम, शातातप और वशिष्ठ-जिन्होंने धर्म-शास्त्र की रचना की है ।

♦♦♦

पुण्य-श्लोको नलो राजा, पुण्य-श्लोको युधिष्ठिरः। पुण्य-श्लोका च वैदेही, पुण्य-श्लोको जनार्दनः ।।
कर्कोटकस्य नागस्य, दमयन्त्या नलस्य च । ऋतुपर्णस्य राजर्षेः, कीर्तनं कलि-नाशनम् ।।

(५) राजा नल, युधिष्ठिर, सीता देवी और नारायण-ये पुण्य श्लोक (पुण्यात्मा) हैं । कर्कोटक नाग, दमयन्ती, राजा नल और राजर्षि ऋतुपर्ण-इनका नाम-कीर्तन करने से कलि के दोष नष्ट होते हैं ।

♦♦♦

कार्तवीर्यार्जुनो नाम, राजा बाहु-सहस्त्र-भृत् । योऽस्य सङ्कीर्तयेन्नाम, कल्यमुत्थाय मानवः ।।
न तस्य वित्त-नाशः स्यात्, नष्टं च लभते पुनः ।।

(६) सहस्त्र-बाहुवाले राजा कार्तवीर्यार्जुन के नाम का जो प्रातः-काल उठ कर कीर्तन करता है, उसके धन का नाश नहीं होता और जो धन पहले नष्ट हो चुका है, वह पुनः प्राप्त होता है ।

♦♦♦

अहल्या द्रौपदी कुन्ती, तारा मन्दोदरीस्तथा । पञ्च कन्या स्मरेन्नित्यं, महा-पातक-नाशनम् ।।

(७) अहल्या, द्रौपदी, कुन्ती, तारा और मन्दोदरी-इन पाँच कन्याओं का प्रति-दिन स्मरण करने से महा-पाप का नाश होता है ।

♦♦♦

वस्त्र-त्याग दो तरह का होता है । एक रात में पहने हुए कपड़ों को छोड़कर शुद्ध वस्त्र धारण करना और दूसरा-भूत-शुद्धि द्वारा अशुद्ध शरीर को शुद्ध करना । यहाँ यह उल्लेखनीय है कि किसी तन्त्र के अनुसार निद्रा त्याग कर शय्या पर ही बैठकर प्रातः-कृत्य करना चाहिए, तो क़िसी तन्त्र में यह निर्देश है कि शैय्या से उठकर

रात्रि के पहने वस्त्रों को उतार कर अन्य वस्त्र पहन कर आसन पर बैठ कर प्रातः-कृत्य करना चाहिए और किसी तन्त्र में यह विधि बताई है कि मल-मूत्र का त्याग कर पवित्र होकर प्रातः-कृत्य करना चाहिए। इन तीन प्रकार के निर्देशों का समाधान यह है कि निद्रा टूटने के बाद शय्या पर बैठकर ही प्रातः-कृत्य करे। यदि मल-मूत्रादि के वेग को रोकने में समर्थ न हो, तो पवित्र होकर स्वतन्त्र आसन पर बैठकर प्रातः-कृत्य करे। जिस प्रकार भी हो, प्रातः-कृत्य करने में व्यति-क्रम न करे। यदि कभी प्रातः-कृत्य न कर पाए, तो प्रायश्चित्त-रूप पादुका-मन्त्र या 'ऐं'-बीज का १०८ बार जप करे।

जो लोग अदीक्षित हैं, उन्हें उक्त वर्णन के अनुसार प्रातः-काल साधना-कर्म करना चाहिए। दीक्षितों हेतु प्रातः-कृत्य की विशेष तान्त्रिक विधि आगे दी जा रही है।

विधि-वत् शय्या पर बैठकर पहले अपने शिर के सहस्त्र-दल कमल में गुरु-देव का ध्यान करे। ध्यान का एक प्रचलित श्लोक निम्न प्रकार है–

गुरु-देव का ध्यान

ॐ सहस्त्र-दल-पङ्कजे, सकल-शीत-रश्मि-प्रभं। वराभय-कराम्बुजं, विमलं च पुष्पाम्बरम्।।
प्रसन्न-वदनेक्षणं, सकल-देवता-रूपिणं। स्मरेच्छिरसि हंसगं, तदभिधान-पूर्वं गुरुम्।।
स्व-वाम-स्थितयानुरक्त-शक्त्या स्वप्रकाश-सहितया युक्तं गुरुम्।।

इस प्रकार गुरु का ध्यान करके उनके चरण-युगल से पतित अमृत-धारा से अपने शरीर को परिप्लुत अनुभव करे। फिर मानसोपचार से गुरु की पूजा करे। यथा–

मानसोपचार से गुरु की पूजा

ऐंह्रींश्रीं हस्ख्फ्रें हसमक्षलवरयूं ह्सौं श्रीअमुकानन्द-नाथ ऐंह्रींश्रीं स्हख्फ्रें सहक्षमलवरयीं स्हौं श्रीअमुकी-देव्यम्बा लं पृथिव्यात्मकं स्व-देहावस्थितं घ्राण-रूपं गन्धं ते समर्पयामि नमः कनिष्ठाभ्यां वौषट्।

ऐंह्रींश्रीं हस्ख्फ्रें हसमक्षलवरयूं ह्सौं श्रीअमुकानन्द-नाथ ऐंह्रींश्रीं स्हख्फ्रें सहक्षमलवरयीं स्हौं श्रीअमुकी-देव्यम्बा हं आकाशात्मकं स्व-देहावस्थितं श्रोत्र-रूपं पुष्पं ते समर्पयामि नमः अनामिकाभ्यां हुं।

ऐंह्रींश्रीं हस्ख्फ्रें हसमक्षलवरयूं ह्सौं श्रीअमुकानन्द-नाथ ऐंह्रींश्रीं स्हख्फ्रें सहक्षमलवरयीं स्हौं श्रीअमुकी-देव्यम्बा यं वाय्वात्मकं स्व-देहावस्थितं त्वक्-रूपं धूपं ते समर्पयामि नमः मध्यमाभ्यां नमः।

ऐंह्रींश्रीं हस्ख्फ्रें हसमक्षलवरयूं ह्सौं श्रीअमुकानन्द-नाथ ऐंह्रींश्रीं स्हख्फ्रें सहक्षमलवरयीं स्हौं श्रीअमुकी-देव्यम्बा रं तेजसात्मकं स्व-देहावस्थितं चक्षु-रूपं दीपं ते दर्शयामि नमः तर्जनीभ्यां नमः।

ऐंह्रींश्रीं हस्ख्फ्रें हसमक्षलवरयूं ह्सौं श्रीअमुकानन्द-नाथ ऐंह्रींश्रीं स्हख्फ्रें सहक्षमलवरयीं स्हौं श्रीअमुकी-देव्यम्बा वं अमृतात्मकं स्व-देहावस्थितं रसनेन्द्रिय-रूपं नैवेद्यं ते समर्पयामि नमः अंगुष्ठाभ्यां नमः।

ऐंह्रींश्रीं हस्ख्फ्रें हसमक्षलवरयूं ह्सौं श्रीअमुकानन्द-नाथ ऐंह्रींश्रीं स्हख्फ्रें सहक्षमलवरयीं स्हौं श्रीअमुकी-देव्यम्बा ॐ त्रिगुणात्मकं स्व-देहावस्थितं मन-इन्द्रिय-रूपं ताम्बूलं ते समर्पयामि नमः अञ्जलिना।

इस प्रकार पञ्च-भूतात्मक और त्रि-गुणात्मक उपचारों का समर्पण कर गुरु-पादुका का यथा-शक्ति दस या सौ बार जप करे। फिर गुरु-स्तोत्र का पाठ करे। ('गुरु-स्तोत्र' हेतु 'चक्रपूजा के स्तोत्र' पुस्तक देखें)

गुरु-देव की स्तुति करके उन्हें अपने हृदय में इष्ट-देव के रूप में परिणत कर उनका मानसिक उपचारों से पूजन करे। अब 'भूत-शुद्धि' करे। यदि विस्तृत विधि के अनुसार, जो निम्न-लिखित है, 'भूत-शुद्धि' न कर सके, तो संक्षिप्त विधि के अनुसार करे और यदि उसे भी न कर पाए, तो 'हौं'-बीज का १०८ या १० बार जप करे।

भूत-शुद्धि की विस्तृत विधि

१. मूलाधार-साधना

पहले 'मूलाधार-चक्र' का स्मरण करे। यथा–

स्वर्ण-वर्ण, चतुरस्र, वज्र-लांछित। 'लं' वीज-युक्त, हेम-प्रभ '**व श ष स**' वर्ण-युक्त, **चतुर्दल, १. वरदा, २. शशिनी, ३. षण्डवती, ४. सरस्वती** से व्यावृत, त्वग् धातु-मूल, **अयोध्या**-भूम्यात्मक, **कामरूप**-पीठ, **जम्बू**-द्वीप, **नाग**-लोक, **क्षारोद** स्रोत, **डाकिनी** से अभिव्याप्त, **पृथ्वी**-स्थान, **निवृत्ति**-कलात्मक, **समान**-वायु अधिष्ठित, **गन्ध**-तन्मात्रात्मक, **गन्तव्य**-अवस्थात्मक, **क्रिया**-अवसान, **पायु**-अवतार, **मन**- इन्द्रिय, **घ्राण**-रूप, **नागानन्दनाथ, नागाम्बा देवी**। इस प्रकार **मूलाधार** '**चक्र**' का ध्यान कर **महा-लक्ष्मी-शक्ति** सहित '**गणेश**' का ध्यान करे। यथा–

सिन्दूराभं त्रिनेत्रं पृथुतर - जठरं हस्त - पद्मैर्दधानं,
दन्तं पाशांकुशेष्टान्युरु-कर-विलसद वीजपूराभिरामम्।
बालेन्दु-द्योति-मौलिं करि-पति-वदनं दान-पूरार्द्र-गण्डं,
भोगीन्द्राबद्ध-भूषं भजत गणपतिं रक्त-वस्त्राङ्गरागम्॥

ध्यान कर पूर्वोक्त मानसोपचार मन्त्रों द्वारा पूजन करे। यथा–

ऐं ह्री श्रीं हस्ख्फ्रे हसक्षमलवरयूं ह्सौः श्रीनागानन्दनाथ ऐंह्रींश्रीं हस्ख्फ्रें सहक्षमलवरयीं स्हौं श्रीनागाम्बा देवी लं पृथिव्यात्मकं स्व-देहावस्थित-घ्राण-रूपं गन्धं ते समर्पयामि नमः कनिष्ठाभ्यां वौषट्।

इसी प्रकार ताम्बूल तक के उपचारों द्वारा पूजा करे। फिर '**गं गणपतये नमः**' मन्त्र का दश या सौ बार जप करे। इसके बाद **गणेश** का पुनः ध्यान कर उन्हें प्रणाम कर उस चक्र में **अधाम्नायेश्वरी हाटकेशी** तारा का ध्यान करे। यथा–

ॐ नील-वर्णा चतुर्हस्ता, प्रत्यालीढा शवासना। खड्गेन्दीवर-हस्तोर्ध्व-कर्तृका पात्र-हस्तका॥
नाग-लोक-गता देवी, सर्वैश्वर्य-फल-प्रदा। हाटकेश्वर-संयुक्ता, हाटकेशी सदा स्मरेत्॥

पूर्व-वत् मानसोपचारों से हाटकेश्वरानन्दनाथ और हाटकेशी देव्यम्बा की पूजा करे। पूजन के बाद '**ह्रीं स्त्रीं हूं फट्**' मन्त्र का दस या सौ बार जप करे।

'मूलाधार' की इस साधना से ऐश्वर्य प्राप्त होता है। इस चक्र का अभ्यास हो जाने पर और अनुभूति मिलने पर गुरुदेव की अनुमति से आगे के चक्र का अभ्यास करना चाहिए।

२. स्वाधिष्ठान-साधना

मूलाधार की कर्णिका में सोम-सूर्य-अग्नि-मय अ-१६, क-१६ , थ-१६ इन वर्णों से तीन रेखाएँ अङ्कित होने की भावना करे। अकारादि षोडश वर्ण से ईडा नाड़ी, ककारादि षोडश-वर्ण से पिङ्गला नाड़ी एवं थकारादि सोलह वर्णों से सुषुम्ना नाड़ी बनी, ऐसा समझे। यथा-

१ ईडा-अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, ऋ, ॠ, ऌ, ॡ, ए, ऐ, ओ, औ, अं अः।

२ पिङ्गला-क, ख, ग, घ, ङ, च, छ, ज, झ, ञ, ट, ठ, ड, ढ, ण, त।

३ सुषुम्ना-थ, द, ध, न, प, फ, ब, भ, म, य, र, ल, व, श, ष, स।

इस प्रकार 'कुल' या 'मूल' शृङ्गाट-त्रिकोण की भावना कर उसके बीच में कोटि-सूर्य के समान तेजवाले कोटि-चन्द्रमा के बराबर सुशीतल, जवा-कुसुम के समान रक्त-वर्ण, त्रिगुणात्मक मोक्ष-विन्दु का चिन्तन करे। उस विन्दु के ऊपर चैतन्य-मयी अष्ट-त्रिंशत्-कला से युक्त पञ्चाशत्-वर्णों सहित परा-प्रासाद-विद्या-रूपी कोटि-बिजली के समान दीप्त, विस-तन्तु के समान सूक्ष्म, सार्द्ध-त्रिवलयाकार, प्रसुप्त भुजङ्गिनी के समान स्वयम्भूलिङ्ग को वेष्ठित किए हुई कुण्डलिनी को कूर्च-वीज 'हूं' द्वारा उठाकर 'हंस' मन्त्र से पूर्वोक्त मूलाधार-चक्र के साथ ऊपर ले जाकर लिङ्ग-मूल में 'स्वाधिष्ठान'-चक्र का ध्यान करे। यथा-

इन्द्रगोप-निभ वर्ण, अर्द्ध-चन्द्राकार चन्द्र-शृङ्ग के दोनों तरफ पद्म-लांछित, विद्रुम के समान रक्त-वर्णवाले, 'ब भ म य र ल'-इन छः वर्णों से युक्त षड्-दल, १. बन्धिनी, २. भद्र-काली, ३. महा-माया, ४. यशस्विनी, ५. रमा, ६. लम्बोदरी से व्याप्त, रक्त-धातु-मूल, मथुरा-भूम्यात्मक, मलय पीठ, शाक-द्वीप, मर्त्य-लोक, क्षीरोद-स्रोत, राकिनी से व्याप्त, आप-स्थान, विद्या-कलात्मक, व्यान-वाय्वधिष्ठित, रस-तन्मात्रात्मक, दातव्य-अवस्थात्मक, आदान-अवसान, उपस्थ-अवतार, बुद्धि-इन्द्रिय, जिह्वा-रूप, मर्त्यानन्दनाथ, मर्त्याम्बा देवी।

इस स्वाधिष्ठान चक्र में महा-सरस्वती शक्ति से संयुक्त ब्रह्मा का ध्यान करे। यथा-

पीत-वर्णं चतुर्वाहुं, चतुर्वक्त्रं गजासनम्। मालां मुद्रां दक्ष-हस्ते, वामे विद्यां कमण्डलुम्॥
महा-तेजस्विनं शान्तं, ध्यान-सम्मीलितीक्षणम्॥

इस प्रकार ब्रह्मा का ध्यान कर पूर्वोक्त मानसोपचारों से 'मर्त्यानन्दनाथ' और 'मर्त्याम्बा देवी' की पूजा करे। तत्पश्चात् वहाँ 'पूर्वाम्नायेश्वरी उन्मनी' का ध्यान करे। यथा-

ॐ पद्मराग-समाभासां, रक्त-वस्त्राभिरावृतां। पाशांकुशाभयाभीष्टैर्विलसन्तीं चतुर्भुजाम्॥
किरीट-मुकुटैर्युक्तां, चन्द्रार्ध-कृत-शेखरां। पूर्वाम्नायेश्वरीं ध्यायेदुन्मनीं परमेश्वरीम्॥

पूर्वोक्त मानसोपचारों से 'उन्मनी देवी' की पूजा कर 'ह्स्त्रीं स्क्ल्ह्रीं श्रीं सौः' मन्त्र का दश या सौ बार जप करे। पुनः उक्त ध्यान कर प्रणाम करे।

इसके बाद 'मूलाधार-चक्र' को 'स्वाधिष्ठान' में मिलाए। यथा-

१.	पीत-वर्ण	इन्द्रगोप में	१५.	कामरूप-पीठ	मलय-पीठ में
२.	चतुरस्त्र	अर्द्ध-चन्द्र में	१६.	जम्बू-द्वीप	शाक-द्वीप में
३.	वज्र	पद्म में	१७.	नाग-लोक	मर्त्य-लोक में
४.	चतुर्दल	षड्-दल में	१८.	क्षारोद-स्त्रोत	क्षीरोद-स्त्रोत में
५.	वङ्कार	बङ्कार में	१९.	डाकिनी	राकिनी में
६.	शङ्कार	'भं' तथा मङ्कार में	२०.	पृथिवी	जल में
७.	षङ्कार	'यं' और रङ्कार में	२१.	निवृत्ति-कला	विद्या-कला में
८.	सङ्कार	लङ्कार में	२२.	समान-वायु	व्यान-वायु में
९.	वरदा	बन्धिनी में	२३.	गन्ध-तन्मात्रा	रस-तन्मात्रा में
१०.	शशिनी	भद्र-काली और महा-माया में	२४.	गन्तव्य-अवस्था	दातव्य-अवस्था में
११.	षण्डवती	यशस्विनी और रमा में	२५.	क्रिया-अवसान	आदान-अवसान में
१२.	सरस्वती	लम्बोदरी में	२६.	पायु	उपस्थ में
१३.	त्वग्-धातु	रक्त-धातु में	२७.	घ्राण	जिह्वा में
१४.	अयोध्या-भूमि	मथुरा-भूमि में	२८.	गणेश	ब्रह्मा में

यह साधना विद्या-प्राप्ति के लिए की जाती है। इससे साधक की स्मरण-शक्ति बढ़ जाती है।

३. मणिपूर-साधना

अब कुण्डलिनी को सुषुम्ना-मार्ग से 'स्वाधिष्ठान चक्र' के साथ 'मणिपूर-चक्र' में ले जाए।

नील-वर्ण, त्रिकोणाकार, विद्युत्पुञ्ज-निभ तेजवाले 'डं ढं णं तं थं दं धं नं पं फं' वर्ण-युक्त दश-दल, १. डामरी, २. ढङ्कारिणी, ३. णङ्कारी, ४. तामसी, ५. स्थानारी, ६. दक्षा, ७. धात्री, ८. नन्दा, ९. पार्वती, १०. फेत्कारिणी से व्याप्त, मांस-धातु- मूल, माया-भूम्यात्मक, कौल-गिरि-पीठ, कुश-द्वीप, पवन-लोक, दध्नोद-स्रोत, लाकिनी-युक्त, तेज-स्थान, प्रतिष्ठान-कलात्मक, उदान-वायु, रूप-तन्मात्रात्मक, चेतनावस्था, विसर्गावसान, पादावतार, अहङ्कार-इन्द्रिय, चक्षु-रूप, पवनानन्दनाथ, पवनाम्बा देवी।

इस प्रकार के 'मणिपूर-चक्र' में लक्ष्मी-शक्ति-सहित विष्णु का ध्यान करे। यथा-

उद्यत्-कोटि-दिवाकराभमनिशं शङ्खं गदा-पङ्कजं। चक्रं विभ्रतमिन्दिरा-वसुमती-संशोभि पार्श्व-द्वयम्।।
कोटिराङ्गद-हार-कुण्डल-धरं पीताम्बरं कौस्तुभोद्दीप्तं विश्व-धरं स्व-वक्षसि लसच्छ्री-वत्सचिह्नं भजे।।

इस प्रकार ध्यान कर पूर्वोक्त मानसोपचारों से पवनानन्दनाथ और पवनाम्बा देवी की पूजा कर 'ॐ नमो नारायणाय' मन्त्र का दश या सौ बार जप कर प्रणाम करे। तत्पश्चात् वहीं 'दक्षिणाम्नायेश्वरी भोगिनी' का ध्यान करे। यथा-

उद्यत्-सूर्य-सहस्त्राभां, नानालङ्कार-भूषितां। रक्ताम्बर-धरां दिव्यां, रक्त-माल्यानुलेपनाम्।।
पाशांकुशाक्ष-विद्याभिर्विलसन्तीं चतुर्भुजां। भोगिनीं दक्षिणाम्नायेश्वरीं भोग-फल-प्रदाम्।।

पूर्वोक्त मानसोपचारों से भोगिनी देवी की पूजा कर 'ऐं क्लिन्ने क्लीं मद-द्रवे कुले हसौः' मन्त्र का दस या सौ बार जप कर प्रणाम करे ।

इसके बाद 'स्वाधिष्ठान-चक्र' को 'मणिपूर' में मिलाए । यथा–

१. लिङ्ग-मूल	नाभि में	१८. मथुरा	माया में
२. इन्द्रगोप-वर्ण	नील-वर्ण में	१९. मलय	कौलागिरि में
३. अर्द्ध-चन्द्र	त्रिकोण में	२०. शाक-द्वीप	कुश-द्वीप में
४. षड्-दल	दश-दल में	२१. मर्त्य-लोक	पवन-लोक में
५. बङ्कार	डङ्कार में	२२. क्षीरोद-स्रोत	दध्नोद स्रोत में
६. भङ्कार	'ढ' और णङ्कार में	२३. राकिनी	लाकिनी में
७. मङ्कार	'तं' एवं थङ्कार में	२४. जल	तेज में
८. यङ्कार	'दं' और धङ्कार में	२५. विद्या कला	प्रतिष्ठा कला में
९. रङ्कार	'नं' और पङ्कार में	२६. व्यान	उदान में
१०. लङ्कार	फङ्कार में	२७. रस	रूप में
११. बन्धिनी	डामरी में	२८. दातव्य	चेतना में
१२. भद्र-काली	ठङ्कारी एवं णङ्कारी में	२९. आदान	विसर्ग में
१३. महा-माया	तामसी तथा स्थानारी में	३०. उपस्थ	पाद में
१४. यशस्विनी	दक्षा और धात्री में	३१. बुद्धि	अहङ्कार में
१५. रमा	नन्दा और पार्वती में	३२. जिह्वा	चक्षु में
१६. लम्बोदरी	फेत्कारिणी में	३३. ब्रह्मा	विष्णु में
१७. रक्त-धातु	मांस-धातु में		

यह साधना भोग-फल-प्राप्ति के लिए की जाती है ।

४. अनाहत-साधना

अब कुण्डलिनी को सुषम्ना-मार्ग द्वारा 'मणिपूर' के साथ 'अनाहत-चक्र' में ले जाए ।

'अनाहत-चक्र' हृदय-स्थान में है । पीत-वर्ण, षट्-कोणाकार, विस्फुलिङ्ग के समान तेजवाले 'कं खं गं घं ङं चं छं जं झं ञं टं ठं' युक्त द्वादश-दलवाले, १. कालरात्रि, २. खातीता, ३. गायत्री, ४. घण्ट-धारिणी, ५. ङार्णा, ६. चण्डा, ७. छाया, ८. जया, ९. ॐ-कारिणी, १०. ज्ञान-रूपा, ११. टङ्क-हस्ता, १२. ठं-कारिणी शक्तियों से युक्त, मेदो धातु-मूल, काशी-भूम्यात्मक, कुलान्त-पीठ, क्रौंच-द्वीप, स्वर्ग-लोक, घृतोद-स्रोत, काकिनी से अभिव्याप्त, वायु-स्थान, शान्ति-कलात्मक, प्राण-वायु-अधिष्ठित, स्पर्श-तन्मात्रा-मय, विषय-अवस्थात्मक, आनन्द-अवसान, पाणि-अवतार, प्रकृति-इन्द्रिय, त्वक्-रूप, स्वर्गानन्दनाथ, स्वर्गाम्बा देवी ।

इस प्रकार 'अनाहत-चक्र' का ध्यान कर उसमें स्व-शक्त्यान्वित शिव का ध्यान करे । यथा–

मुक्ता-पीत-पयोद-मौक्तिक-जवावर्णैर्मुखैः पञ्चभिः, त्र्यक्षैरञ्जितमीशमिन्दु-मुकुटं पूर्णेन्दु-कोटि-प्रभम् ।
शूलं-टङ्क-कृपाण-वज्र-दहना-नागेन्द्र-घण्टांकुशं, पाशं भीति-हरं दधानममितं कल्पोज्ज्वलाङ्गं भजे ।।

ध्यान कर पूर्वोक्त मानसोपचारों से पूर्व-वत् शिव की पूजादि कर **स्वर्गानन्दनाथ** और **स्वर्गाम्बा देवी** की पूजा कर '**हौंः सदा-शिवाय नमः**' मन्त्र का सौ या दश बार जप करे । तब वहीं **पश्चिमाम्नायेश्वरी कुब्जिका** का ध्यान करे । यथा–

ॐ बालार्क-कोटि-रुचिरां, मुण्ड-माला-विभूषितां । पाशांकुशाभयाभीष्टैर्भूषितां च चतुर्भुजाम् ।।
एक-वक्त्रां त्रि-नयनां, सर्वालङ्कार-मण्डितां । पश्चिमाम्नाय-जननीं, कुब्जिकां परमेश्वरीम् ।।

पूर्वोक्त मानसोपचारों से '**कुब्जिका देवी**' की पूजा कर '**ऐं ह्रीं श्रीं हस्ख्फ्रें हसौः भगवति कुब्जिके ह्स्रां ह्स्रीं ह्स्रौंः अघोरे घोरे अघोरामुखि च्छ्रॉं च्छ्रीं किणि किणि विच्चे हसौंः हस्ख्फ्रें श्रीं ह्रीं ऐं स्वाहा**' मन्त्र का दश या सौ बार जप करे । इसके बाद '**मणिपूर-चक्र**' को '**अनाहत-चक्र**' में मिलाए । यथा–

१. नील-वर्ण	पीत-वर्ण में	२१. नन्दा	ॐ-कारिणी में
२. त्रिकोण	षट्-कोण में	२२. पार्वती	ज्ञान-रूपा में
३. दश-दल	द्वादश-दल में	२३. फेत्कारिणी	टङ्क-हस्ता व ठङ्कारिणी में
४. डङ्कार	कङ्कार और खङ्कार में	२४. मांस धातु	मेद धातु में
५. ढङ्कार	गङ्कार में	२५. माया	काशी में
६. णङ्कार	घङ्कार में	२६. कौल-गिरि	कुलान्त में
७. तङ्कार	ङङ्कार में	२७. कुश द्वीप	क्रौंच द्वीप में
८. थङ्कार	चङ्कार में	२८. दधि समुद्र	घृत समुद्र में
९. दङ्कार	छङ्कार में	२९. पवन-लोक	स्वर्ग-लोक में
१०. धङ्कार	जङ्कार में	३०. लाकिनी	काकिनी में
११. नङ्कार	झङ्कार में	३१. तेज	वायु में
१२. पङ्कार	ञङ्कार में	३२. प्रतिष्ठा	शान्ति में
१३. फङ्कार	'टं' एवं ठङ्कार में	३३. उदान	प्राण में
१४. डामरी	काल-रात्रि एवं खातीता में	३४. रूप	स्पर्श में
१५. ढङ्कारिणी	गायत्री में	३५. चेतना	विषय में
१६. णङ्कारिणी	घण्ट-धारिणी में	३६. विसर्ग	आनन्द में
१७. तामसी	ङार्णा में	३७. पाद	पाणि में
१८. स्थानारी	चण्डा में	३८. अहङ्कार	प्रकृति में
१९. दक्षा	छाया में	३९. विष्णु	सदा-शिव में
२०. धात्री	जया में		

यह प्रयोग योग-विघ्न-नाश के लिए किया जाता है । इससे योग में शुद्धता आती है ।

५. विशुद्धि-साधना

अब कुण्डलिनी को सुषुम्ना-मार्ग से 'अनाहत-चक्र' के साथ विशुद्धि-चक्र में ले जाए।

'विशुद्धि-चक्र' कण्ठ-स्थान में है। धूम्र-वर्ण, वर्तुलाकार, माणिक्य के समान तेजवाले 'अं आं इं ईं उं ऊं ऋं ॠं लृं ॡं एं ऐं ओं औं अं अः' युक्त षोडश-दल, १. अमृता, २. आकर्षणी, ३. इन्द्राणी, ४. ईशानी, ५. उमा, ६. ऊर्ध्वकेशी, ७. ऋद्धिदा, ८. ॠसा, ९. लृकारा, १०. ॡसा, ११. एक-पादा, १२. ऐश्वर्या, १३. ओङ्कारिणी, १४. औषधात्मिका, १५. अम्बिका, १६. अक्षरात्मिका शक्ति से युक्त, अस्थि-धातु-मूल, काञ्ची-भूमि, चौहार-पीठ, शाल्मली-द्वीप, गगन-लोक, सुरोद-स्रोत, साकिनी से अभिव्याप्त, आकाश-स्थान, शान्त्यतीत-कलात्मक, समान-वायु-अधिष्ठान, शब्द-तन्मात्रा-मय, वक्तव्य-अवस्था, वदना-अवसान, वाक्-अवतार, पुरुष-इन्द्रिय, श्रोत्र-रूप, गगनानन्दनाथ, गगनाम्बा देवी।

इस प्रकार 'विशुद्धि-चक्र' का ध्यान कर उसमें परा-शक्ति-युक्त जीव का ध्यान करे। यथा—

मूलाधारा शिरः-पद्मं, स्पृशन्ती विद्युदाकृतिः। तया शिरः-पृष्ठ-पद्मां, विद्युदद्भुत-रूपिणी॥

ध्यान कर पूर्वोक्त मानसोपचारों से पूर्व-वत् स-शक्ति जीव की पूजादि कर 'गगनानन्दनाथ' और 'गगनाम्बा देवी' की पूजा करे। इसके बाद 'ह्रीं हंसः सोऽहं स्वाहा' मन्त्र का दस या सौ बार जप करे। तब वहीं उत्तराम्नायेश्वरी कालिका का ध्यान करे। यथा—

ॐ पञ्च-मुण्डासनां कालीं, बन्धूक-कुसुम-प्रभां। एक-वक्त्रां त्रि-नयनां, मुण्ड-माला-विभूषिताम्॥
अक्ष-मालां पुस्तकं च, वराभय-लसत्कराम्। उत्तराम्नाय-जननीं, कालिकां चन्द्र-शेखराम्॥

इस प्रकार ध्यान कर पूर्वोक्त मानसोपचारों से पूजा कर 'ख्फ्रें' मन्त्र का दश या सौ बार जप करे। तब 'अनाहत-चक्र' को 'विशुद्धि-चक्र' में लय करे। यथा—

१. पीत-वर्ण	धूम्र-वर्ण में	१५. ठङ्कार	अःकार में
२. षट्-कोण	वर्तुल में	१६. काल-रात्रि	अमृता में
३. द्वादश-दल	षोडश-दल में	१७. खातीता	आकर्षणी में
४. कङ्कार	अङ्कार में	१८. गायत्री	इन्द्राणी में
५. खङ्कार	आङ्कार में	१९. घण्ट-धारिणी	ईशानी में
६. गङ्कार	इङ्कार में	२०. ङार्णा	उमा में
७. घङ्कार	ईङ्कार में	२१. चण्डा	ऊर्ध्व-केशी, ऋद्धिदा एवं ॠसा में
८. ङङ्कार	उङ्कार में	२२. छाया	लृकार, ॡसा, एक-पदा में
९. चङ्कार	ऊङ्कार, ऋङ्कार और ॠङ्कार में	२३. जया	ऐश्वर्या में
१०. छङ्कार	लृङ्कार, ॡङ्कार एवं एङ्कार में	२४. रङ्कारिणी	ओङ्कारिणी में
११. जङ्कार	ऐङ्कार में	२५. ज्ञान-रूपा	औषधात्मिका में
१२. झङ्कार	ओङ्कार में	२६. टङ्क-हस्ता	अम्बिका में
१३. ञङ्कार	औङ्कार में	२७. ठङ्कारिणी	अक्षरात्मिका में
१४. टङ्कार	अङ्कार में	२८. मेद-धातु	अस्थि-धातु में

२९. काशी	काञ्ची में	३६. प्राण	समान में
३०. कुलान्तक	चौहार में	३७. विषय	वक्तव्य में
३१. क्रौंच	शाल्मली में	३८. पाणि	वाक् में
३२. स्वर्ग	गगन में	३९. स्वर्गानन्दनाथ	गगनानन्दनाथ में
३३. घृतोद	सुरोद में	४०. स्वर्गाम्बा देवी	गगनाम्बा देवी में
३४. काकिनी	साकिनी में	४१. रुद्र	जीव में
३५. शान्ति	शान्त्यतीत में	४२. कुब्जिका	कालिका में

६. आज्ञा-चक्र-साधना

अब कुण्डलिनी को सुषुम्ना-मार्ग से 'विशुद्धि-चक्र' के साथ भ्रूमध्य में 'आज्ञा-चक्र' में ले जाए।

'आज्ञा-चक्र' भ्रू के बीच में रहता है। कोटि-बिजली के समान तेजवाले, त्रिकोणाकार, बिजली जैसे तेजवाले 'हं' और 'ळं' वर्ण युक्त द्वि-दलवाले १. हंसवती एवं २. क्षमा-शक्ति से आवृत, मज्जा-धातु-मूल, अवन्तिका-भूम्यात्मक, जालन्धर-पीठ, गोमेद-द्वीप, अनन्त-लोक, दर्भोद-स्रोत, हाकिनी से अभिव्याप्त, शून्य-स्थान, कलातीत-कलात्मक, नाद-शक्ति एवं विन्दु-शक्ति-अवस्था मात्र।

इस प्रकार चिन्तन कर वहाँ आत्मा का ध्यान करे। यथा-

अनस्तमिताभ-रूपं, सत्ता-मात्रमगोचरम्। सर्व-तेजो-मयं ध्यायेत्, सच्चिदानन्द-रूपिणम्॥

ध्यान कर पूर्वोक्त मानसोपचारों से आत्मा की पूजा कर 'अनन्तानन्दनाथ' और 'अनन्ताम्बा देवी' की पूजा करे। इसके बाद 'ॐ ह्रीं हंसः सोऽहं स्वाहा' मन्त्र का सौ या दश बार जप करे।

इसके बाद वहीं त्रिकोण का चिन्तन कर उस त्रिकोण में 'अ उ म' से निरोधित द्रव-रूप अर्द्ध-चन्द्र-मण्डल की भावना कर उसमें कला-मयी विन्दु-रूपा 'ऊर्ध्वाम्नायेश्वरी' का चिन्तन करे। यथा-

**ॐ सूर्येन्द्वग्नि-मयैक-पीठ-निलयां बालार्क-बिम्बारुणां, त्र्यक्षां चन्द्र-कलावतंस-मुकुटां पीन-स्तनीं सुन्दरीम्।
पाशं चांकुशमिक्षु-चाप-विधृतां पुष्पेषु-हस्तां परां, नानाभूषण-भूषितानि-सुकुमाराङ्गीं भजे वैन्दवे॥**

ध्यान कर पूर्वोक्त मानसोपचारों से 'ऊर्ध्वाम्नायेश्वरी' की पूजा कर 'ऐं क्लीं सौः' मन्त्र का दश या सौ बार जप करे। तब 'विशुद्धि-चक्र' को वर्ण-वर्णाधि-देवताओं के साथ 'आज्ञा-चक्र' में लीन करे। यथा-

१. धूम्र-वर्ण	रक्त-वर्ण में	७. ऊर्ध्व-केशी, ऋृसा, लृसा, ऐश्वर्या, औषधात्मिका, अक्षरात्मिका	क्षमा में
२. वर्तुल	त्रि-कोण में	८. अस्थि	मज्जा में
३. षोडश-दल	द्वि-दल में	९. काञ्ची	अवन्तिका में
४. अं इं उं ऋं लृं एं ओं अं	हङ्कार में	१०. चौहार	जालन्धर में
५. आं ईं ऊं ॠं लॄं ऐं औं अः	ळङ्कार में	११. शाल्मली	गोमेद में
६. अमृता, इन्द्राणी, उमा, ऋद्धिदा, लृकारा, एक-पदा, ओङ्कारिणी, अम्बिका, आकर्षणी, ईशानी,	हंसवती में	१२. गगन	अनन्त में
		१३. सुरोद	दर्भोद में

१४. साकिनी	हाकिनी में	१९. वाक् और श्रोत्र	मन में
१५. आकाश	शून्य में	२०. गगनानन्दनाथ	अनन्तानन्दनाथ में
१६. शान्त्यतीत	कलातीत में	२१. गगनाम्बा देवी	अनन्ताम्बा देवी में
१७. समान	नाद-शक्ति में	२२. जीव	परमात्मा में
१८. वक्तव्य	विन्दु-शक्ति में	२३. कालिका	ऊर्ध्वाम्नायेश्वरी में

इसके बाद 'आज्ञा-चक्र' के विन्दु में 'उन्मनी-चक्र' का चिन्तन करे। यथा–

७. उन्मनी-चक्र-साधना

शुक्ल-चरण और रक्त-चरणात्मक, उड्डीयान और देवीकोट-पीठ, पुष्कर एवं रत्न-द्वीप, द्वारवती तथा रत्न-मय भूमि, इक्षुद और अमृतोद स्रोत, शुक्र एवं ओजो धातु, याकिनी और योगिनी शक्ति।

इस 'उन्मनी-चक्र' में 'परा-प्रासाद विद्या' का ध्यान करे। यथा–

त्रिकोणान्तः समासीनं, चन्द्र-सूर्यायुत-प्रभं। अर्द्धाम्बिका-समायुक्तं, प्रविभक्त-विभूषितम्॥

ध्यान कर पूर्वोक्त मानसोपचारों से 'गुरु-पादुका-विद्या' द्वारा पूजा कर 'ह्सौः' मन्त्र का दश या सौ बार जप करे। तब 'आज्ञा-चक्र' को 'उन्मनी चक्र' में लय करे।

१. हं क्षं	हसौः में		५. गोमेद	पुष्कर द्वीप में	पुष्कर रत्नद्वीप में
२. मज्जा	शुक्र में	शुक्र ओज में	६. दर्भोद	इक्षुद में	इक्षुद अमृतोद में
३. अवन्तिका	द्वारवती में	द्वारवती मणि-मय भू में	७. हाकिनी	याकिनी में	याकिनी योगिनी में
४. जालन्धर	उड्डीयान में	उड्डीयान देवीकोट में	८. अन्य सब तत्त्व शुक्ल चरण और रक्त चरण में		

इसके बाद ॐकारात्मक 'नाद-चक्र' का ध्यान करे। उसमें 'परा-प्रासाद-विद्या' को मिलावे। नादान्त में 'पराम्बा-सहित पर-शिव' का ध्यान करे। यथा–

ॐ नाद-विन्दु-कलातीतं, नित्यमानन्द-लक्षणं। ज्योतिर्मयमनाद्यन्तं, सर्व-व्यापिनमीश्वरम्॥
जगच्चैतन्य-रूपेण, पराम्बा-सहितं विभुं। एवं पर-शिवं ध्यायेन्नित्य-मुक्तं निरञ्जनम्॥

ध्यान कर मानसोपचारों से 'पर-शिव' की पूजा कर सबको वहीं लीन करे। सबके मेल से आई हुई आनन्दामृत-धारा से रक्त-वर्ण-मयी कुण्डलिनी का तर्पण कर पुनः अकुलामृत से सुधा-स्रोत-स्वरूप सुषुम्नान्तर्गत षट्-चक्र के प्रधान-रूप 'आज्ञा-चक्र' से 'मूलाधार'-पर्यन्त प्लावन करे।

प्लावन करने की विधि

पहले 'उन्मनी-चक्र' से 'आज्ञा-चक्र' का सृजन करे। यथा–

१. हसौः से	हं ळं		५. रत्नद्वीप से	पुष्कर द्वीप	पुष्कर से गोमेद द्वीप
२. ओज से	शुक्र	शुक्र से मज्जा	६. अमृतोद से	इक्षुद	इक्षुद से दर्भोद
३. मणि-मय भूमि से	द्वारवती	द्वार० से अवन्तिका	७. योगिनी से	याकिनी	याकिनी से हाकिनी
४. देवी-कोटि से	उड्डीयान	उड्डी० से जालन्धर	८. रज-चरण और शुद्ध-चरण से		सब तत्त्व✵

✱ 'सब तत्त्व' अर्थात् हंसवती शक्ति, शून्य स्थान, कलातीत, नाद-शक्ति, विन्दु-शक्ति इत्यादि वर्ण और वर्णाधि-देवताओं के साथ 'आज्ञा-चक्र' को उत्पन्न कर उसमें परमात्मा का चिन्तन कर पूर्वोक्त अमृत-धारा से प्लावन करे । फिर 'आज्ञा-चक्र' से 'विशुद्धि-चक्र' की उत्पत्ति करे । यथा-

(आज्ञा-चक्र से)	(विशुद्धि चक्र)		
रक्त-वर्ण से	धूम्र-वर्ण	अवन्तिका से	काञ्ची
त्रि-कोण से	वर्तुलाकार	जालन्धर से	चौहार
'हं' से	अं इं उं ऋं लृं एं ओं अं	गोमेद से	शाल्मली द्वीप
'ळं' से	आं ईं ऊं ॠं लॄं ऐं औं अः	दर्भोद से	सुरोद
हंस-वती से	अमृता, इन्द्राणी, उमा, ऋद्धिदा, लृकारा, एक-पदा, ओङ्कारिणी, अम्बिका, आकर्षिणी, ईशानी, ऊर्ध्व-केशी, ॠसा, लॄसा, ऐश्वर्या, औषधात्मिका, अक्षरात्मिका,	अनन्त-लोक से	गगन-लोक
		हाकिनी से	साकिनी
		शून्य-स्थान से	आकाश-स्थान
		कलातीत से	शान्त्यतीत
		नाद से	समान-शब्द
		विन्दु से	वक्तव्य, वाक् और श्रोत्र
मज्जा से	अस्थि-धातु	परमात्मा से	जीवात्मा

इस प्रकार 'आज्ञा-चक्र' से 'विशुद्धि-चक्र' का सृजन कर भ्रू-मध्य में 'आज्ञा-चक्र' को छोड़कर 'विशुद्धि-चक्र' को सुषुम्ना-मार्ग से वर्ण और वर्णाधि-देवताओं के साथ कण्ठ-स्थान में ले आए ।

'विशुद्धि-चक्र' को कण्ठ-स्थान में रखकर धूम्र-वर्ण से लेकर जीवात्मा-पर्यन्त स्मरण करके प्लावन करे । इसके बाद 'विशुद्धि-चक्र' से 'अनाहत-चक्र' की उत्पत्ति करे । यथा-

(विशुद्धि चक्र)	(अनाहत चक्र)		
धूम्र-वर्ण से	पीत-वर्ण	औङ्कार से	ञङ्कार
वर्तुल से	षट्-कोण	अङ्कार से	टङ्कार
षोडश-दल से	द्वादश-दल	अःकार से	ठङ्कार
अङ्कार से	कङ्कार	अमृता से	काल-रात्रि
आङ्कार से	खङ्कार	आकर्षणी से	खातीता
इङ्कार से	गङ्कार	इन्द्राणी से	गायत्री
ईङ्कार से	घङ्कार	ईशानी से	घण्ट-धारिणी
उङ्कार से	ङङ्कार	उमा से	ङार्णा
ऊं ऋं ॠं से	चङ्कार	ऊर्ध्व-केशी ऋद्धिदा एवं ॠसा से	चण्डा
लृं लॄं एङ्कार से	छङ्कार	लृकार, लॄसा और एक-पदा से	छाया
ऐङ्कार से	जङ्कार	ऐश्वर्या से	जया
ओङ्कार से	झङ्कार	ओङ्कारिणी से	रङ्कारिणी

औषधात्मिका से	ज्ञान-रूपा	आकाश से	वायु
अम्बिका से	टङ्क-हस्ता	शान्त्यतीत से	शान्ति
अक्षरात्मिका से	ठङ्कारिणी	समान से	प्राण
अस्थि-धातु से	मेद-धातु	शब्द से	स्पर्श
काञ्ची से	काशी	वक्तव्य से	विषय
चौहार से	कुलान्तक	वदन से	आनन्द
शाल्मली से	क्रौञ्च	वाक् से	पाणि
सुरोद से	घृतोद	पुरुष से	प्रकृति
गगन-लोक से	स्वर्ग-लोक	श्रोत्र से	घ्राण
साकिनी से	काकिनी	जीवात्मा से	सदा-शिव

इस प्रकार 'विशुद्धि-चक्र' से 'अनाहत-चक्र' की उत्पत्ति कर उसको सुषुम्ना-मार्ग से हृदय में ले आए। तत्पश्चात् वर्ण और वर्णाधि-देवताओं को अच्छी प्रकार स्मरण कर पूर्वोक्त अमृत-धारा से प्लावन करे।

इसके बाद 'अनाहत-चक्र' से 'मणिपूर-चक्र' का सृजन करे। यथा–

(अनाहत से)	(मणिपूर)		
पीत-वर्ण से	नील-वर्ण	ओङ्कारिणी से	नन्दा
षट्-कोण से	त्रि-कोण	ज्ञान-रूपा से	पार्वती
द्वादश-दल से	दश-दल	टङ्क-हस्ता और ठङ्कारिणी से	फेत्कारिणी
कं और खङ्कार से	डङ्कार	मेद धातु से	मांस धातु
गङ्कार से	ढङ्कार	काशी से	माया
घङ्कार से	णङ्कार	कुलान्त से	कौलगिरि
ङङ्कार से	तङ्कार	क्रौञ्च से	कुश-द्वीप
चङ्कार से	थङ्कार	घृत-समुद्र से	दधि-समुद्र
छङ्कार से	दङ्कार	स्वर्ग-लोक से	पवन-लोक
जङ्कार से	धङ्कार	काकिनी से	लाकिनी
झङ्कार से	नङ्कार	वायु से	तेज
ञङ्कार से	पङ्कार	शान्ति से	प्रतिष्ठा
टं और ठङ्कार से	फङ्कार	प्राण से	उदान
काल-रात्रि और खातीता से	डामरी	स्पर्श से	रूप
गायत्री से	ढङ्कारिणी	विषय से	चेतना
घण्ट-धारिणी से	णङ्कारी	आनन्द से	विसर्ग
ङार्णा से	तामसी	पाणि से	पाद
चण्डा से	स्थानारी	प्रकृति से	अहङ्कार
छाया से	दक्षा	त्वचा से	चक्षु
जया से	धात्री	सदा-शिव से	विष्णु

इस प्रकार 'अनाहत-चक्र' से 'मणिपूर-चक्र' की सृष्टि कर उस चक्र को वर्ण और वर्णाधि-देवताओं के साथ सुषुम्ना-मार्ग से नाभि-स्थान में ले जाए। वहाँ उस चक्र को पूर्वोक्त अमृत-धारा से प्लावन करे। इसके बाद 'मणिपूर-चक्र' से 'स्वाधिष्ठान-चक्र' की उत्पत्ति करे। यथा–

(मणिपूर)	(स्वाधिष्ठान)		
नील-वर्ण से	इन्द्र-गोप वर्ण	माया से	मथुरा
त्रिकोण से	अर्द्ध-चन्द्र	कौल-गिरि से	मलय-गिरि
दश-दल से	षट्-दल	कुश-द्वीप से	शाक-द्वीप
डङ्कार से	बङ्कार	पवन-लोक से	मर्त्य-लोक
ढङ्कार और णङ्कार से	भङ्कार	दधि-समुद्र से	क्षीर-समुद्र
तं एवं थङ्कार से	मङ्कार	लाकिनी से	राकिनी
दं और धङ्कार से	यङ्कार	तेज से	जल
नं और पङ्कार से	रङ्कार	प्रतिष्ठा-कला से	विद्या-कला
फङ्कार से	लङ्कार	उदान से	व्यान
डामरी से	बन्धिनी	रूप से	रस
ढङ्कारिणी और णङ्कारी से	भद्र-काली	चेतना से	दातव्य
तामसी और स्थानारी से	महा-माया	विसर्ग से	आदान
दक्षा और धात्री से	यशस्विनी	पाद से	उपस्थ
नन्दा और पार्वती से	रमा	अहङ्कार से	बुद्धि
फेत्कारिणी से	लम्बोदरी	चक्षु से	जिह्वा
मांस-धातु से	रक्त-धातु	विष्णु से	ब्रह्मा

इस प्रकार 'मणिपूर' से 'स्वाधिष्ठान' की उत्पत्ति कर इस चक्र को सुषुम्ना-मार्ग से वर्ण और वर्णाधि-देवताओं के साथ लिङ्ग-मूल में ले जाए एवं पूर्वोक्त अमृत-धारा से उस चक्र को प्लावित करे।

इसके बाद 'स्वाधिष्ठान' से 'मूलाधार-चक्र' की उत्पत्ति करे। यथा–

(स्वाधिष्ठान)	(मूलाधार)		
इन्द्र-गोप वर्ण से	पीत-वर्ण	बन्धिनी से	वरदा
अर्द्ध-चन्द्र से	चतुरस्र	भद्र-काली और महा-माया से	शशिनी
पद्म से	वज्र	यशस्विनी और रमा से	षण्डवती
षट्-दल से	चतुर्दल	लम्बोदरी से	सरस्वती
बङ्कार से	वङ्कार	रक्त-धातु से	त्वग्-धातु (रस-धातु)
भं और मङ्कार से	शङ्कार	मथुरा-भूमि से	अयोध्या-भूमि
यं और रङ्कार से	षङ्कार	मलय-पीठ से	कामरूप-पीठ
लङ्कार से	सङ्कार	शाक-द्वीप से	जम्बू-द्वीप

मर्त्य-लोक से	नाग-लोक	रस से	गन्ध
क्षीरोद से	क्षारोद	दातव्य से	गन्तव्य
राकिनी से	डाकिनी	आदान से	क्रिया
जल से	पृथिवा	उपस्थ से	पायु
विद्या से	निवृत्ति	जिह्वा से	घ्राण
व्यान से	समान	ब्रह्मा से	गणेश

इस प्रकार '**स्वाधिष्ठान-चक्र**' से '**मूलाधार-चक्र**' के वर्ण और वर्णाधि-देवताओं की उत्पत्ति कर सुषुम्ना-मार्ग से **मूलाधार**-स्थान में ले जाए और वहाँ उस चक्र को पूर्वोक्त अमृत-धारा से प्लावित करे।

इस प्रकार सब चक्रों और चक्राधि-देवताओं को अमृत-धारा से प्लावित कर स्वान्त में **मूल कूट-त्रय** का ध्यान करे। यथा-'**मूलाधार**' में **दश-कलात्मक वह्नि-मण्डल** का ध्यान कर वहाँ चमकते हुए **वाग्भव कूट** '**कएईल-ह्रीं**', बिजली के समान तेजवाले अनाहत-पर्यन्त नाद-शिखा-प्राप्त, जाग्रत् -अवस्थात्मक, पूर्वोक्त परामृत-प्लावित होने से विशुद्धात्मक, **१. प्रकृति, २. अहङ्कार, ३. बुद्धि, ४. मन, ५. श्रोत्र, ६. त्वक्, ७. चक्षु, ८. जिह्वा, ९. घ्राण, १०. वाक्, ११. पाणि, १२. पाद, १३. पायु, १४. उपस्थ, १५. शब्द, १६. स्पर्श, १७. रूप, १८. रस, १९. गन्ध, २०. आकाश, २१. वायु, २२. तेज, २३. जल, २४. पृथिवी-**पर्यन्त **चतुर्विंशति-तत्त्वात्मक वह्नि-मण्डल** का ध्यान करे।

'**अनाहत-चक्र**' में **द्वादश-कलात्मक सूर्य-मण्डल** का ध्यान कर उसके बीच चमकते हुए सूर्य के समान तेजवाले आज्ञा-पर्यन्त नाद और शिखा-प्राप्त द्वितीय काम-राज कूट '**हसकहलह्रीं**', स्वप्नावस्थात्मक शुद्ध-मय, **१. माया, २. कला, ३. विद्या, ४. राग, ५. काल, ६. नियति, ७. पुरुष-पर्यन्त सप्त-तत्त्वात्मक अनिच्छा-मय सूक्ष्म-देह** का ध्यान करे।

'**आज्ञा-चक्र**' में **षोडश-कलात्मक सोम-मण्डल** का ध्यान कर उसके बीच में शशि-प्रभ, ब्रह्म-रन्ध्रान्तर्गत चिच्चन्द्र-मण्डल-पर्यन्त नाद-शिखा-प्राप्त तृतीय शक्ति-कूट '**सकलह्रीं**' सुषुप्त्यवस्था-मय, शुद्धात्मक, **१. शिव, २. शक्ति, ३. सदा-शिव, ४. ईश्वर, ५. शुद्ध-विद्या-पर्यन्त पञ्च-तत्त्वात्मक परेच्छा-मय पर-देह** का ध्यान करे।

'**मूलाधार**' से '**ब्रह्म-रन्ध्र**'-पर्यन्त **मूल-विद्या** को उदित सहस्र सूर्य के समान तेजवाले तुरीयावस्था-मय, शिवादि-पृथिव्यन्त षट्-त्रिंशत्-तत्त्वात्मक ध्यान कर उस तेज से व्याप्त अपने शरीर को चिन्तन कर उस तेज से परिणत **श्री पर-देवता** को हृदय-कमल में ध्यान करे। फिर पूर्वोक्त मानसोपचारों से **पर-देवता** की पूजा कर **मूल-विद्या** से तीन बार प्रणाम करे। तब ऋष्यादि-न्यास कर **मूल-विद्या का जप** करे। इसके बाद हाथ जोड़कर अपने इष्ट-देवता से सम्बन्धित **प्रातः**-स्तोत्र का पाठ कर अपने **प्रातः-कृत्य** को उन्हें समर्पित करे। यथा-**प्रातः-प्रभृति सायान्तं, सायादि-प्रातरन्ततः। यत्करोमि जगद्योने! तत्सर्वं तव पूजनम्॥**

इसके बाद लौकिक कर्मानुष्ठान के लिए भगवती से आज्ञा ले। यथा-

त्रैलाक्य-चैतन्यमयीश्वरेशि! श्रीसुन्दरि! त्वच्चरणाज्ञयैव।

प्रातः समुत्थाय तव प्रियार्थं संसार-यात्रामनुवर्तयिष्ये॥

संसार - यात्रामनुवर्तमानां त्वदाज्ञया श्रीत्रिपुरे परेशि!
स्पर्द्धा-तिरस्कार-कलि-प्रमाद-भयानि मां माभिभवन्तु मातः ।
जानामि धर्मं न च मे प्रवृत्तिः, जानाम्यधर्मं न च मे निवृत्तिः ।
त्वया हृषिकेशि! हृदिस्थयाहं, यथा नियुक्तोऽस्मि तथा करोमि ।।

इस प्रकार देवी की आज्ञा लेकर गुरुपदेश से अवगत सहज सिद्ध अजपा-जप तत्तद् देवता को समर्पित करे । यथा–ॐ अद्य पूर्वेद्युः अहोरात्र आचरितं उच्छ्वास-निःश्वासात्मकं षट्-शताधिकं एकविंश-सहस्त्र-संख्याकं अजपा-जपं मूलाधार-स्वाधिष्ठान-मणिपूर-अनाहत-विशुद्ध-आज्ञा-ब्रह्म-रन्ध्रेषु चतुर्दल-षोडशदल-दश-दल-द्वादश-दल-षोडश-दल-द्वि-दल-सहस्त्र-दलेषु स्वर्ण-पिङ्गल-नील-पीत-धूम्र-अरुण-कर्पूर-वर्णेषु स्थितेभ्यो गणपति-ब्रह्म-विष्णु-रुद्र-जीवात्म-परमात्म-श्रीगुरु-पादुकेभ्यो यथा-भागशः समर्पयिष्यामि ।

इस प्रकार सङ्कल्प कर देवताओं को अपने-अपने भाग द्वारा समर्पण करे । यथा–

ॐ ऐं ह्रीं श्रीं मूलाधारस्थाय गणपतये अजपा-जपानां षट्-शतानि समर्पयामि नमः ।

ॐ ऐं ह्रीं श्रीं स्वाधिष्ठानस्थाय ब्रह्मणे अजपा-जपानां षट्-सहस्त्राणां समर्पयामि नमः ।

ॐ ऐं ह्रीं श्रीं मणिपूरस्थाय विष्णवे अजपा-जपानां षट्-सहस्त्राणि समर्पयामि नमः ।

ॐ ऐं ह्रीं श्रीं अनाहतस्थाय रुद्राय अजपा-जपानां षट्-सहस्त्राणि समर्पयामि नमः ।

ॐ ऐं ह्रीं श्रीं विशुद्धस्थाय जीवात्मने अजपा-जपानां सहस्त्रं समर्पयामि नमः ।

ॐ ऐं ह्रीं श्रीं आज्ञास्थाय परमात्मने अजपा-जपानां सहस्त्रं समर्पयामि नमः ।

ॐ ऐं ह्रीं श्रीं सहस्त्र-दल-कमल-कर्णिका-मध्यस्थायै श्रीगुरु-पादुकायै अजपा-जपानां सहस्त्रं समर्पयामि नमः ।

इस प्रकार अजपा-जप-समर्पण करके हाथ जोड़कर फिर सङ्कल्प करे–

ॐ अद्य सूर्योदयादारभ्य अहोरात्रेण उच्छ्वास-निःश्वासात्मकं षट्-शताधिकं एक-विंशति-सहस्त्र-संख्याकं अजपा-जपमहं करिष्ये ।

फिर 'हंसः' मन्त्र से तीन बार प्राणायाम कर ऋष्यादि-न्यास करे । यथा–

ॐ अस्या अजपा-गायत्र्याः हंसाय ऋषये नमः शिरसि । अव्यक्ताय गायत्री-छन्दसे नमः मुखे । परम-हंसाय नमः हृदये । हं वीजाय नमः मूलाधारे । सः शक्तये नमः पादयोः । सोऽहं कीलकाय नमः नाभौ । ओङ्काराय नमः हृदये । नभसे स्थानाय नमः मूर्ध्नि । हेमाय वर्णाय नमः सर्वाङ्गे । उदात्ताय स्वराय नमः कण्ठे । मम मोक्षार्थे जपे विनियोगः अञ्जलौ ।

षडङ्ग-न्यास	कर-न्यास	अङ्ग-न्यास
ॐ ऐं ह्रींश्रीं क्षां सूर्यात्मने	अंगुष्ठाभ्यां नमः	हृदयाय नमः
ॐ ऐं ह्रींश्रीं क्षीं सोमात्मने	तर्जनीभ्यां स्वाहा	शिरसे स्वाहा
ॐ ऐं ह्रींश्रीं क्षूं निरञ्जनात्मने	मध्यमाभ्यां वषट्	शिखायै वषट्
ॐ ऐं ह्रींश्रीं क्षैं निराभासात्मने	अनामिकाभ्यां हुम्	कवचाय हुम्
ॐ ऐं ह्रींश्रीं क्षौं अव्यक्त-रूपात्मने	कनिष्ठाभ्यां वौषट्	नेत्र-त्रयाय वौषट्
ॐ ऐं ह्रींश्रीं क्षः अनन्त-तत्त्व-सूक्ष्मादेवी प्रचोदयात्	करतल-कर-पृष्ठाभ्यां फट्	अस्त्राय फट्

इस प्रकार न्यास करने के बाद अजपा का ध्यान करे। यथा–

ॐ द्यौ भूर्धानं यस्य विप्रा वदन्ति, मुखे नाभौ चन्द्र-सूर्यौ च नेत्रे।
दिग्भिः श्रोत्रं यस्य पादौ क्षितिं च, ध्यातव्योऽसौ सर्व-भूतान्तरात्मा ।।

इस प्रकार विराट्-स्वरूप अपनी आत्मा का ध्यान कर प्राण-वायु के निर्गम-प्रवेशात्मक '**हंसः**' मन्त्र का **पचीस बार** जप कर जप-समर्पण करे।

इसके बाद नादान्त-सन्धान-पूर्वक सम्पूर्ण उपाधि को नाश करके प्रवृत्त हुआ अपने को जाने। फिर ब्रह्म-रन्ध्र के अन्तर्गत कुण्डलिनी को पूर्वोक्त सुषुम्ना-मार्ग से आज्ञा से मूलाधार-पर्यन्त क्रमशः तत्तत् चक्राधि-देवताओं को अपने-अपने स्थान में रखकर सब कुछ **ब्रह्म-मय** जाने। यथा–

अहं देवी न चान्योऽस्मि, ब्रह्मैवाहं न शोक-भाक्। सच्चिदानन्द-रूपोऽहं, नित्य-मुक्त-स्वभाववान् ।।

इस प्रकार अपने को देवी-मय जानकर अपने कार्यारम्भ के लिए **भूमि से प्रार्थना** करे। यथा–

ॐ समुद्र-मेखले देवि, पर्वत-स्तन-मण्डले! विष्णु-पत्नि! नमस्तेऽस्तु, पाद-स्पर्शं क्षमस्व मे ।।

इस तरह **भूमि से प्रार्थना** कर श्वासानुक्रम से शैय्या से पैर को आगे बढ़ाकर नीचे उतरे और पद-पद में **देवी का स्मरण** करते हुए बाहर जाए।

उपसंहार

१. अजपा के लिए श्वास-संख्या

१ मिनट=१५ श्वास। १ घण्टा=६०×१५=९०० श्वास। १ अहोरात्रि=९००×२४=२१,६०० श्वास।

२. अजपा-समर्पण-संख्या

देवता	स्थान	जप-समर्पण-संख्या	देवता	स्थान	जप-समर्पण-संख्या
गणेश	मूलाधार	६००	जीवात्मा	विशुद्ध	१०००
ब्रह्मा	स्वाधिष्ठान	६०००	परमात्मा	आज्ञा	१०००
विष्णु	मणिपूर	६०००	श्रीगुरु-पादुका	सहस्त्रार	१०००
रुद्र	अनाहत	६०००		कुल संख्या	२१,६००

३. वाग्भव कूट

शक्त्यन्तस्तूर्य-वर्णोऽयं, कला-मध्ये सुलोचने! वाग्भवं पञ्च-वर्णाढ्यं, काम-राजमथोच्यते ।।

शक्ति=ए, तूर्य-वर्ण=ई, कल-मध्ये=एई, कएईल+ह्रीं=**कएईलह्रीं**=वाग्भव कूट (पञ्च-वर्ण)

४. काम-राज कूट

मादनं शिव-चन्द्राढ्यं, शिवान्तं मीन-लोचने! काम-राजमिदं भद्रे! षड्-वर्ण सर्व-मोहनम् ।।

शिव=हकार, चन्द्र=सकार, मादन=ककार-'**हसकहलह्रीं**'। ये षड्-वर्ण काम-राज कूट हैं।

५. शक्ति-कूट

शक्ति-वीजं वरारोहे! चन्द्राढ्यं सर्व-मोहनम्। चतुरक्षर-रूपं तु, त्र्यक्षरा त्रिपुरा भवेत् ।।

शक्ति=सकार '**सकलह्रीं**'। ये चतुर्वर्ण शक्ति-कूट हैं।

६. भूत-शुद्धि की अन्य विधि

'भूत-शुद्धि' की एक दूसरी विधि निम्न प्रकार है–

१. पाद से जानु-पर्यन्त पृथ्वी-स्थान को पीत-वर्ण, चतुरस्त्र, वज्र-लाञ्छित, ब्रह्मा देवता, निवृत्ति कलात्मक, 'लं' वीज-युक्त ध्यान करे।

२. जानु से नाभि-पर्यन्त जल-स्थान को अर्ध-चन्द्राकार, दोनों शृङ्गों में पद्म-लाञ्छित, विष्णु देवता, प्रतिष्ठित-कलाधिष्ठित, 'वं' वीज से युक्त ध्यान करे।

३. नाभि से कण्ठ-पर्यन्त वह्नि-मण्डल को स्वस्तिक-चिह्न-युक्त त्रिकोणाकार, रक्त-वर्ण, रुद्र देवता और विद्या-कला से अधिष्ठित, 'रं' वीज-युक्त स्थान समझ कर ध्यान करे।

४. कण्ठ से भ्रू-मध्य-पर्यन्त 'वायु-मण्डल' को षट्-कोणाकार, षड्-विन्दु-लाञ्छित, वृत्त-युक्त, कृष्ण-वर्ण, ईश्वर देवता, शान्ति-कलाधिष्ठित, 'यं' वीज-युक्त स्थान स्मरण कर ध्यान करे।

५. भ्रू-मध्य से ब्रह्म-रन्ध्र-पर्यन्त 'आकाश-स्थान' को वृत्ताकार, धूम्र-वर्ण, महोच्च-ध्वज-लाञ्छित, शान्त्यतीत-कलाधिष्ठित, शिव देवता, 'हं' वीज से युक्त स्मरण कर ध्यान करे।

इस प्रकार अपने शरीर में पञ्च-भूतों का चिन्तन करे। तब धर्म-कन्द से समुद्भूत, ज्ञान-नाल-सुशोभित, ऐश्वर्यादि अष्ट-दलोपेत, पर-वैराग्य-कर्णिका-युक्त हृदय-कमल की भावना कर उस कर्णिका में बालार्क-समान प्रदीप्त कलिका-तुल्य जीव का स्मरण कर पूर्वोक्त कुण्डलिनी-शक्ति को 'हंस' मन्त्र से उत्थान कर मूलाधार से अनाहत-पर्यन्त वर्ण और वर्णाधि-देवताओं को लीन करे। उसके बाद उसी कुण्डलिनी-युक्त जीव का ध्यान हृदय-कमल में करे। तत्पश्चात् अनाहत चक्र से ब्रह्म-रन्ध्र-पर्यन्त वर्ण और वर्णाधि-देवताओं को लीन करते हुए ले जाकर सहस्त्र-दल-कमल की कर्णिका में परमात्मा की ज्योति का चिन्तन कर उसमें सम्पूर्ण वर्ण और वर्णाधि-देवताओं से युक्त जीव को लीन करे। इसके बाद कुण्डलिनी को पूर्वोक्त सुषुम्ना-मार्ग से अपनी जगह पर ले जाकर तत्त्व-संहार करे। यथा–

पृथ्वी-स्थान को जल-स्थान में, जल-स्थान को वह्नि-मण्डल में, तेजः-स्थान को वायु-मण्डल में, वायु-स्थान को आकाश-मण्डल में, आकाश-मण्डल को कुण्डलिनी में, कुण्डलिनी को नाद-शक्ति में, नाद-शक्ति को विन्दु-शक्ति में, विन्दु-शक्ति को प्रणव में, प्रणव को परा-शक्ति में, परा-शक्ति को परमात्मा में लीन करे।

७. भूत-शुद्धि की सरल विधि

अपने अङ्क में उत्तान (ऊर्ध्व-मुख) दोनों हाथ रखकर अत्यन्त तेजवाली दीप-शिखा-जैसी जीवात्मा को मूलाधारस्थ कुण्डलिनी-शक्ति के साथ चक्र-भेद-क्रम से सुषुम्ना-मार्ग से ऊपर ले जाए। सहस्त्र-दल कमल में ब्रह्म के साथ उसे मिलाए।

सारांश : इस प्रकार 'भूत-शुद्धि' की विधि अनेक प्रकार की है। सभी का लक्ष्य एक ही है। जो भी हो, 'भूत-शुद्धि' में जीवात्मा और परमात्मा का संयोग होना चाहिए।

●●●

न्यास-विधान

'साधना' में **'न्यास'** का विशेष महत्त्व है । विविध प्रकार के न्यासों के करने से साधक का शरीर **'साधना'** के लिए आवश्यक योग्यता को प्राप्त करता है और साधक में **'देव-भाव'** उत्पन्न होता है । साधना का मूल सिद्धान्त है कि **'देवता बनकर ही देवोपासना की जा सकती है'** और **'न्यास-विधान'** इसी सिद्धान्त का क्रियात्मक स्वरूप है ।

'अस्'-धातु में **'नि'** उपसर्ग लगाने से **'न्यास'**-शब्द बनता है । **'अस्'**-धातु के मुख्यत: दो अर्थ हैं– १. क्षेपण करना, २. स्थापन करना । जिसका जो स्थान नहीं है, यदि वह वहाँ बैठ जाए, तो उसे हटाकर वहाँ के उचित स्वामी को प्रतिष्ठित करना ही है **'न्यास'** करना ।

जैसी कि प्रसिद्ध उक्ति है–**'शरीरमाद्यं खलु धर्म-साधनं'** अर्थात् धार्मिक साधना का आदि साधन **'शरीर'** ही है । शरीर के अङ्ग-अङ्ग में जब तक शुद्धता नहीं आएगी, तब तक **'साधना'** में उससे सहायता नहीं मिलेगी । **स्नान, आचमन, प्राणायाम** आदि क्रियाओं द्वारा शरीर के शोधन का ही प्रयास किया जाता है । उसी प्रकार विविध प्रकार के न्यासों द्वारा भी शरीर के प्रत्येक अङ्ग में दैवी शक्ति की स्थापना कर उसे **'साधना'** के उपयुक्त बनाने का प्रयत्न किया जाता है ।

सामान्य रूप से शरीर के प्रति ममत्व का भाव होता है । मेरा शरीर, मेरा सिर, मेरा मुख, मेरा हाथ आदि भावना होने से शरीर और उसके अङ्गों का वास्तविक महत्त्व पीछे पड़ जाता है । **'साधना'** में सफलता प्राप्त करने के लिए यह आवश्यक है कि 'शरीर' और उसके विविध अङ्गों को साधना-गत भावना से परिपूर्ण किया जाय । इसके लिए तन्त्र-शास्त्र में जो **'न्यास'** निर्दिष्ट किए गए हैं, उन्हें ध्यान से हृदयङ्गम करने से उक्त रहस्य भले प्रकार समझ में आ जाता है ।

शाक्त-साधना में निर्दिष्ट न्यासों में मुख्य हैं–**१. मातृका-न्यास, २. ऋष्यादि-न्यास, ३. षडङ्ग-न्यास, ४. मूल-मन्त्र-न्यास, ५. व्यापक-न्यास, ६. षोढा-न्यास** । इनमें से प्रत्येक का संक्षिप्त विवेचन करने से साधना में **'न्यास'** का महत्त्व स्पष्ट हो जाता है ।

१. मातृका-न्यास

इस **'न्यास'** के नाम से ही स्पष्ट है कि इसमें **'मातृकाओं'** अर्थात् **'वर्णों'** **(अक्षरों)** की स्थापना शरीर के अङ्गों में विधि-पूर्वक की जाती है । **'अ'** से लेकर **'क्ष'** तक की **वर्ण-माला** का ही साङ्केतिक नाम **'मातृका'** है । वर्ण या अक्षर **'शब्द-ब्रह्म'** या **'वाक्-शक्ति'** के स्वरूप हैं । इनका सूक्ष्म रूप **'विमर्श-शक्ति'** के नाम से ज्ञात है, जो **'परा वाक्'** कही जाती है और जिसमें स्फुरणा मात्र होती है । वही **मातृका** या **चैतन्यात्मक शब्द-ब्रह्म** **'कुण्डलिनी'** के रूप में व्यक्त हुई है । **मातृका-स्वरूप वर्ण-माला** के एक-एक अक्षर का विस्तृत विवेचन तन्त्र-शास्त्र में हुआ है, जिससे ज्ञात होता है कि ये **मातृकाएँ** साक्षात् शक्ति-स्वरूप हैं । अतः भावना-योग द्वारा इन्हें शरीर के अङ्गों में स्थापित करने का कितना उपयोगी फल होगा, यह सहज ही समझा जा सकता है ।

'मातृका'-शब्द का अर्थ है माता अर्थात् जननी । **वर्ण-माला** के अक्षर **परा-वाक्-शक्ति** के स्वरूप हैं और वही शक्ति सारे विश्व की जननी है । इस प्रकार **'मातृका'**- शब्द से विश्व को उत्पन्न करनेवाली **नादात्मिका शक्ति** का बोध होता है ।

'मातृका-न्यास' के दो अङ्ग हैं–१. **अन्तर्मातृका-न्यास**, २. **बहिर्मातृका-न्यास** । **'अन्तर्मातृका-न्यास'** द्वारा शरीर के भीतर सूक्ष्म रूप से अवस्थित **षट्-चक्रों में मातृकाओं की स्थापना** कर सोई हुई **कुण्डलिनी शक्ति** को जगाया जाता है और **'बहिर्मातृका-न्यास'** के द्वारा **शरीर के स्थूल अङ्गों में मातृकाओं की क्रमशः प्रतिष्ठा** कर देवत्व की पुष्टि की जाती है ।

'बहिर्मातृका-न्यास' के तीन भेद हैं–१. **सृष्टि-मातृका-न्यास**, २. **स्थिति-मातृका-न्यास** और ३. **संहार-मातृका-न्यास** । **'सृष्टि-मातृका-न्यास'** द्वारा साधना के अनुकूल शरीर की उत्पत्ति होती है । **'स्थिति-मातृका-न्यास'** द्वारा उत्पन्न शरीर में देवता के तादात्म्य की भावना की जाती है और **'संहार-मातृका-न्यास'** द्वारा साधना-विरोधी मल से आवृत्त भौतिक शरीर का विलयन किया जाता है ।

'मातृका-न्यास' के उक्त विवेचन से स्पष्ट है कि सभी प्रकार की आध्यात्मिक **'साधना'** के लिए जिस प्रकार **स्नान, प्राणायाम, आचमन** द्वारा शरीर का शोधन करना आवश्यक है, उसी प्रकार यह **'न्यास'** शरीर में **देव-भाव** के स्फुरण के लिए परमावश्यक है ।

इस सम्बन्ध में शास्त्र के निम्न वचन मननीय हैं–

१–न्यासस्तु देवतात्मत्वात् स्वात्मनो देह-कल्पना ।

२–पञ्च-भूताङ्ग-देवानां न्यसनान्न्यास उच्यते ।

३–चैतन्यं सर्व-भूतानां, शब्द-ब्रह्मेति मे मतिः । तत् प्राप्य कुण्डली-रूपं, प्राणिनां देह-मध्यगं । वर्णात्मनाऽऽविर्भवति, गद्य-पद्यादि-भेदतः ।

४–न्यासं विना जपं प्राहुरासुरं विफलं बुधाः । न्यासात् तदात्मको भूत्वा, देवो भूत्वा तु तं यजेत् ।

५–अकृत्वा विधिवन्न्यासान्, नार्चायामधिकार-वान् ।

अर्थात् १. अपने शरीर को देवतात्मक समझने के लिए **'न्यास'** किया जाता है । २. पञ्च-भूत (पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश) के अङ्ग-भूत देवों की स्थापना करने से ही **'न्यास'-क्रिया** सम्पन्न होती है । ३. सभी भूतों का चैतन्य-रूप **शब्द-ब्रह्म** है । वही **कुण्डलिनी**-रूप में प्राणियों की देह में स्थित है, जो वर्णात्मा द्वारा गद्य-पद्य में व्यक्त होता है । ४. **'न्यास'** के बिना जो मन्त्र-जप किया जाता है, वह आसुरी होने से व्यर्थ होता है । **'न्यास'** द्वारा देवता बनकर पूजन-यजन करना चाहिए । ५. विधि के अनुसार **'न्यास'** न करनेवाला अर्चन करने का अधिकारी नहीं होता ।

यही कारण है कि **'मातृका-न्यास'** की विधि सबके लिए एक जैसी है । सभी के द्वारा करणीय है । अन्य न्यासों में यह समानता नहीं है । जिस देवता के जिस मन्त्र की **'साधना'** की जाती है, उस मन्त्र के अनुरूप उन न्यासों में परिवर्तन करना पड़ता है, जैसा कि आगे के विवेचन से स्पष्ट हो जायगा ।

'मातृका-न्यास' की विस्तृत विधि सभी पूजा-पद्धतियों में उल्लिखित है । अतः उसे यहाँ उद्धृत नहीं किया गया है ।

२. ऋष्यादि-न्यास

किसी भी मन्त्र की 'साधना' करने के पूर्व यह 'न्यास' करना आवश्यक होता है। इस 'न्यास' के द्वारा इष्ट-मन्त्र के १. ऋषि, २. छन्द, ३. देवता, ४. बीज, ५. शक्ति, ६. कीलक और ७. अभीष्ट फल से तादात्म्य स्थापित किया जाता है। इन सातों का परिचय मन्त्र के विनियोग से मिल जाता है। कुछ मन्त्रों के विनियोग में इन सातों का उल्लेख नहीं होता। तथापि जिन बातों का उल्लेख होता है, उन्हीं का उपयोग इस न्यास में करने की विधि है। कम-से-कम प्रारम्भिक तीन बातों का उल्लेख तो होता ही है। इस सम्बन्ध में शास्त्र की उक्ति है कि-

ऋषिच्छन्दो देवतानां विन्यासेन विना, जप्यते साधितोऽप्येष तुच्छ-फलं भवेत्।

अर्थात् ऋषि, छन्द और देवता का विन्यास किए बिना जो मन्त्र-जप किया जाता है या साधना की जाती है, उसका फल तुच्छ ही होता है। 'साधना' का पूर्ण फल पाने के लिए न्यास द्वारा इनसे तादात्म्य स्थापित करना परमावश्यक है।

१. ऋषि : यह शब्द गत्यर्थक 'ऋ'-धातु और 'षिङ् प्रापणे' प्रत्यय से बना है। अर्थ यह है कि जो मन्त्र-गति से परमात्मा के स्वरूप को प्राप्त करता है, वह परम साधक ही 'ऋषि' है। मन्त्र-द्रष्टा 'ऋषि' कहलाता है। साधक मन्त्र से दीक्षित होकर उस मन्त्र के 'ऋषि' से तादात्म्य स्थापित करता है और तब वह अपनी साधना के द्वारा उस 'ऋषि' के ही समान मन्त्र-गति से परमात्मा तक पहुँचकर अभीष्ट फल को प्राप्त कर लेता है। परमात्मा और गुरु का स्थान 'शिर' में सर्व-मान्य है। अतः मन्त्र के 'ऋषि' का न्यास 'शिर' में ही किया जाता है क्योंकि 'ऋषि'-गुरु या परमात्मा-स्वरूप होता है।

२. छन्द : इस शब्द का 'छ'-इच्छा का वाचक है और 'द' दानार्थक 'द'-धातु से बना होने के कारण देने का द्योतक है अर्थात् अभीष्ट फल देनेवाला मन्त्र ही 'छन्द' है। गुरु-मुख से मन्त्र को पाकर साधक की आत्म-ज्योति मूलाधार से उठकर हृदय में होती हुई 'सहस्त्रार' में पहुँचती है। अतः मन्त्र-मय 'छन्द' का न्यास 'मुख' में किया जाता है। अक्षरों का स्थान 'मुख' में ही है।

३. देवता : यह शब्द 'दिव्' धातु से बने 'देव'-शब्द में भावार्थक 'तल्' प्रत्यय या विस्तारार्थक 'तनु' धातु से बने 'त'-शब्द से बना है। अर्थ यह है कि सर्वात्मना देव-भाव प्रदान करना। देव-भाव की प्राप्ति हृदय द्वारा ही हो सकती है। अतः 'देवता' का न्यास 'हृदय' में करने की विधि है।

४. बीज : पुरुष या स्त्री-शरीर में वीर्य या रज का स्थान क्रमशः लिङ्ग या योनि मे होता है। यहीं 'मूलाधार-चक्र' की भी अवस्थिति है। भाव यह है कि बीजात्मक मन्त्र की वहाँ स्थापना होने से उसका स्फुरण और विकास कुण्डलिनी के साथ ऊर्ध्व-मुखी होगा और कल्पोक्त फल साधक को प्राप्त होगा। इसी से 'लिङ्ग', 'योनि' या 'मूलाधार' में मन्त्र के 'बीज' का न्यास करने का विधान है।

५. शक्ति : शरीर को गति देने की शक्ति पैरों में निहित है। अतः मन्त्र की 'शक्ति' की स्थापना पैरों में करने की विधि है।

६. कीलक : शरीर को कीलित करने का स्थान नाभि में केन्द्रित है। अतः मन्त्र के 'कीलक' का न्यास 'नाभि' में किया जाता है।

७. अभीष्ट फल : फल की प्राप्ति साधक के प्रार्थना-भाव की गहराई पर निर्भर करती है। अतः मन्त्र के विनियोग-गत 'अभीष्ट फल' का न्यास '**अञ्जलि**' (प्रार्थना-मुद्रा में जुड़े दोनों हाथों) में किया जाता है। अथवा साधक के '**सर्वाङ्ग**' से प्रार्थना करने के कारण यह '**न्यास**' सर्वाङ्ग में करने की विधि है।

३. षडङ्ग-न्यास

इस '**न्यास**' के अन्तर्गत दो '**न्यास**' किए जाते हैं–**१. कर-न्यास, २. अङ्ग-न्यास**। '**कर-न्यास**' में दोनों हाथों के **१. अँगूठों, २. तर्जनियों, ३. मध्यमाओं, ४. अनामिकाओं, ५. कनिष्ठकाओं** और **६. करतल-करपृष्ठ** में मन्त्र के बीजाक्षर को छः दीर्घ स्वरों से युक्त कर क्रमशः स्थापित किया जाता है और यही क्रिया '**अङ्ग-न्यास**' के अन्तर्गत क्रमशः **१. हृदय, २. शिर, ३. शिखा, ४. कवच, ५. नेत्र** और **६. अस्त्र**–इन छः स्थानों के सम्बन्ध में की जाती है। इस '**न्यास**' के करने से शरीर-गत समस्त पाप दूर होते हैं। 'ज्ञानार्णव तन्त्र' का वचन है कि–

हृदयं च शिरो देवि!, शिखां च कवचं ततः। नेत्रमस्त्रं न्यसेत् ङेऽन्तं, नमः स्वाहा क्रमेण तु ।।
वषट् हुं वौषडन्तं च, फडन्तं योजयेत् प्रिये! षडङ्गोऽयं मातृकायाः, सर्व-पाप-हरः स्मृतः ।।

यहाँ यह उल्लेखनीय है कि उक्त वचन के अनुसार '**अङ्ग-न्यास**' में निम्न प्रकार अङ्गों के साथ '**नमः, स्वाहा**' आदि का प्रयोग करने का निर्देश किया गया है। यथा–

१. हृदयाय नमः, २. शिरसे स्वाहा, ३. शिखायै वषट्, ४. कवचाय हुं, ५. नेत्र-त्रयाय वौषट्, ६. अस्त्राय फट्।

१. 'नमः' के प्रयोग का तात्पर्य यह है कि हृदय-स्थित बुद्धि के द्वारा भावना-गम्य देवता के समक्ष साधक सब प्रकार से अपनी विनम्रता प्रकट करता है। इस प्रकार वह सभी अनात्म पदार्थों से अपने को विवेक द्वारा दूर करता है और देव-स्वरूप बन जाता है।

२. 'स्वाहा' का आशय यह है कि आत्मा को शीर्ष-स्थान शिर में पहुँचाकर अपना सर्वस्व उसे समर्पित कर देना। इस प्रकार '**इदन्ता**' का त्याग होकर '**अहन्ता**'-मात्र की अनुभूति साधक को होती है।

३. 'वषट्' के प्रयोग का भाव समझने के लिए यह ज्ञातव्य है कि '**शिखा**'–पद देवता के केश, किरीट (मुकुट) आदि का द्योतक है। अथवा उससे शरीर के तेजः-स्वरूप का बोध होता है। इस प्रकार साधक 'आत्मा' के तेजोमय स्वरूप का अनुभव करता है। वैसे '**वषट्**' का अर्थ भी समर्पण ही है, किन्तु देह के बिना समर्पण हो नहीं सकता। अतः '**आत्मा**' में '**अनात्मा**' के आरोपण की भावना इसके द्वारा होती है, ऐसा ही समझना उचित है।

४. 'हुं' का सम्बन्ध '**कवच**' से है और '**कवच**' कहते हैं आच्छादन करनेवाले को। अतः इसके द्वारा साधक मन्त्र द्वारा सर्वात्मा-देह से आच्छादित होकर सर्वथा सुरक्षित होने की भावना करता है। इससे साधक में दूसरों के लिए भय-प्रद और अपने लिए रक्षा-कारक तेज का प्रादुर्भाव होता है।

५. 'वौषट्' के द्वारा नेत्र-त्रय से अर्थात् दृष्टि द्वारा प्रत्यक्ष रूप में साधक सभी अध्यारोप को दूर कर आत्म-साक्षात्कार करता है। इससे साधक को आत्म-तत्त्व का यथार्थ ज्ञान होता है।

६. 'फट्' द्वारा '**अस्त्र**' की क्रिया की जाती है। '**अस्त्र**'-शब्द 'अस्' और 'त्रस्' धातुओं से बना है। अर्थ है फेंकना और जलाना। इसके द्वारा साधक आध्यात्मिक, आधिदैविक और आधिभौतिक–तीनों प्रकार के तापों को दूर फेंककर ज्ञानाग्नि में जलाकर भस्म करने की भावना करता है।

'**कर-न्यास**' में सामान्यतः '**अंगुष्ठाभ्यां नमः, तर्जनीभ्यां नमः, मध्यमाभ्यां नमः**' आदि क्रम से सर्वत्र '**नमः**' का ही प्रयोग होता है। तथापि कहीं-कहीं 'पूर्व-वत् विन्यसेत्' अर्थात् '**एक ही प्रकार से न्यास करे**', यह निर्देश मिलने से कुछ साधक '**कर-न्यास**' में भी '**अङ्ग-न्यास**' के समान ही क्रमशः '**नमः, स्वाहा, वषट्**' आदि का प्रयोग करते हैं। दोनों ही प्रयोग शास्त्र एवं परम्परा-सम्मत हैं।

'**षडङ्ग-न्यास**' के करने में **इष्ट-मन्त्र** के '**बीज**' को **छः दीर्घ स्वरों** से जोड़कर उनकी तत्तद् अङ्गों में प्रतिष्ठा करने की भावना की जाती है। अथवा यदि मन्त्र बड़ा हुआ, तो उसके अक्षरों को छः भागों में विभाजित करके उन भागों की एक-एक अङ्ग में स्थापना करने की भावना करते हैं। कुछ मन्त्रों के '**षडङ्ग-न्यास**' में उनसे सम्बन्धित विशिष्ट देवतात्मक पदों की योजना करने की विधि मिलती है। सभी प्रकार की विधियों का लक्ष्य शरीर को 'देव-मय' बनाना ही है।

४. मूल-मन्त्र-न्यास

इस '**न्यास**' के द्वारा गुरुदेव से प्राप्त मन्त्र के अक्षरों का न्यास शरीर में किया जाता है। उद्देश्य स्पष्ट है कि जिस मन्त्र की साधना द्वारा अभीष्ट फल प्राप्त करना है, उससे 'एकात्मता' प्राप्त की जाए।

५. व्यापक न्यास

इस न्यास में मस्तक से पैरों तक और पैरों से मस्तक तक **मूल-मन्त्र का तीन, पाँच या सात बार** '**न्यास**' किया जाता है। इस सम्बन्ध में यह ज्ञातव्य है कि एक 'न्यास' तो '**सौस्थानिक**' होता है, जिसमें मातृका-वर्णों का शरीर के अङ्गों में न्यास किया जाता है। दूसरा न्यास '**औत्थानिक**' कहलाता है, जो वस्तुतः 'व्यापक-न्यास' है। इस '**न्यास**' से एक ओर तो अन्य न्यासों की पूर्णता होती है, दूसरी ओर समयाभाव में केवल एक इसी '**न्यास**' द्वारा साधक अभीष्ट 'देव-भाव' को आत्म-सात् करने में सहज ही समर्थ होता है।

६. षोढा-न्यास

इस '**न्यास**' की बड़ी महिमा है। इसके अभ्यास से साधक साक्षात् देवी-स्वरूप हो जाता है। फिर वह स्वयं प्रणम्य हो जाता है, अन्य किसी को वह प्रणाम नहीं कर सकता क्योंकि '**षोढा-न्यास**' के द्वारा उसमें इतनी शक्ति भर जाती है कि वह किसी के आगे सिर झुकाए, तो वह व्यक्ति या वस्तु तत्क्षण खण्ड-खण्ड होकर नाश को प्राप्त हो जाएगी।

'**षोढा**' का अर्थ है छः प्रकार का। तदनुसार इस न्यास में छः प्रकार के न्यास होते हैं। इनकी विधियाँ प्रत्येक **महा-विद्या** के सम्बन्ध में अलग-अलग प्रचलित हैं। उदाहरण के लिये '**श्रीकाली-नित्यार्चन**' में दिए छः न्यासों के द्वारा साधक पञ्च-तत्त्वों (भूमि, जल, अग्नि, वायु, आकाश) पर अधिकार प्राप्त कर **श्रीकाली-स्वरूप** बन जाता है।

अधिक प्रसिद्ध '**षोढा-न्यास**' के अन्तर्गत **१. गणेश, २. ग्रह, ३. नक्षत्र, ४. योगिनी, ५. राशि** और **६. पीठ**-ये छः '**न्यास**' किए जाते हैं। इसके सम्बन्ध में '**गुप्तावतार**' बाबा-श्री ने अपनी कृति '**श्रीकल्पद्रुम**' में लिखा है कि-'इस न्यास से साधक ग्रहादि की विपरीत छाया-ताप से, जो साधना में नाना प्रकार के विघ्न उत्पन्न कर सकता है, बच जाता है। साथ ही उसे मन को एकाग्र करने के कार्य में विशेष सहायता मिलती है।'

●●●

जप का महत्त्व व उसके नियम

'जप'-एक महान् यज्ञ

'जप' एक महान् यज्ञ है। संसार में आज तक जितने भी यज्ञों का वर्णन हुआ है, उनमें 'जप-यज्ञ' सबसे उत्तम है। पहली बात तो यह है कि यह सार्वजनीन है। गरीब-से-गरीब और असहाय से भी असहाय मनुष्य भी इस 'यज्ञ' में पूर्ण रूप से अपना अधिकार रखता है, इस 'यज्ञ' को करने की क्षमता रखता है। कारण यह है कि इसमें कोई खर्च नहीं है। दूसरे 'यज्ञों' में सांसारिक बहुत सी वस्तुओं की आवश्यकता पड़ती है, किन्तु **जप-यज्ञ** एक ऐसा 'यज्ञ' है, जिसमें एक धेले की भी चीज नहीं चाहिए। दूसरे यज्ञों में आडम्बर बहुत करना पड़ता है, किन्तु **'जप-यज्ञ'** आडम्बर-विहीन 'यज्ञ' है। इसमें न तो हिंसा करनी पड़ती है, न हिंसा कराने के लिए किसी की खुशामद करनी पड़ती है। **'जप-यज्ञ'** अहिंसक है, इसीलिए इसे 'सात्त्विक यज्ञ' कहा जाता है। 'कर्म-यज्ञ' जितने भी बताए हैं, उनमें शारीरिक श्रम के अतिरिक्त दूसरे की सहायता की आवश्यकता होती है। इसी तरह 'दान-यज्ञ' निर्धनादि नहीं कर सकता, धनिक मनुष्य के लिए ही वह सम्भव है।

'जप-यज्ञ' धनी हो या गरीब, सबके लिए समान है। सब प्राणी इसमें समान रूप से भाग ले सकते हैं-अपनी साधना के अनुसार सफलता प्राप्त कर सकते हैं। **'जप-यज्ञ'** में शरीर को कष्ट देने की आवश्यकता भी नहीं है। सांसारिक कार्यों से थोड़ा समय निकाल कर इसमें अपनी साधना की जा सकती है। किसी तरह का कष्ट शरीर को दिए बिना ही **'जप-यज्ञ'** कर मनुष्य सफलता प्राप्त कर सकता है। यदि कहा जाय कि **'जप-यज्ञ'** सुखकर, सुख-दायी, सार्वकालिक है, तो अति-रञ्जित बात नहीं होगी। इस **'जप-यज्ञ'** के लिए 'स्थान' और 'समय' की भी पाबन्दी नहीं है। जब और जिस स्थान पर साधक (जापक)-चाहे, अपना **'जप'** कर सकता है। जन-संकुल स्थान हो या निर्जन, गाँव हो या नगर, घर हो या जङ्गल-सभी स्थानों में **'जप'** करनेवाला अपना **'जप'** आनन्द-पूर्वक कर सकता है। इसीलिए कहा जाता है कि **'जप-यज्ञ'** की तुलना में कोई भी यज्ञ नहीं आ सकता। यह यज्ञों में **'महान् यज्ञ'** है।

'जप-यज्ञ' हेतु महत्त्व-पूर्ण निर्देश

'जप-यज्ञ' के लिए लगन चाहिए। यह एक साधक ही कर सकता है क्योंकि **'जप'** करनेवाला किसी दूसरे काम में अपनी इन्द्रियों को नहीं लगा सकता। सभी इन्द्रियों को संयमित कर ही **'जप'** किया जा सकता है। **'जप'** में जितनी सावधानता और निश्चिन्तता रहेगी, उतना ही **'जापक'** को लाभ होगा और उसका **'जप'** करने में मन लगेगा। उसका जी ऊबेगा नहीं।

'भागवत' में बताया गया है कि तीन ढङ्ग हैं **'जप'** के-उत्तम तरीका यह है कि **'जप'** करनेवाला मनुष्य अपने जपनीय **'मन्त्र'** के अक्षरों का इस तरह उच्चारण करे कि कण्ठ और जिह्वा से बाहर कोई आवाज या ध्वनि न निकले। किसी को यह पता न चले कि **'जप'** करनेवाले की जीभ चल रही है या मुख-मण्डल हिल-डुल रहा है। मध्यम रीति यह है कि आवाज अपने कानों तक भी न पहुँचे और पहुँचे, तो दूसरे के कानों तक नहीं। दूसरे के कानों तक जिस **'जप'** की आवाज पहुँचती है, वह **अधम 'जप'** है।

उत्तम 'जप' करनेवाला व्यक्ति अपने मन को ही पावन नहीं बनाता, अपने कुल-परिवारवालों के पापों को भी धो डालता है। उसका शरीर निर्मल और निष्पाप हो जाता है क्योंकि **'जप'** में मन को स्थिर करने की

अमोघ शक्ति है । 'जप' के अभ्यास से मन को स्थिर होना पड़ता है । मन के स्थिर हो जाने पर फिर क्या है, 'जप' की सिद्धि होकर ही रहती है । इसलिए मन-मतङ्ग के लिए 'जप' अंकुश है । मन को 'जप' सीधी राह चलने के लिए बाध्य करता है । जो मनुष्य 'जप' का अभ्यास नहीं करते, उनका मन भी इधर-उधर दौड़ता चलता है । उनके जीवन के सारे कार्य-कलाप ही अस्त-व्यस्त होते हैं । इसीलिए राजा जनक ने शुकदेव जी को मन को ही स्थिर करने का उपदेश दिया था–

'सभी तीर्थों में घूम-घूमकर जाना, वहाँ बार-बार स्नान करना–यह सब तब तक निरर्थक ही है, जब तक मन स्थिर न हो जाए । इसलिए मन को स्थिर करने के लिए 'जप' का अभ्यास आवश्यक है ।'

लेकिन एक बात है, 'जापक' को आस्तिक और निश्चयी होना चाहिए क्योंकि 'जप' से अदृश्य फल की प्राप्ति करना है । 'जप' करनेवाला कभी निष्फल नहीं हुआ है, ऐसा आस्तिक जन ही नहीं कहते, धार्मिक ग्रन्थ भी पुकार-पुकार कर कहते हैं–

जपेन देवता नित्यं, स्तूयमाना प्रसीदति । प्रसन्ना विपुलान् भोगान्, दद्यान्मुक्तिं च शाश्वतीम् ।।

अर्थात् 'जप' के द्वारा नित्य स्तुति करने पर देवता प्रसन्न हो जाते हैं और प्रसन्न हो जाने पर देव-गण स्वयं विपुल उपभोग का साधन प्रदान करते हैं । 'जप-कर्त्ता' को शाश्वत मुक्ति भी प्राप्ति होती है ।

'जप-यज्ञ' का माहात्म्य

'जप-यज्ञ' से केवल इह-लोक की कामनाएँ पूरी होती हैं, ऐसी बात नहीं । पर-लोक में भी इससे सहायता मिलती है । 'लिङ्ग-पुराण' में बताया गया है–

जपेन पापं शमयेदशेषं, यत्तत्‌ - कृतं जन्म - परम्परासु ।
जपेन भोगान् जयते च मृत्युं, जपेन सिद्धिं लभते च मुक्तिम् ।।

अर्थात् 'जप' करने से शरीर के समस्त पाप शान्त हो जाते हैं । जन्म-जन्मान्तर के जितने भी किए-कराए पाप रहते हैं, वे सब 'जप' करने पर नष्ट हो जाते हैं । 'जप' करनेवाला मनुष्य अपने शरीर, इन्द्रियों, कुल, धर्म, स्थान, परिवार और साथी-सङ्गी तक को पवित्र बना देता है ।

'जप' के नियम

१. 'मातृका-माला' में 'जप' करने के लिए पहले उसका अच्छी तरह अभ्यास कर ले । उसकी 'जप-संख्या' की गणना करने के लिए कर-माला की सहायता ले सकते हैं । अन्य किसी नियम के पालन की उसमें आवश्यकता नहीं है क्योंकि यह 'माला' साधक के मस्तिष्क में गुह्य रूप से रहती है । उसके किसी प्रकार भ्रष्ट या दूषित होने की सम्भावना रहती ही नहीं । केवल आलस्य आदि मानसिक विकारों की बाधा होती है, जिनके लिए निर्दिष्ट नियमों का पालन कर लेना चाहिए ।

२. 'कर-माला' में 'जप' करने में इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि 'जप-काल' में दोनों हाथ वस्त्राच्छादित रहें । 'जप' होने की क्रिया यथा-सम्भव गुप्त ही रहनी चाहिए । साथ ही अशुद्धता आदि दोषों से बचा रहे और मानसिक विकारों से अपनी रक्षा करता रहे ।

३. 'चर-माला' के सम्बन्ध में विशेष सावधानी रखनी होती है । इस सम्बन्ध में अनेक नियम उल्लेखनीय हैं । यथा–

१. 'माला' को मात्र गिनने का एक साधन समझना भारी भूल है । वास्तव में इष्ट-देव, श्री गुरु-देव, इष्ट-मन्त्र और माला–ये चारों अभिन्न हैं । 'माला' में इष्ट-देव की प्राण-प्रतिष्ठा हुई है । इष्ट-देव की ही वह

अचल प्रतिमा है । दूसरे शब्दों में वह इष्ट-देव का ही स्थूल विग्रह है । इसे कदापि नहीं भूलना चाहिए । इस विषय की किञ्चित् अनास्था भी सब किए-कराए पर पानी फेर देती है ।

२. 'माला' को अपवित्र अवस्था में स्पर्श करना, बाँएँ हाथ से स्पर्श करना, जहाँ चाहे रख देना, लोगों को दिखाते फिरना, गले में-सिर पर या हाथ में लटकाए फिरना, जेब में डाल रखना, जप करते हुए झटका-झटकी करना, लापरवाही से पकड़ना, हाथ में से छूट जाना, तर्जनी-अंगुली से स्पर्श करना, हिलाना-घुमाना इत्यादि अपमान-जनक कृत्य कभी भूलकर न करना चाहिए ।

३. भूल से या असावधानी से '**माला**' हाथ से छूट जाए, तो तत्काल आचमन, प्राणायाम, न्यासादि करके कम-से-कम एक माला प्रायश्चित्त के निमित्त जपे ।

४. अशुद्ध स्पर्श हो जाने पर '**माला**' को धोकर एक माला '**जप**' करे ।

५. यदि '**माला**' संयोग से स्वयं टूट जाए, तो १०,००० जप, १००० हवन, १०० तर्पण, १० अभिषेक, १ ब्राह्मण-भोजन करके पुनः विधि-वत् **माला-ग्रथन** करके उसका पूरा संस्कार करे ।

६. अग्नि में जल जाने (दाग लग जाने) पर इसी प्रकार एक लक्ष '**जप**', दस हजार हवन, हजार तर्पण, सौ अभिषेक, दस ब्राह्मण-भोजन करे । पुनः अन्य '**माला-ग्रथन**' कर संस्कार करे ।

७. यदि अपने ही हाथ से झटका-पटकी करने में '**माला**' टूट जाए, तो उसी प्रकार दो लाख का '**पुरश्चरण**' करे ।

८. यदि चोर '**माला**' को चुरा ले जाए, तो छः हजार का उसी प्रकार **पञ्चाङ्ग जपादि** करे ।

९. जिस मन्त्र के लिए '**माला**' का संस्कार किया गया है, उस '**माला**' से वही मन्त्र जपे । अन्य मन्त्र उस माला से जपने पर दोनों मन्त्रों के देवताओं का शाप प्राप्त होता है ।

१०. '**माला**' दृढ़ सूत्र में पिरोए । उसके जीर्ण (पुराना) हो जाने पर सम्मान-पूर्वक सावधानी से निकाल कर दूसरा सूत्र पिरोए और फिर दस माला '**जप**' करे । अपने आप सूत्र बदलने के लिए सङ्कल्प ग्रहण कर माला को प्रणाम कर सूत्र बदलने की आज्ञा ले गुरु-देव को प्रणाम कर सूत्र बदले और १००० '**जप**' कर ले, तो कोई दोष नहीं होता ।

११. '**माला**' का संस्कार करके श्री गुरु-देव के हाथ से उसे ग्रहण करे । गुरु-देव की अनुपस्थिति में उनका मानसिक (गुरु-चक्र में) पूजन कर भावना द्वारा उनके हाथ से ग्रहण करे क्योंकि शास्त्र-वचन है-

'गुरुं सम्पूज्य तद्धस्ताद्, गृह्णीयात् सर्व-सिद्धये ।'

१२. जिस संख्या, जिस समय से '**जप**' प्रारम्भ करे, उसी संख्या और उसी समय-दिन या रात्रि में नित्य '**जप**' करे । कम-ज्यादा या कभी सुबह, कभी दोपहर, कभी सायं, तो कभी आधी रात में '**जप**' करने से मनुष्य व्रत-भ्रष्ट होता है ।

यहाँ यह प्रश्न भी होता है कि क्या जीवन भर एक ही संख्या और एक ही समय रहे ? नहीं । वस्तुतः यहाँ निश्चित संख्या व समय से यही आशय है कि-एक बार सङ्कल्प ग्रहण कर, **मन्त्र-जप की निर्धारित संख्या** या पुरश्चरण के लिए निर्दिष्ट संख्या की समाप्ति तक उसी समय, उतनी ही संख्या में '**जप**' करता रहे । निर्धारित संख्या की समाप्ति अथवा **पुरश्चरण के पञ्चाङ्ग की पूर्ति** के बाद दूसरे पुरश्चरण के जपादि के लिए सुविधानुसार संख्या एवं समय में परिवर्तन हो सकता है ।

१३. '**पूजा**' करके ही **मन्त्र** का '**जप**' करे । बिना पूजा के **केवल** '**मन्त्र-जप**' न करे-

'सम्पूज्यैव जपं कुर्यान्न मन्त्रं केवलं जपेत् ।'

यदि एक बार पूजन करे, तो पूजन के बाद एक ही बार **निर्दिष्ट-संख्यक 'जप'** करे। इसीलिए पुरश्चरण-कर्त्ता के निमित्त **त्रि-सन्ध्या-पूजन** का विधान है ।

१४. मानसिक नियम–**१. मन का निरोध, पवित्रता व मौन** । यथा-सम्भव **कम-से-कम बोलना** । मस्तिष्क में भी **मौन** रहने का प्रयास करना । **२. मन में गुरु-देव, इष्ट-देव के ध्यानोपयोगी स्वरूप का चिन्तन** बनाए रखना । ३. उकताहट, व्यग्रता आदि न होना कि इतना समय तो 'जप' करते हुए बीत गया, अभी तक कुछ दिखा नहीं । ४. जपादि कृत्य करने में दुःख का अनुभव न करना ।

'मेरु-तन्त्र' में–**१. मनोनिरोध, २. मन्त्रार्थ-चिन्तन, ३. नित्य-कर्म, ४. नैमित्तिक कर्म, ५. पवित्रता, ६. मौन, ७. इन्द्रिय-दमन, ८. भूमि-शय्या, ९. त्रिकाल-स्नान व सन्ध्या-पूजन, १०. नित्य-दान, ११. श्रीगुरु-चरणों का नित्य-पूजन, १२. आहार-नियन्त्रण** और **१३. तर्पण**–अनिवार्य नियम बताए हैं ।

१५. सामान्य नियमों के अन्तर्गत निम्न बातों को न करे–**आलस्य, जँभाई, नींद, छींक, थूकना, डरना, अपवित्र अङ्गों का स्पर्श, क्रोध, सांसारिक चिन्तन, वाद-विवाद, गर्व, आडम्बर, कटु शब्द, असत्य वचन, हिंसा, दुश्चिन्ता** ।

१. **'जप'** करते हुए किसी शब्द का अशुद्ध उच्चारण हो जाए, तो तत्काल **प्रणव ॐ** का **'जप'** करे ।

२. यदि उच्चारण किया हुआ शब्द अपवित्र हो, तो माला जितनी जपी गई है, उस संख्या को त्याग कर पहले **प्राणायाम** करे । तब आगे करे । इस माला के पूर्व-जप की गणना न करे ।

३. छींक आ जाने पर, अपवित्र अङ्ग का स्पर्श होने पर या त्याज्य विषयों के घटित होने पर **'जप'** को स्थगित करे तथा **आचमन, प्राणायाम** कर **न्यास** करे । तब पुनः **'जप'** प्रारम्भ करे । उस माला के पूर्व-जप की गणना न होगी ।

४. नींद के कारण यदि माला हाथ से खिसके या छूटने को हो, तो माला को **गो-मुखी** में रखकर **आचमन, प्राणायाम, षडङ्ग-न्यास** कर प्रायश्चित्त के लिए **१०८ बार 'जप'** करे । तब जप-संख्या को आगे बढ़ाए । प्रायश्चित्त के निमित्त किए गए जप की गणना नहीं होगी । उस माला के पूर्व-जप की गणना भी नहीं होगी ।

५. **'जप' की संख्या** भूल जाने पर फिर से गणना करे । जहाँ से भूले, वहाँ से पीछे की सब **'जप-संख्या'** गई । यह नहीं कि इतनी नहीं, तो इतनी हुई होगी, ऐसा अनुमान कर लिया जाए ।

आलस्य-नाश का प्रयोग

जपादि-साधना में आलस्य एक कठिन बाधा है । इसके निवारण हेतु निम्न प्रयोग करे–

हुङ्कार-ध्वनिमाहूय, कर-ताल द्वयं द्वयं । कृत्वा वेताल-मूलं च, पिष्ट्वा यो भक्षयेत् सुधीः ।।
फट्-कारैर्मन्त्रयित्वा च, ताल-मूलं पिबेत् सुधीः । ततो मधु पिबेद् धीमानालस्य-नाशनं भवेत् ।।

अर्थात् **'हुं'-कार ध्वनि** कर कर-तलों से दो-दो बार ताली बजाए । साथ ही **'ताल-मूली'** (मूसली) या जिस ताल-वृक्ष से ताल-रस (ताड़ी) मिलता है, उसकी **'जड़ का एक भाग'** इन दो वस्तुओं में से किसी एक को पीस कर उसमें समान मात्रा में मधु (शहद) मिलाकर मन्त्र से अभिमन्त्रित कर नित्य रात में पी लिया करे । इससे शरीर नीरोग रहेगा और आलस्य भी नहीं होगा ।

●●●

पुरश्चरण

किसी मन्त्र को सिद्ध करने के लिए उस मन्त्र का जब किसी निश्चित संख्या तक विशेष विधि-विधान के साथ '**जप**' किया जाता है, तो उसे '**पुरश्चरण**' कहते हैं।

गुरुदेव से दीक्षा द्वारा मन्त्र-प्राप्ति के बाद '**पुरश्चरण**' करना आवश्यक है। जब तक **पुरश्चरण** नहीं किया जाता, तब तक मन्त्र उसी प्रकार निरर्थक है, जिस प्रकार जीव से रहित देह अर्थात् जैसे हम जीव-रहित शरीर से कोई काम नहीं ले सकते, वैसे ही बिना '**पुरश्चरण**' किए हम गुरु-कृपा द्वारा प्राप्त मन्त्र से भी कोई काम नहीं ले सकते।

१. मन्त्र का जप, २. हवन, ३. तर्पण, ४. अभिषेक (मार्जन) और **५. ब्राह्मण-भोजन**-इस पञ्चाङ्ग उपासना को '**पुरश्चरण**' कहते हैं। '**जप**' का दशमांश **हवन** होता है, **हवन** का दशमांश **तर्पण**, **तर्पण** का दशमांश **मार्जन** और **मार्जन** का दशमांश **ब्रह्म-भोजन**।

'**पुरश्चरण**' के दशाङ्ग भी हैं। पाँच अङ्गों का उल्लेख हो चुका है। अन्य पाँच अङ्गों के नाम हैं-

१. पटल, २. पद्धति, ३. कवच, ४. सहस्रनाम और **५. स्तोत्र**।

इनमें से '**पटल**' देवता का शिर, '**सहस्रनाम**' देवता का मुख, '**कवच**' देवता का शरीर, '**पद्धति**' देवता के हाथ हैं। '**पद्धति**' का अर्थ '**पूजा-पद्धति**' है। '**पद्धति**' के स्थान पर मात्र '**पूजा**' शब्द होता, तो केवल पञ्चोपचारादि सामान्य पूजा का ही बोध होता और पुरश्चरण-कर्त्ता शीघ्रता के लिए **पञ्चोपचार-पूजा** मात्र कर लेता, किन्तु '**पद्धति**' शब्द से स्पष्ट है कि पद्धति-पूर्वक ही पूजा होनी चाहिए। '**स्तोत्र**' (**स्तुति**) देवता के पैर हैं।

इस प्रकार दोनों पञ्चाङ्ग मिलाकर **पुरश्चरण के दश अङ्ग** होते हैं। तात्पर्य यह है कि **पुरश्चरण** करनेवाला साधक पहले **वैदिक** और **तान्त्रिक सन्ध्या-वन्दन** करे। तब अपने इष्ट-देवता की पद्धति-पूर्वक पूजा कर **सहस्रनाम** आदि **कवच, पटल** और **स्तोत्रों का पाठ** करे। यह सब कर चुकने पर **पुरश्चरण** के अङ्ग-भूत '**जप**' के लिए बैठे।

पुरश्चरण में साधारण्-तया जिस मन्त्र के जितने अक्षर हों, उस मन्त्र के उतने ही लक्ष '**जप**' किए जाते हैं। जैसे **पञ्चाक्षरी मन्त्र** हो, तो उसके **पाँच लाख** और **नवाक्षरी मन्त्र** हो, तो उसके **नौ लाख जप** किए जाते हैं। पुरश्चरण करनेवाले साधक को **फलाहार, शाकाहार** या **दुग्धाहार** करना चाहिए। वह **कन्द, मूल,** दही तथा **हविष्यान्न (घी, दूध, शक्कर के साथ पके हुए चावल)** भी ले सकता है।

पवित्र नदी के तट पर, पहाड़ों के शिखर या **गुहाओं में, पावन सघन वनों में, अश्वत्थ वृक्ष के नीचे** तथा किसी भी **तीर्थ-स्थान** में **पुरश्चरण** करना अत्युत्तम है। यदि ऐसा स्थान न मिले, तो साधक अपने घर में भी '**पुरश्चरण**' कर सकता है। विशेष ज्ञान के लिए '**साधना**' और '**स्थान**' प्रकरण देखें।

'**जप**' करते समय साधक **पूर्व** या **उत्तर** की ओर मुख करके बैठे। रात्रि में केवल **उत्तर** की ओर ही मुख करके बैठे। दिन में एक, दो या तीन बार, जैसा भी अनुकूल हो, स्नान करे।

मन्त्र का 'जप' माला के द्वारा अथवा बिना माला के भी हो सकता है । यह साधक की योग्यता पर निर्भर है । 'जप' के लिए **पद्मासन, सिद्धासन, स्वस्तिकासन, सुखासन** या **वीरासन** उपयुक्त हैं । **ऊनी, रेशमी**, सूती या मृग-चर्म में से किसी एक आसन पर बैठकर 'जप' करे । ये आसन सौभाग्य, ज्ञान और सिद्धि के देनेवाले हैं । 'साधना' और 'आसन' प्रकरण में इस सम्बन्ध में विस्तार से वर्णन है ।

मन को सांसारिक बातों से हटाकर मन्त्र का अर्थ समझते हुए **मन्त्र का जप** करना चाहिए– न तो अधिक तेजी से और न अधिक धीमे-धीमे ही ।

प्रत्येक दिन एक ही 'जप'-संख्या रखनी चाहिए, कम-ज्यादा नहीं करनी चाहिए । 'जप' का दशांश आहुतियाँ देनी चाहिए (घृत या चरु की) । रोज की रोज अथवा प्रति लक्ष 'जप' के बाद, अथवा अन्त में कुल निश्चित संख्या पूरी होने के पश्चात् । यदि 'होम' करने में असमर्थ हो, तो कुल संख्या का दशांश अधिक 'जप' करे तथा तत्पश्चात् महात्माओं या ब्राह्मणों और कुमारी कन्याओं को भोजन कराए ।

'पुरश्चरण'-काल में **भूमि पर सोना, पवित्रता, इष्ट-देवता का पूजन, प्रार्थना, मन्त्र में विश्वास, तेल-मर्दन का त्याग, ब्रह्मचर्य** आदि नियमों का पालन करना चाहिए ।

साधक टाँग पर टाँग रखकर न बैठे और न कभी अपने पैरों को हाथों से छुए । मन को मन्त्र और उसके अर्थ-विचार में स्थित करे । टहलते-टहलते या इधर-उधर देखते हुए 'जप' न करना चाहिए । साधक को चाहिए कि वह कभी विषाद या असन्तोष प्रकट न करे और न किसी वस्त्र से अपने मुख को ही ढाँके ।

यदि 'पुरश्चरण' निःस्वार्थ-भावना या बिना किसी कामना के किया गया है, तो मन्त्र सिद्ध होने पर **सन्तोष, पवित्रता, शान्ति, वैराग्य** तथा **ज्ञान** का उदय होगा । सकाम उपासना से वास्तविक **आध्यात्मिक ज्ञान व अनुभव** का विकाश नहीं होता । **इष्ट-देवता की कृपा** व उसके साक्षात्कार की इच्छा से ही 'जप' करना चाहिए । उत्तम पुरश्चरण वही है, जो **अन्तःकरण की शुद्धि** तथा **आत्म-साक्षात्कार** के निमित्त किया जाता है ।

पुरश्चरण में बैठने से पहले क्षौरादि-कर्म करे । उस दिन **एक बार भोजन** करे । दूसरे दिन स्नानादि नित्य कर्म समाप्त कर ज्ञात और अज्ञात पापों के क्षय के लिए **गायत्री का एक हजार** 'जप' करे । जिस देवता के मन्त्र का पुरश्चरण करना हो, उसकी ही **गायत्री** का 'जप' करना चाहिए । **गायत्री-जप** से पूर्व 'सङ्कल्प' करे । यथा–

ॐ अद्येत्यादि अमुक-गोत्रः श्रीअमुक-शर्मा (वर्मा, गुप्तः) ज्ञाताज्ञात-पाप-क्षय-कामः अष्टोत्तर-सहस्रं गायत्री-जपमहं करिष्ये ।

इस दिन उपवासी, फलाहारी अथवा हविष्याशी होकर रहे ।

वेदिका के चारों ओर **पीपल, गूलर, पाकड़** या **बरगद**–इनमें से किसी एक की लकड़ी से बारह अंगुल लम्बी दश कीलें बनाकर दश दिशाओं में गाड़ दे । कीलों को गाड़ने के बाद उन पर निम्न मन्त्रों से गन्धाक्षत छोड़े–

ॐ ये चात्र विघ्न-कर्तारो, भुवि दिव्यन्तरिक्षगाः । विघ्न-भूताश्च ये चान्ये, मम मन्त्रस्य सिद्धिषु ।।
मयैतत् कीलितं क्षेत्रं, परित्यज्य विदूरतः । अपसर्पन्तु ते सर्वे, निर्विघ्नं सिद्धिरस्तु मे ।।

सबसे पहले अष्ट-दल का मण्डल बनाकर उसके मध्य में क्षेत्राधीश्वर का पूजन करे। अष्ट-दलों में क्रम से १. अनलाख्य, २. अग्निकेश, ३. कराल, ४. घण्टा-रव, ५. महा-कोप, ६. पिशिताशन, ७. पिशिताक्ष और ८. ऊर्ध्वकेश-इन अष्ट-क्षेत्रपालों की पूजा निम्न मन्त्र से करे-

ॐ क्षौं श्रीक्षेत्र-पालाय नमः।

'क्षौं'-वीज से षडङ्ग-न्यास कर क्षेत्र-पाल का ध्यान करे। यथा-

नीलाञ्जनाद्रि - निभमूर्द्ध - पिशङ्ग-केशं। वृत्तोग्र-लोचनमुपात्त-गदा-कपालम्।
आशाम्बरं भुजग - भूषणमुग्र - दंष्ट्रं। क्षेत्रेशमद्भुतमहं प्रणमामि देवम्॥

फिर पञ्चोपचार-पूजा कर नीचे लिखे मन्त्र से माष-भक्त द्वारा बलिदान करे-

'एष बलिं कुरु कुरु, भक्षय भक्षय, तर्पय तर्पय, विघ्नान् नाशय नाशय, महा-भैरव-क्षेत्रपाल! बलिं गृह्ण गृह्ण स्वाहा।'

तदनन्तर हाथ जोड़कर 'प्रार्थना' करे-

ॐ तीक्ष्ण-दंष्ट्र! महा-काय!, कल्पान्त-दहनोपम! भैरवाय नमस्तुभ्यमनुज्ञां दातुमर्हसि॥

इसके बाद वास्तु-पुरुष और ईशान का पूजन करे। तदनन्तर गाड़े हुए दश कीलकों को 'अस्त्र' मन्त्र (फट्) द्वारा अभिमन्त्रित कर उनमें लोक-पालों का आवाहन करे। फिर 'अस्त्र'-मन्त्र से उनका पञ्चोपचार-पूजन कर निम्न मन्त्र से पहले इन्द्र के लिए बलि दे-

एहीन्द्र! पूर्व-दिग्-भागे, पूजितो वस कीलके, मां पालय निर्विघ्नं, कार्यं साधय साधय माष-भक्त-बलिं गृह्ण गृह्ण स्वाहा।

इसी मन्त्र के अनुसार अन्य दिग्-पालों के मन्त्र बनाकर क्रमशः उन्हें बलि दे।

अन्त में सब विघ्नों को दूर करने के लिए गणेशादि पञ्चाङ्ग-पूजन करे।

अगले दिन उषा-काल में स्नानादि कर स्वस्ति-वाचन-पूर्वक सङ्कल्प करे-

'ॐ अद्येत्यादि अमुक-गोत्रः श्रीअमुक-शर्मा (वर्मा, गुप्तः) अमुक-देवतायाः अमुक-मन्त्र-सिद्धि-प्रति-बन्धकाशेष-दुरित-क्षय-पूर्वक-तन्मन्त्र-सिद्धि-कामः अद्यारभ्य यावताकालेन सेत्स्यति तावत्कालं अमुक-मन्त्रस्य इयत्-संख्यक जप, तद्दशांश-होम, तद्दशांश-तर्पण, तद्दशांशाभिषेक, तद्दशांश ब्राह्मण-भोजन-रूप-पुरश्चरणमहं करिष्ये।'

तदनन्तर भूत-शुद्धि, प्राणायामादि कर अपनी पद्धति के अनुसार इष्ट-देवता की पूजा करे और तेजोरूपिणी देवता का हृदय में ध्यान कर प्रातः-काल से लेकर मध्याह्न-पर्यन्त 'जप' करे। 'जप' समाप्त होने पर होम और तर्पण करे।

जल में इष्ट-देवता का आवाहन कर जल-रूप पाद्यादि उपचारों से परिवार-गण-सहित इष्ट-देवता की यथा-विधि पूजा करे और प्रत्येक परिवार-देवता का एक-एक अञ्जलि द्वारा तर्पण करे। होम की दशांश-संख्या जितनी हो, उतनी बार कर्पूर-मिश्रित तीर्थोदक द्वारा इष्ट-देवता का तर्पण करे। संख्या पूर्ण होने पर एक अञ्जलि द्वारा पुनः 'तर्पण' करे।

पहले मूल-मन्त्र, उसके बाद 'नमः' के साथ द्वितीया विभक्ति में देवता का नाम, उसके बाद

'तर्पयामि स्वाहा' जोड़कर तर्पण-मन्त्र बना ले। उदाहरणार्थ यदि शिव-मन्त्र है, तो तर्पण का मन्त्र निम्न प्रकार बनेगा—ॐ नमः शिवाय शिवं तर्पयामि स्वाहा।

तीर्थ-जल, दुग्ध, घृत, मधु अथवा गन्धोदक से 'तर्पण' करे। इन सब द्रव्यों के साथ कालागरु (काला अगर) मिलाकर 'तर्पण' करने से सारा संसार वश में होता है। चन्दन-मिश्रित जल के तर्पण से सौभाग्य-प्राप्ति, केशर-मिश्रित जल के तर्पण से वशीकरण, शर्करा-मिश्रित जल से ज्ञान-प्राप्ति, कर्पूर-मिश्रित से देवता की कृपा-प्राप्ति और रोचना-मिश्रित जल के तर्पण से सब प्रकार की विपत्तियों से मुक्ति मिलती है।

देवता का ध्यान कर उसके मुख में 'तर्पण' करना चाहिए।

अपने को इष्ट-देवता मानकर अपनी पूजा करे। फिर देवता में तन्मय होकर अपने सिर पर कलश-मुद्रा द्वारा 'अभिषेक' करे। मूल-मन्त्र, उसके बाद द्वितीयान्त देवता का नाम, अन्त में 'अभिषिञ्चामि नमः'—इस प्रकार अभिषेक-मन्त्र बना ले। जिस देवता के मन्त्र का पुरश्चरण हो, उसी का अभिषेक-मन्त्र बनाकर मस्तक में मूल-मन्त्र का ध्यान करता हुआ यथा-संख्यक अभिषेक करना चाहिए। इसके बाद अपनी देह में उप-देवताओं तथा आवरण-देवताओं के सहित देवी का ध्यान करता हुआ यथा-संख्यक अभिषेक करे। तदनन्तर प्राणादि एक-एक वायु का अभिषेक करे। 'अभिषेक' मन्त्र निम्न-लिखित किसी एक रूप में बना ले—

१—मूलं अमुक-देवतां अभिषिञ्चामि नमः।

२—मूलं नमोऽहममुक-देवतामभिषिञ्चामि।

३—मूलं नमः अमुक-देवतामहमभिषिञ्चामि।

'अभिषेक' का दशांश 'ब्राह्मण-भोजन' कराना चाहिए। जिस देवता का पुरश्चरण किया है, उस देवता के उपासक ब्राह्मणों को देवता-स्वरूप जानकर उन्हें भोजन कराए। साथ ही कुमारियों को भी भोजन कराए। कुमारियों को भोजन न कराने से पुरश्चरण अधूरा ही रहता है।

अन्त में भक्ति-युक्त होकर गुरुदेव का पूजन करे और यथा-शक्ति दक्षिणा देकर उन्हें सन्तुष्ट करे। दक्षिणा देकर महा-पूजा करे।

इस प्रकार पुरश्चरण करने से साधक मन्त्र-सिद्धि को प्राप्त करता है। यदि गुरुदेव पास में न हों अथवा दिवङ्गत हो गए हों, तो उनकी दक्षिणा गुरु-पत्नी, गुरु-पुत्र, गुरु-पौत्र या उनके वंशजों को देनी चाहिए। गुरु-देव का भाग देना पुरश्चरण की पूर्ति के लिए आवश्यक है।

पुरश्चरण का कोई अङ्ग यदि न कर पाए, तो उसका दूना 'जप' करे। ऐसा करने से पुरश्चरण अङ्ग-हीन नहीं होता। 'होम' के करने में असमर्थ होने पर ब्राह्मण दूना, क्षत्रिय तिगुना और वैश्य चौगुना 'जप' करे। अन्य मत के अनुसार होम करने में असमर्थ होने पर ब्राह्मणादि तीनों वर्ण तथा उनकी स्त्रियाँ होम-संख्या का दूना 'जप' करें। यदि शूद्र पुरश्चरण-कर्त्ता हो, तो जिस वर्ण के व्यक्ति से उसने दीक्षा ग्रहण की हो, उस वर्ण की स्त्री की 'जप-संख्या' उसके लिए नियत है। ब्राह्मण-पत्नी की 'जप'-संख्या दुगुनी, क्षत्रिय-पत्नी की तिगुनी और वैश्य-पत्नी की चौगुनी 'जप'-संख्या निश्चित है, अतः शूद्र के लिए जप-संख्या अपने गुरु ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य के अनुसार क्रम से दुगुनी, तिगुनी या चौगुनी होगी।

विष्णु के उपासक ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य को यथा-क्रम होम-संख्या का चतुर्गुण, षड्-गुण और अष्ट-गुण जप करना लिखा है। कहीं-कहीं द्वि-गुण और कहीं-कहीं चतुर्गुण जप का विधान है।

सारांश यही है कि यदि **पुरश्चरण** में कोई अङ्ग हीन हो अर्थात् असमर्थता-वश **होमादि** का अनुष्ठान न कर सके, तो उसकी पूर्ति '**जप**' द्वारा कर लेनी चाहिए। उत्तम पक्ष यही है कि **होम, तर्पण, मार्जनादि** सभी से युक्त '**पुरश्चरण**' किया जाए।

जप-काल में यदि भूख लगे, अधो-वायु निकले या जँभाई अथवा हिचकी आए, तो **आचमन** करके **प्राणायाम, षडङ्ग-न्यास** कर अथवा **सूर्य, ब्राह्मण** या **देव-दर्शन** कर पुनः '**जप**' आरम्भ करे।

जप-काल में यदि बहिर्भूमि अथवा लघु-शङ्का (टट्टी-पेशाब) के लिए जाना हो, तो पवित्र स्थान पर निवृत्त होकर स्नानान्तर पुनः '**जप**' में बैठ जाए। यदि स्नान करने में असमर्थ हो, तो वस्त्र बदलकर **मन्त्र-स्नान** या **भस्म-स्नान** करना आवश्यक है।

हविष्य भोजन को अपने इष्ट-देवता के सामने रखकर **मूल-मन्त्र से उसका प्रोक्षण** करे। फिर **प्रत्येक पदार्थ को सात-सात बार अभिमन्त्रित** कर भोजन करे। **जल को मूल-मन्त्र से बत्तीस बार अभिमन्त्रित** कर पीना चाहिए। ईख के रस की बनी हुई वस्तु-शक्कर-मिश्री आदि और गव्य घृत में पकी वस्तुएँ '**हविष्य**' पदार्थ हैं।

काँसे का बर्तन, क्षार नमक, मांस, गाजर, उड़द, अरहर, मसूर, कोदो, चना, बासी वस्तु, घृत-रहित और **कीट-युक्त भोजन, शहद**-ये सब निषिद्ध हैं। मैथुन, रसिक वार्तालाप, ऋतु-काल को छोड़कर अपनी पत्नी तक का स्पर्श करना, कुटिलता, बाल बनवाना, उबटन लगवाना, बिना देवता को अर्पित किए हुए भोजन करना इत्यादि बातें निषिद्ध हैं।

पुरश्चरण में आवश्यक कर्त्तव्य

निम्न आठ बातों का ध्यान सदा रखना चाहिए-

१. **भू-शय्या**-पवित्र वस्त्र पहनकर कुश या कम्बल आदि की शय्या में भूमि पर शयन करना चाहिए। प्रति-दिन पहनने के वस्त्र-सहित शय्या को भी शुद्ध कर लेना आवश्यक है।

२. **ब्रह्मचर्य**-अष्ट-विध मैथुन तथा काम-भाव के उद्दीपक कारणों से दूर रहना चाहिए।

३. **मौनावलम्बन**-यथा-शक्ति मौन धारण करे अर्थात् चुप रहे। इससे सब प्रकार के वाद-विवाद से रक्षा होगी।

४. **गुरु-सेवा**-श्री गुरुदेव के सान्निध्य में पुरश्चरण करना उत्तम है।

५. **नित्य स्नान**-पञ्च-गव्य या आँवले के रस द्वारा मन्त्र-जप-पूर्वक स्नान करना उत्तम है।

६. **पूजा**-स्वेष्ट-देवता की पूजा नियमित रूप से करता रहे।

७. **दान**-यथा-शक्ति प्रति-दिन सत्पात्र को कुछ-न-कुछ इष्ट-देवता के नाम पर दान देता रहे।

८. **गुरु और देवता की स्तुति**-अवकाश के समय गुरु और देवता-सम्बन्धी स्तोत्र का पाठ करे।

पुरश्चरण-कर्त्ता को **भगवान् शङ्कर** की निम्न उक्ति को सदा ध्यान में रखना चाहिए-

जिह्वा दग्धा परान्नेन, करौ दग्धौ प्रतिग्रहात्। मनो दग्धं पर-स्त्रीभिः, कथं सिद्धिर्वरानने! ।।

अर्थात् जिसकी जीभ दूसरे का अन्न खाने से जल गई है, जिसके दोनों हाथ दूसरे से लेते रहने के कारण जले हुए हैं और जिसका मन पराई स्त्रियों के चिन्तन से जल गया है, उसे सिद्धि कैसे मिल सकती है ?

पुरश्चरण के समय में क्षौर-कर्म, तैल-मर्दन और अनिवेदित भोजन न करे । गरम जल से स्नान, गीत और वाद्यों का सेवन, कुर्त्ता पगड़ी पहनना, अन्धकार में सोना, झूठ बोलना, बहुत बात करना निषिद्ध है ।

पुरश्चरण में शुभाशुभ स्वप्न

स्वप्न में अपने इष्ट-देवता का दर्शन, स्फटिक के समान शुभ्र-वर्ण मन्दिर या राज-भवन का देखना, श्रीगुरु-दर्शन, पूर्ण चन्द्रमा, सूर्य या समुद्र, जल से परिपूर्ण नदी, खिले हुए कमलों से भरा हुआ तालाब, यन्त्र-राज (श्री-यन्त्र) या अपने इष्ट-देव का यन्त्र, शिव-लिङ्ग या सुवर्ण पर्वत, नौका में बैठकर नदी को पार करना, स्वप्न में अपनी विजय देखना, जलती हुई आग, हंस, चक्रवाक (चकवा), सारस या मोर का देखना, घोड़ों से युक्त रथ, श्वेतच्छत्र तथा आभूषण, दीपकों की पंक्ति, श्वेत-पुष्प, दिव्य स्त्रियों का समूह, फूला हुआ वृक्ष, सुन्दर मांस, आकाश में चलना या उड़ना, सफेद घोड़ा या बैल, उन्मत्त हाथी-इन्हें देखना या इन पर सवारी करना, किसी सवारी में चढ़कर जाना, मद्य-पान करना, मांस-भोजन, शरीर में विष्ठा, रक्त या दही का लेपन या इन तीनों का भक्षण, राज्याभिषेक, रत्न और भूषणों का धारण करना, प्रसन्नता-द्योतक चित्रों का देखना शुभ होता है । **ये कार्य-सिद्धि के सूचक स्वप्न हैं** ।

उक्त प्रकार के स्वप्नों में से किसी एक अथवा दो स्वप्नों को देखकर प्रातः-काल स्नान-सन्ध्या-पूजा **कर श्रीगुरुदेव या गुरु-तुल्य श्रेष्ठ पुरुष या देवता के सामने रात में देखे हुए स्वप्न को निवेदन करे । शुभ स्वप्न देखने के बाद फिर नहीं सोना चाहिए ।**

स्वप्न में कौआ, कङ्क, उलूक, गीध, गधा, बिल्ली, भैंसा, चाण्डाल, काला पुरुष, काली वा विकट स्त्री, शून्य गढ़ा, सूखा वृक्ष, सूखी नदी, पोखर, सूखी बावली (कोई भी सूखा जलाशय), तेल मालिश करना, कँटिदार वृक्ष, मन्दिर या राजभवन का टूटना, अपने को पागल, नग्न (नङ्गा) या भयभीत या किसी सङ्कट में पड़ा हुआ देखकर **अशुभ स्वप्नों** की शान्ति करनी चाहिए । यथा-

अशुभ स्वप्न देखने पर पहले निम्न मन्त्र का जप करे-

उग्रं वीरं महा-विष्णुं, ज्वलन्तं सर्वतोमुखम् । नृसिंहं भीषणं भद्रं, मृत्यु-मृत्युं नमाम्यहम् ।।

तदनन्तर निम्न मन्त्र से '**प्रार्थना**' करे-

नृसिंहाय नमो दोषान् , जहि दुःस्वप्नजान् मम । यतः स्वप्नाधिपस्त्वं वै, सर्वेषां फलदो मतः ।।

नृसिंह बीज 'क्ष्रौं' का १०८ अथवा १००८ बार '**जप**' करे । **शुभाऽशुभ स्वप्न** का फल क्रम से प्रथम, द्वितीय और चतुर्थ याम में देखने से एक वर्ष में, छः मास में, तीन मास में और एक मास में यथा-क्रम होता है ।

मन्त्र-सिद्धि के लक्षण

मन्त्र के सिद्ध हो जाने पर शीघ्र ही चित्त की प्रसन्नता, मन में सन्तोष, अल्प भोजन, नींद का कम आना, स्वप्न में सवारी पर बैठना अथवा स्वामी-दर्शन इत्यादि होते हैं । साधक सर्वत्र ही प्रकाश देखता है, अपने शरीर को प्रकाश-मय या देवता-मय देखता है ।

पुरश्चरण में तीन वर्ष तक बहुत प्रकार के विघ्न तथा बाधाएँ होती हैं । यदि साधक मन और कर्म से किसी प्रकार भी विचलित न होकर **पुरश्चरण** में लगा रहता है, तो तीसरे वर्ष के बाद सभी लोग उसकी प्रसन्नता की कामना करने लगते हैं । साधना करते-करते नवें वर्ष के बाद मन्त्र स्वयं सिद्ध हो जाता है । **मन्त्र-सिद्धि** के माहात्म्य से साधक अपने हृदय में आनन्द-प्रद अनेक प्रकार के आश्चर्यों का अनुभव करता है । साथ ही बाहर भी अनेक प्रकार के आश्चर्यों को देखता है । कभी थोड़ी देर के लिए स्तब्ध हो जाता है, तो कभी अत्यन्त हर्षित होता है । कभी आकाश में नगाड़ों की ध्वनि सुनता है, तो कभी गीत और वाद्यों से युक्त मधुर सङ्गीत । कभी कर्पूर और कस्तूरी की सुगन्ध मिलती है, कभी अपने को आकाश में उड़ता हुआ अनुभव करता है । कभी सूर्य और चन्द्रमा की किरणों से आकाश को एक साथ व्याप्त देखता है, कभी विचित्र ताराओं और योगियों को देखता है । क्षण भर में आकाश को मेघाच्छन्न और कभी दिन में ही रात को और रात में दिन को देखता है । **मन्त्र-सिद्धि** के प्रभाव से, बल से परिपूर्ण, सूर्य के समान तेजस्वी, पूर्ण चन्द्र के समान कान्ति-मान, गरुड़ के समान गतिशील, चाहे थोड़ा भोजन मिले अथवा बहुत–कभी खेद को प्राप्त नहीं होता । मल और मूत्र में भी कमी हो जाती है, निद्रा के ऊपर जय प्राप्त कर लेता है । 'जप' और ध्यान में बैठने से उसे जरा भी कष्ट नहीं होता । बिना भोजन और जल-पान के वह एक पक्ष अथवा एक मास तक रह जाता है ।

इस प्रकार के आश्चर्य-कारक चिह्नों से स्पष्ट हो जाता है कि मन्त्र - देवता सब प्रकार से प्रसन्न हो गया है ।

पुरश्चरण में विविध मन्त्रों की जप-संख्या

गणपति ४ लाख, **हेरम्ब** ३ लाख, **हरिद्रा गणेश** ४ लाख, **त्रैलोक्य-मोहनकर गणपति** ४ लाख । **सूर्य** १२, ८ और ३ लाख ।

विष्णु १६ लाख, **राम** ६ लाख, **श्रीकृष्ण** ५ व १० लाख, अष्टादशाक्षर मन्त्र १२ व १० लाख, **वासुदेव** १२ लाख, **दधि-वामन** अष्टादशाक्षर ३ लाख, **हयग्रीव** ३३ लाख, **एकाक्षर मन्त्र** ४ लाख, **नृसिंह** २२, ८ और ६ लाख, **वराह** १ लाख ।

शिव १२ लाख, **अष्टाक्षर** ८ लाख, **मृत्युञ्जय** ३ लाख, **दक्षिणामूर्ति** १ लाख, **अर्धाम्बिकेश** १ लाख, **नील-कण्ठ** ३ लाख, **हरि-हरात्मक** १ लाख ।

भैरव और आपदुद्धार-बटुक भैरव वर्ण-लक्ष (जितने अक्षर का मन्त्र हो, उतने लाख), **हनुमान** १ लाख, **दशाक्षर हनुमान** ६ लाख ।

दुर्गा और महिष-मर्दिनी ८ लाख, **जय-दुर्गा** ५ लाख, **शूलिनी दुर्गा** १५ लाख, **त्रिपुटा** १२ लाख, **त्वरिता** १ लाख, **नित्या** ४ लाख, **प्रत्यङ्गिरा** १० हजार, **वाग्देवता** ८ लाख, **वागधि-देवता** ११ लाख, **पारिजात-सरस्वती** १२ लाख, **धनदा**, **कर्ण-पिशाची** और **गौरी** १ लाख, **विशालाक्षी** वर्ण-लक्ष, **मधुमती** १ लाख, **ब्रह्म-श्री** १० हजार ।

काली १ लाख, **द्वा-विंशाक्षरी काली** २१ हजार, **तारा** ४ लाख–अस्थि-माला में १ लाख, **षोडशी**, **श्रीविद्या-सादि** और **हादि पञ्चदशी** १-१ लाख, **कादि-पञ्चदशी** १, ३ या ९ लाख, **बाला-त्रिपुर-सुन्दरी** ३ लाख, **त्रिपुर-भैरवी** १० लाख, **सम्पत्-प्रदा**, **षट्-कूटा**, **रुद्र**, **भुवनेश्वरी** और **अन्नपूर्णेश्वरी भैरवी** १-१

लाख, भुवनेश्वरी १० लाख, कमला १० लाख, लक्ष्मी और महा-लक्ष्मी १२ लाख, बगलामुखी १ लाख, उच्छिष्ट-चाण्डालिनी (सुमुखी) १ लाख ।

नव-ग्रह : सूर्य ७ हजार, चन्द्र ११ हजार, मङ्गल १० हजार, बुध ४ हजार, वृहस्पति १९ हजार, शुक्र १६ हजार, शनि २३ हजार, राहु १८ हजार, केतु १७ हजार ।

जिन मन्त्रों की 'जप'-संख्या का उल्लेख नहीं है, उन मन्त्रों की 'जप'-संख्या ८ हजार है । जहाँ होम की संख्या न बताई हो, वहाँ होम-संख्या भी ८ हजार की मानी जाती है । ऊपर जो संख्याएँ दी हैं, वे सत्य-युग के लिए निर्दिष्ट हैं । त्रेता-युग में उक्त संख्या का दूना, द्वापर में तिगुना और कलि-युग में चौगुना 'जप' करना चाहिए । सम्भव है पुरश्चरण में किसी को थोड़े ही परिश्रम से सफलता मिल जाए, किन्तु जब तक मन्त्र-सिद्धि नहीं होती, तब तक पुरश्चरण करता ही रहे । अन्त में सफलता (सिद्धि) प्राप्त अवश्य होगी ।

पुरश्चरण की अन्य आवश्यक बातें

[१] मन्त्र-संस्कार : यदि गुरुदेव ने दीक्षा-काल में मन्त्र-संस्कार न किया हो, तो पुरश्चरण करने से पूर्व मन्त्र-संस्कार कर ले । यथा–

१. जनन : गोरोचन, कुंकुम, चन्दन या भस्म से स्वर्णादि पात्र में भोज-पत्र पर 'मातृका-यन्त्र' बनाए । शक्ति-मन्त्र के संस्कार में कुंकुम से, विष्णु-मन्त्र में चन्दन से और शिव-मन्त्र में भस्म से यन्त्र लिखना चाहिए । 'मातृका-यन्त्र' में देवता का आवाहन-पूजन कर उस 'मातृका-यन्त्र' से मन्त्र के एक-एक वर्ण का उद्धार करके पृथक् पत्र पर लिखे । यही 'जनन-संस्कार' है ।

२. जीवन : सभी मन्त्र-वर्णों को पंक्ति-क्रम से प्रणव (ॐ) द्वारा पुटित कर एक-एक वर्ण का सौ-सौ या दस-दस बार 'जप' करने से 'जीवन-संस्कार' होता है ।

३. ताड़न : मन्त्र के सब वर्णों को अलग-अलग लिखकर वायु-बीज 'यं' का उच्चारण करते हुए चन्दन-जल से कुश द्वारा प्रत्येक को सौ या दश बार ताड़न करने से 'ताड़न-संस्कार' होता है ।

४. बोधन : मन्त्र की वर्ण-संख्या के अनुसार करवीर (कनेर) पुष्पों से वह्नि-बीज 'रं' का उच्चारण करते हुए उसको हनन करना 'बोधन-संस्कार' होता है ।

५. अभिषेक : भोज-पत्र या सुवर्ण-रजतादि पात्र में मन्त्र लिखकर मन्त्र-वर्ण-संख्यक लाल कनेर पुष्पों से वह्नि-बीज 'रं' द्वारा सब वर्णों को अभिमन्त्रित कर अश्वत्थ-पत्र से तत्तन्मन्त्रोक्त-विधान से सब मन्त्र-वर्णों का सिञ्चन करना 'अभिषेक-संस्कार' कहाता है ।

अथवा मन्त्र को भोज-पत्र पर लिखकर 'रों हंसः ॐ' मन्त्र से उसे अभिमन्त्रित करे और पुनः एक हजार बार मन्त्र द्वारा अभिमन्त्रित जल से अश्वत्थ-पत्रादि द्वारा मन्त्र का अभिषेक करे ।

६. विमलीकरण : 'सुषुम्ना' के मूल और मध्य-भाग में मन्त्र का चिन्तन कर ज्योतिर्मन्त्र 'ॐ ह्रौं' से मल-त्रय को दग्ध करना 'विमलीकरण' है ।

अथवा 'ॐ त्रों वषट्' से मन्त्र को सम्पुटित कर एक हजार बार 'जप' करने से 'विमलीकरण' होता है ।

७. आप्यायन : मन्त्र के सभी वर्णों को कुशोदक अथवा पुष्पोदक से आप्यायित करे ।

८. तर्पण : पूर्वोक्त ज्योतिर्मन्त्र की वर्ण-संख्या के अनुसार शक्ति-मन्त्र में मधु से, विष्णु-मन्त्र में कर्पूर-मिश्रित जल से और शिव-मन्त्र में घी-दूध से तर्पण करे।

९. दीपन : मन्त्र को 'ॐ ह्रीं श्रीं' से पुटित कर १०८ बार 'जप' करने से मन्त्र का 'दीपन' होता है।

१०. गुप्ति : मन्त्र को गोपनीय रखने से मन्त्र का 'गुप्ति' संस्कार होता है। अथवा मन्त्र को 'हूं' बीज से सम्पुटित कर उसका एक सौ आठ या एक हजार बार 'जप' करने से मन्त्र का 'गोपन-संस्कार' होता है।

[२] मन्त्र-चैतन्य : मन्त्र को चैतन्य करने के लिए मन्त्र के पहले 'क्लीं श्रीं ह्रीं' तथा अकार से लेकर क्षकार-पर्यन्त मातृकाऽक्षरों को लगाकर मन्त्र का उच्चारण करे और पुनः पूर्वोक्त तीनों बीज तथा 'अ' से लेकर 'क्ष'-पर्यन्त मातृका का उच्चारण करे। इस प्रकार एक सौ आठ बार 'जप' करने से 'मन्त्र-चैतन्य' हो जाता है। इससे मन्त्र-जप का फल कोटि-गुण बढ़ जाता है।

[३] कुल्लुकादि मन्त्रों का जप : अपने इष्ट-मन्त्र को जपने से पूर्व मन्त्र के कुल्लुकादि मन्त्रों का 'जप' करना आवश्यक है। इन मन्त्रों के 'जप' के बिना इष्ट-मन्त्र का 'जप' करना सिद्धि-नाशक ही नहीं अपितु हानि-कारक भी है।

पहले 'कुल्लुका' का, तब 'सेतु' का, पुनः 'महा-सेतु' का, इसके बाद 'निर्वाण' का 'जप' किया जाता है। इन सबके बाद इष्ट-मन्त्र का 'जप' किया जाता है।

१. कुल्लुका : इसका 'जप' शिर में बारह बार करे। काली मन्त्र की कुल्लुका 'क्रीं हूं स्त्रीं फट्' है। छिन्नमस्ता-'श्रीं ह्रीं ह्रीं ऐं ह्रीं ह्रीं स्वाहा'। वज्र-वैरोचिनी-'वज्र-वैरोचिन्यै हूं फट्'। त्रिपुर-सुन्दरी-'ऐं क्लीं ह्रीं त्रिपुरे भगवति स्वाहा'। भैरवी-'हसरैं'। अन्य देवियों की 'ॐ हूं क्रों'।

मतान्तर से कुल्लुका : तारा-ॐ ह्री स्त्रीं हुं। मञ्जु-घोष-ॐ अरवचलधीं। भुवनेश्वरी-'ह्रीं'। मातङ्गी-'ॐ'। धूमावती-'ह्रीं'। षोडशी-'स्त्रीं'। लक्ष्मी-'श्रीं'। सरस्वती-'ऐं' और अन्नपूर्णा-'क्लीं'।

२. मन्त्र-सेतु : इसका 'जप' हृदय में बारह बार करे। ब्राह्मण और क्षत्रिय के लिए 'ॐ', वैश्य के लिए 'फट्' और शूद्र के लिए 'ह्रीं' सेतु मन्त्र है। मतान्तर से शूद्रों का सेतु 'ओं' है और अन्य मत से 'ॐ' भी है। मतान्तर से द्विजाति-मात्र के लिए सेतु 'ॐ' है। अतः वैश्यों के लिए प्रणव (ॐ) और 'फट्' दोनों ही 'मन्त्र-सेतु' हैं। गुरु जिसे बतावे, उसी का जप करे।

३. महा-सेतु : इसका जप द्वादश बार कण्ठ-स्थान में करे।

त्रिपुर-सुन्दरी का महा-सेतु-'ह्रीं', कालिका-'क्रीं', तारा-'हूं'। अन्य सभी देवताओं का महा-सेतु-'स्त्रीं'।

४. निर्वाण-इसका जप नाभि-स्थान (मणिपूरक चक्र) में बारह बार करे। पहले 'अं' तब मूल-मन्त्र, फिर 'ॐ ऐं आं इं ईं...हं क्षं ॐ' इस प्रकार निर्वाण-मन्त्र बनता है।

[४] मुख-शोधन मन्त्र : उच्छिष्ट भोजन, असत्य-भाषण और कलह आदि से जिह्वा दूषित हो जाती है। जिह्वा के शोधन के लिए अपने-अपने मन्त्र के अनुसार 'मुख-शोधन-मन्त्र' का जप कर ले। यथा-

त्रिपुर-सुन्दरी-'**श्रीं ॐ श्रीं ॐ श्रीं ॐ**'। श्यामा-'**क्रीं क्रीं क्रीं ॐ ॐ ॐ क्रीं क्रीं क्रीं**'। तारा-'**ह्रीं हूं ह्रीं**'। दुर्गा-'**ऐं ऐं ऐं**'। बगलामुखी-'**ऐं ह्रीं ऐं**'। मातङ्गी-'**ॐ ऐं ॐ**'। लक्ष्मी-'**श्रीं**'। धूमावती-'**ॐ**'। धनदा-'**ॐ धूं ॐ**'। अन्य देवता '**ॐ**'।

[५] मन्त्र का अशौच : मन्त्रोच्चारण से पहले मन्त्र का जातकाशौच और मन्त्रोच्चारण के अनन्तर मृताशौच होता है। इन दोनों अशौचों से युक्त मन्त्र सिद्ध नहीं होता। मन्त्र के आदि और अन्त में ब्रह्म-बीज 'ॐ' लगाकर सात बार जपने से उक्त दोनों प्रकार के अशौच दूर हो जाते हैं।

[६] मन्त्रार्थ : मन्त्र और देवता पृथक्-पृथक् दो वस्तुएँ नहीं हैं, वरन् एक ही वस्तु हैं, इस बात का समझना ही '**मन्त्रार्थ**' है।

मन्त्र और देवता वाच्य-वाचक हैं, भाव में अभिन्न हैं। **देवता का 'मन्त्र'** वाच्य है और **मन्त्र-'देवता'** का वाचक है, अतएव वाचक का ज्ञान होने पर वाच्य प्रसन्न होता है।

मूलाधार-चक्र में स्फटिक के समान शुभ्र- वर्ण, **लिङ्ग-मूल (स्वाधिष्ठान)** में बन्धूक पुष्प के समान रक्त-वर्ण, **नाभि-मूल** में स्फटिक के समान शुभ्र-वर्ण, **हृदय** में मरकत-मणि-सदृश श्याम-वर्ण, कण्ठ **(विशुद्ध-पद्म)** में हरिद्-वर्ण, **भौहों के बीच आज्ञा-चक्र** में शुक्ल, रक्त, श्याम और हरित वर्णों से अनुरञ्जित **स्वेष्ट-देवता** का ध्यान करे। इस प्रकार **छहों चक्रों में इष्ट-देवी का ध्यान** करे।

[७] मन्त्र-चैतन्य : इसकी एक विधि पहले लिखी जा चुकी है। अन्य विधि निम्न प्रकार है-

सहस्त्रार-रूप शिव-पुर में चारों वेद-रूप चार शाखाओं से युक्त तथा पीले, लाल, सफेद, काले और हरे रङ्ग के पुष्पों और फलों से नित्य आवृत्त, भ्रमरों और कोकिलाओं से शब्दायमान, अनेक पुष्पों से सुशोभित मनोहर कल्प-वृक्ष का और उसके अधोभाग में रत्न- वेदिका और वेदी के ऊपर पुष्प-शय्या से उक्त मनोहर पलँग का ध्यान करे। इसके उपरान्त त्रिवर्ग-दात्री इष्ट-देवी का ध्यान करता हुआ इष्ट-मन्त्र का जप करे। इस प्रकार जप करने से आनन्दाश्रु टपकने लगते हैं, रोमाञ्च हो जाता है और देहावेश होता है। इसी को '**मन्त्र का चैतन्य**' कहते हैं।

[८] योनि-मद्रा : पूर्व-मुख या उत्तर-मुख आसन पर बैठकर **प्राणायाम-पूर्वक षट्-चक्रों का ध्यान** करे। यथा-मूलाधार में आधार-पद्म, लिङ्ग के मूल-देश में **स्वाधिष्ठान**, नाभि-देश में मणि-पूरक, हृदय में **अनाहत**, कण्ठ में **विशुद्ध**, भ्रू-मध्य में **आज्ञा** और ब्रह्म-रन्ध्र में हजार दलों का **सहस्त्रार-कमल** है। **आधार-पद्म** के कन्द के बीच में **त्रिकोण** है। उस त्रिकोण के बीच में सुलक्षण काम-बीज '**क्लीं**' है। उस बीज के मध्य में उस बीज से उत्पन्न मनोहर **स्वयम्भू-लिङ्ग** है। उस लिङ्ग के ऊपर के भाग में '**हंसः**' से आश्रित चित्कला है। उस कला के बीच में स्वयम्भू लिङ्ग का वेष्टन किए हुए तेजो-रूप **जगन्मयी कुण्डलिनी शक्ति का ध्यान** करे। इसके बाद **आधारादि छहों पद्मों का भेदन** कर **तेजो-रूपा कुण्डलिनी- शक्ति** को '**हंस**' मन्त्र से **ब्रह्म-रन्ध्र** में ले आवे और वहाँ पर स्थित **सदा-शिव** के साथ क्षण-मात्र के लिए उपगता के रूप में उसका ध्यान करे। उन शिव और **कुण्डलिनी** के संयोग से उत्पन्न **लाख के रङ्ग के समान** रङ्गवाले अमृत **से इष्ट-देवता का तर्पण** करे। तब उस **अमृत से षट्-चक्रों में स्थित सब देवताओं** का तर्पण करता हुआ **पूर्वोक्त** मार्ग से **कुण्डलिनी** को फिर **मूलाधार-पद्म** में ले आवे। इसके उपरान्त **ब्रह्म-नाड़ी** के मध्य-गता

मृणाल-सूत्र-सदृशा चित्रिणी-नाड़ी में ग्रथिता रुद्राक्ष-माला का ध्यान कर **सविन्दु-वर्णों द्वारा सम्पुटित मन्त्र का मन-ही-मन में अनुलोम-विलोम से 'जप' करे।**

इस प्रकार पचास **मातृका-वर्ण शत-बार** एवं "**अ, क, च, ट, त, प, य, श**' ये **अष्ट-वर्ण** आठ बार-कुल **अष्टोत्तर-शत** बार 'जप' करे। 'जप' के समय 'क्ष'-कार-रूप मेरु का कदापि लङ्घन न करे।

[९] मन्त्र-शिखा : मूलाधार में सर्प की आकृति की जो देवी रहती है, उसके भ्रमावर्त से निकली हुई वायु को प्राण-वायु कहते हैं। **त्रिशिरा, अव्यक्त, मधुर शब्द-कारिणी कुण्डलिनी के ब्रह्म-रन्ध्र** और **मूलाधार** के यातायात-क्रम में साधक अपना मन लय करे। यहीं '**मन्त्र-शिखा**' की उत्पत्ति होती है। जो सब प्रकार के मन्त्रों की उद्दीपिका है। जिस प्रकार अन्धकार से व्याप्त कोई वस्तु दिखाई नहीं पड़ती है, उसी प्रकार **शिखा-हीन मन्त्र** कदापि सिद्ध नहीं होता।

टिप्पणी : मन्त्र-चैतन्य, योनि-मद्रा और मन्त्र-शिखा-ये तीनों योग से सम्बन्ध रखते हैं। धीरे-धीरे अभ्यास करने से सफलता प्राप्त होती है।

[१०] पुरश्चरण प्रारम्भ करने पर अशौच्र-निर्णय : पुरश्चरण के प्रारम्भ करने पर यदि किसी प्रकार का **जननाशौच** अथवा **मृताशौच** हो जाए, तो **पुरश्चरण** बन्द न करे। जो उपासक **नित्यार्चन** करता हो, वह उसे भी बन्द न करे।

दीक्षित साधकों को '**जप**' और **नित्यार्चन** करते रहना चाहिए, **अशौच** पर उन्हें कोई पाप अथवा सूतक नहीं होता।

अनुष्ठान में बैठे हुए पुरुष को **जातकाऽशौच** अथवा **मृताऽशौच** नहीं लगता। **अशौच** होने पर उसकी शुद्धि स्नान करने से हो जाती है।

यज्ञ, व्रत, विवाह, श्राद्ध, होम, अर्चन और '**जप**' (**पुरश्चरण**) को प्रारम्भ कर चुकने पर **सूतक का दोष** नहीं होता। **सूतक** तभी तक माना जाता है, जब तक कार्य का प्रारम्भ नहीं होता। कार्यों के प्रारम्भ हो जाने पर **अशौच का दोष** नहीं माना जाता। यज्ञ में **ब्राह्मण--वरण, व्रत** और अपने **सङ्कल्प, विवाह** तथा **व्रत-बन्ध** में **नान्दीमुख श्राद्ध** तथा **श्राद्ध** में **पाक-क्रिया** (पिण्ड के लिए पाक) होने पर **जातकाऽशौच** अथवा **मृताऽशौच** नहीं माना जाता।

[११] सिद्धि-पर्यन्त पुरश्चरण : यदि एक **पुरश्चरण** में मन्त्र-सिद्धि न हो, तो दूसरा **पुरश्चरण** करना चाहिए। दूसरे में भी मन्त्र-सिद्धि न हो, तो तीसरा करना आवश्यक है। तात्पर्य यह है कि जब तक मन्त्र-सिद्धि प्राप्त न हो, तब तक **पुरश्चरण** करते रहना चाहिए।

पञ्चाङ्गोपासनात्मक पुरश्चरण से जिसने एक मन्त्र की सिद्धि प्राप्त कर ली है, उसे अन्य सब मन्त्रों की सिद्धि स्वल्प परिश्रम से अल्प काल में ही प्राप्त हो जाती है। जिस साधक को अनेक मन्त्रों की सिद्धि प्राप्त हो गई है, उसके विषय में क्या कहा जा सकता है? वह तो साक्षात् शिव-स्वरूप ही है।

चार अयुत (४०,०००) का छोटा पुरश्चरण

चार अयुत मन्त्र-जप का छोटा-सा **पुरश्चरण-कृष्णाष्टमी** से लेकर **कृष्ण-चतुर्दशी** पर्यन्त किया जाता है। इसमें **अष्टमी** से लेकर त्रयोदशी पर्यन्त प्रति-दिन नित्य-कृत्य के अनन्तर **५७१४ संख्यक मन्त्र**

जप किया जाता है और **चतुर्दशी** को **५७१६ संख्यक जप** किया जाता है। इस प्रकार **सात दिन में चार अयुत ४०,०००** जप-संख्या हो जाती है। इसके अनन्तर तद्-दशांश **हवन-तर्पणादि** सब कर्म किए जाते हैं और **यह सात दिन का पुरश्चरण** कहलाता है।

एक मास का पुरश्चरण

प्रातः-काल नित्य-क्रिया व नित्यार्चन के अनन्तर **अकार से लेकर क्षकार-पर्यन्त मातृका-वर्णों का अनुलोम से उच्चारण कर मूल-मन्त्र का उच्चारण करे, फिर मातृका-वर्णों का विलोम से उच्चारण** करे। इस प्रकार **प्रति-दिन १०८ बार एक मास पर्यन्त** जपकर **होमादि कर्म** करे। इस प्रकार **मासिक पुरश्चरण** करने से भी मन्त्र-सिद्धि होती है।

ग्रहण-कालीन पुरश्चरण

ग्रहण-समय में स्नान, सन्ध्या, पाठ, पूजा, जप, तप, पुरश्चरण तथा यथा-शक्ति यथा-विभव **स्वर्ण**, रजत, रत्न, भूमि, गौ, महिषी और बछड़े आदि का दान अनन्त फल-प्रद होता है। शास्त्रों का मत है कि इस पवित्र अवसर पर मन्त्र-सिद्धि शीघ्र होती है।

प्रश्न यह उठता है कि **ग्रहण के स्पर्श-काल से मोक्ष-पर्यन्त** केवल '**जप**' ही करे अथवा उस '**जप**' के अन्त में '**जप**' के दशांश **हवन, तर्पण, मार्जन** और **ब्राह्मण-भोजन** भी करे-कराए।

'मेरु-तन्त्र' में लिखा है कि **ग्रहण-समय में व्रत** रखकर **समुद्र-गामिनी** नदी या जलाशय में खड़े होकर **स्पर्श-काल से मोक्ष-पर्यन्त** मन्त्र का '**जप**' करे और **ग्रहण** के उपरान्त **दशांश हवन, तर्पणादि** करे। अथवा **ग्रहण के पुण्य-काल** का मन्त्र के अनुसार समय-विभाग करके **ग्रहण-काल** में ही तद्-दशांश **हवन-तर्पणादि** करे। या फिर '**जप**' की संख्या के बराबर ही **हवन-तर्पण-मार्जन** करके दूसरे दिन दशांश अथवा बराबर **ब्राह्मण-भोजन** कराए।

अथवा **ग्रहण**-काल में **ग्रहण** के **सूतक** होने के समय से **व्रत** रखकर नदी या **जलाशय** के नाभि-मात्र जल में स्थित होकर या शुद्ध जल से स्नान कर **स्पर्श-काल से मोक्ष-पर्यन्त** वाचिक, उपांशु और मानसिक इन तीन प्रकार के '**जपों**' में से स्व-शक्त्यनुसार कोई जप करे। तदनन्तर क्रम से दशांश **हवन, तर्पण** आदि करे। इसके बाद अपने **इष्ट-देवता** की सब प्रकार से बड़ी पूजा करे। साथ ही **गुरु-देव** को दक्षिणादि सेवा से प्रसन्न करे।

इस प्रकार **ग्रहण-कालीन पुरश्चरण** के विषय में एक पक्ष की सम्मति यह है कि जितना जप किया जाए, उसके अनुसार उसका दशांश **हवन, तर्पण, मार्जन** और **ब्राह्मण-भोजनादि** यथा-क्रम करने चाहिए।

दूसरे पक्ष की सम्मति के अन्तर्गत 'काली-तन्त्र' का उद्धरण है कि **सूर्य-चन्द्र-ग्रहण** में **ग्रास-काल से लेकर मुक्ति-काल पर्यन्त** जितना मन्त्र जपा जाए, उतना ही **होम-तर्पण-मार्जनादि** भी करना चाहिए, न कि पूर्वोक्त जप के दशांश। यदि दस-दस हजार '**जप**' किया है, तो **हवन** आदि भी दस-दस हजार होंगे।

इस मत की पुष्टि 'सनत्कुमार-संहिता' भी करती है और कहती है कि उक्त प्रकार **जप-होमादि** करने से मन्त्र-सिद्धि निःसन्देह होती है अर्थात् यदि पाँच हजार '**जप**' किया है, तो **हवन, तर्पण, मार्जनादि** सभी पाँच-पाँच हजार होंगे।

'तन्त्र-चिन्तामणि' में उद्धृत तन्त्र-वचन बताते हैं कि **सूर्य-चन्द्र के ग्रास से लेकर मुक्ति-पर्यन्त** उपासक **'जप'** करता रहे और अन्त में जितना **'जप'** किया हो, उसका **दशांश हवन** करे। पुनः इसी क्रम से **तर्पण, मार्जनादि** करे। इसी प्रकार किसी **सङ्गम** में जाकर भी **'जप'** करना चाहिए। **ग्रास से लेकर मुक्ति-पर्यन्त** एक पैर के अँगूठे से खड़ा होकर जो मन्त्र जपता है तथा **पञ्चाङ्ग, अष्टाङ्ग** अथवा **दशाङ्ग पुरश्चरण** करता है, वह सब सिद्धियों का ईश्वर बन जाता है।

इस प्रकार सारांश यह है कि सबसे पहले **ग्रहण** के पूर्व स्नानादि करके **आसन-शोधन, आचमन, धूप-दीप-स्नान, प्राणायाम, दिग्-बन्ध, न्यासादि** करके **सङ्कल्प** कीजिए। यथा–

अमुक-मासे अमुक-पक्षे अमुक-गोत्रोत्पन्न अमुक-नामोऽहं श्रीमद्-इष्ट-देवता-प्रीत्यर्थं शास्त्रोक्त-पुण्य-फल-प्राप्ति-कामनया वा अमुक-मन्त्र-सिद्धि-कामनया अमुक-मन्त्रस्य स्पर्शारभ्य मोक्ष-पर्यन्तं जपमहं करिष्ये।

ग्रहण-काल से कुछ पूर्व ही **'जप'** प्रारम्भ कर दें और **मोक्ष-पर्यन्त 'जप'** करते रहें। ध्यान रहे, **ग्रहण में मानसिक 'जप'** का ही विधान है। **पाठ या वाचिक 'जप'** का निषेध है। **ग्रहण** के बाद जितना **'जप'** हो चुका हो, उसका दशांश **हवन**, हवन का दशांश **तर्पण** और तर्पण का दशांश **मार्जन** व मार्जन का दशांश **ब्राह्मण (वीर साधक) को भोजन** कराए। अभाव में दशांश **'जप'** का चौगुना **'जप'** और करके **१०८ आहुतियाँ** देने से भी चल सकता है। **ग्रहण-काल में दान** का अत्यन्त **पुण्य** है। अतः कुछ **तिल-अन्नादि सुवर्ण का दान** भी अवश्य करना उचित है।

अन्त में 'ग्रहण-पुरश्चरण'-सम्बन्धी ध्यान देने योग्य कुछ विशेष बातें हैं, जो निम्न-लिखित हैं–

१. **ग्रहण** में यदि राशि से **अनुकूल ग्रहण** हो, तो ग्रहण देखते हुए उस बिम्ब में **इष्ट-देवता का ध्यान** करते हुए 'जप' करना अत्यन्त प्रशस्त माना गया है।

ज्योतिष-शास्त्र के अनुसार **ग्रहण-काल** में जिस **राशि** और **नक्षत्र** पर ग्रहण होता है, उस राशिवाले को तथा जिसका चौथा, आठवाँ और बारहवाँ पड़ता है, उसे **ग्रहण** देखने का निषेध है, परन्तु **राहु को देखकर 'जप' करना** कोटि पुण्यों का फल देनेवाला होता है। अतएव अन्य दोष के भय को त्याग कर **राहु को देखकर अवश्य 'जप' करना चाहिए**। यदि दोष का डर ही हो, तो **दोष-निवारण का उपाय** निम्न प्रकार कर ले– '**चन्द्र-ग्रहण** में चाँदी की चन्द्र-प्रतिमा और **सूर्य-ग्रहण** में स्वर्ण-निर्मित सूर्य-प्रतिमा की पञ्चोपचारों से पूजा कर ब्राह्मण को दान देने से दोष का परिहार हो जाता है।'

२. **शाबर मन्त्र** ग्रहण में अत्यन्त सरलता से सिद्ध होते हैं। अतः उनकी संख्यानुसार उनका भी 'जप' किया जाता है।

३. अपने नित्य किए जानेवाले **सभी मन्त्रों का 'जप'** ग्रहण में अवश्य करना चाहिए, ताकि वे मलिनता को न प्राप्त हों।

४. ग्रहण-काल में दीक्षादि के लिए कोई अन्य विचार की आवश्यकता नहीं है।

५. वीर-भाववालों को चाहिए कि **ग्रहण-समय में पञ्च-तत्त्व से पूजन** के उपरान्त **'जप'** करें और पशु-भावालम्बन न करें, जैसा कि प्रचलित है।

६. **ग्रहण** के बाद स्नान (चाहे अशक्तावस्था में **मन्त्र-स्नान** ही हो) करके यज्ञोपवीत बदलें और तब दशांश **हवनादि** करें।

७. **ग्रहण में श्राद्ध** आवश्यक है। **स्मार्त्त**-मतावलम्बी प्रायः **हेम** वा आम **श्राद्ध** करते हैं।

यद्यपि कुछ ग्रन्थों के वचनों से **ग्रहण-काल** में **श्राद्ध** करना आवश्यक जान पड़ता है तथापि यह स्मार्तों के लिए है, **तान्त्रिकों** के लिए नहीं। 'सनत्कुमार संहिता' में कहा है कि जो मनुष्य **ग्रहण-समय में पुरश्चरण** करना त्याग कर **श्राद्ध** करने बैठता है, वह नरक-गामी होता है। अतः ग्रहण में **पुरश्चरण** करना आवश्यक है, न कि **श्राद्ध**। **श्राद्ध-विधान** दीक्षित उपासकों के लिए न होकर केवल **स्मार्त्त धर्मानुयायी** लोगों के लिए है।

'कल्प-लताकार' का कहना है कि जो मनुष्य पहले से **पुरश्चरण** में बैठा है और संयोग से **पुरश्चरण-काल में ग्रहण** पड़ जाय, तो उसे अपना **पुरश्चरण**-सम्बन्धी **'जप'** छोड़ **श्राद्ध** नहीं करना चाहिए। जो **दीर्घ-कालीन पुरश्चरण** में नहीं बैठा हुआ है, वह **श्राद्ध** करके **ग्रहण-कालीन पुरश्चरण** कर सकता है।

संक्षेप में **स्मार्त्त-धर्मावलम्बियों को श्राद्ध** करना चाहिए, **तान्त्रिकों को 'जप'**।

८. **ग्रहण-काल** से पहले भोजन-व्यवस्था-विषय में शास्त्र का सिद्धान्त यह है कि **चन्द्र-ग्रहण** में ग्रहण लगने से तीन प्रहर पहले और **सूर्य-ग्रहण** में ग्रहण-समय के चार प्रहर पूर्व भोजन कर लेना चाहिए। किन्तु **बाल, वृद्ध** और **आतुर (रोगी) मनुष्य** इस नियम से निर्मुक्त हैं।

स्मार्त्त-मतानुसार 'निर्णय-सिन्धु' में अनेक प्रकार के विधि-निषेधों का वर्णन है। यथा **सूर्य-ग्रहण** में चार पहर पहले और **चन्द्र-ग्रहण** में तीन पहर पहले ही भोजन कर ले क्योंकि उनका सूतक आरम्भ हो जाता है। माधव के मत से **ग्रस्तास्त-ग्रहण** में पुनः **बिम्ब-दर्शन** करने के बाद अर्थात् पुनः **चन्द्रोदय** वा **सूर्योदय** होने पर भोजन करना विहित है। **वैध-काल** तथा **ग्रहण में पक्वान्न-ग्रहण** निषिद्ध है। **ग्रहाण का बासी अन्न** भी नहीं खाना चाहिए। दूध, मट्ठा, दही, घृत से पके अन्न और मणि में स्थित जल राहु से दूषित नहीं होता। अनेक ग्रन्थों तथा लोकाचार के अनुसार खाद्य वस्तुओं में **ग्रहण-काल** में **कुश** डालने से वस्तु अपवित्र नहीं होती। **रविवार को सूर्य-ग्रहण** तथा **सोमवार को चन्द्र-ग्रहण** होने पर **चूड़ामणि-योग** होता है, जो अन्य ग्रहणों की अपेक्षा करोड़ गुना फल-दायी माना जाता है। **ग्रहण** में मूत्र-पुरीषोत्सर्ग से दरिद्रता, कीट-योनि, सोने से आयु-क्षीणता, विषय-सेवन से शूकर-योनि, खाने-पीने से नरक, उबटन लगाने से कुष्ट होता है। **बाल-वृद्ध-रोगी** के लिए कोई नियम नहीं है।

अन्त में यह उल्लेखनीय है कि मन्त्र को सिद्ध किए बिना कल्पोक्त **काम्य-प्रयोग** नहीं करना चाहिए। **काम्य-प्रयोग** करने के पहले **पुरश्चरण** द्वारा **मन्त्र-सिद्धि** प्राप्त करना आवश्यक है।

●●●

वीर-साधना

शाक्त-साधना का सर्वाधिक रहस्य-पूर्ण अङ्ग रहा है–'**वीर-साधना**'। जैसा कि प्रायः सभी जिज्ञासुओं को ज्ञात है, साधना तीन भावों के अन्तर्गत की जाती है–**१. पशु-भाव, २. वीर-भाव** और **३. दिव्य-भाव**। '**पशु-भाव**' की साधना सभी लोग कर सकते हैं क्योंकि उसमें ऐसी वस्तुओं की सहायता ली जाती है, जिनका प्रभाव तीव्र नहीं होता। इस साधना के द्वारा जब साधक का मन श्रद्धा और विश्वास से युक्त होकर दृढ़ बन जाता है, तब वह '**वीर-भाव**' की साधना करने का अधिकारी होता है।

'**वीर-भाव**' की साधना के भी मुख्यतः दो रूप हैं। पहले रूप में केवल **पञ्च-मकारों** की ही अनिवार्यता रहती है, जो उतना कठिन नहीं है क्योंकि अधिकांश लोग **पञ्च-मकारों** का उपयोग सहज ही कर लेते हैं, किन्तु दूसरे रूप में अधिक उग्र स्थान और वस्तुओं के प्रयोग की आवश्यकता होती है, जिसमें कुछ ही लोग प्रवृत्त हो सकते हैं। गोपनीयता के कारण और योग्य पुरुषों के अभाव में '**वीर-भाव**' की साधना लुप्त सी हो रही थी। उसके विषय में अनेक प्रकार के भ्रम फैले हुए थे, किन्तु '**चण्डी**'-पत्रिका एवं '**वाम-मार्ग**', '**चक्र-पूजा**', '**साधक का संवाद**', **पञ्च-मकार तथा भाव-त्रय**, **पञ्च-मकार विशेषाङ्क**, **कौल-कल्पतरु** जैसी पुस्तकों के प्रकाशन से '**वीर-भाव**' के प्रथम रूप की अधिकांश भ्रान्तियाँ दूर हो चुकी हैं। अब आवश्यकता इस बात की है कि '**वीर-भाव**' के दूसरे रूप का परिचय भी लोगों को इस प्रकार से कराया जाए कि उसके विषय की भ्रान्तियाँ दूर हों और अधिकारी साधक उसे अपना कर साधना के चरम लक्ष्य को प्राप्त कर सकें।

इस सम्बन्ध में '**हेमवती-पीठ**' के संस्थापक **परम पूज्य स्वामी श्री हिमालय अरण्य जी महाराज** द्वारा बड़े परिश्रम से महत्त्व-पूर्ण साहित्य एकत्र किया गया है, जिसे यहाँ प्रकाशित किया जा रहा है। यह सारा साहित्य तन्त्र-शास्त्र में यत्र-तत्र बिखरा पड़ा है। आशा है कि पाठक इस विवरण से '**वीर-साधना**' की प्रमुख बातों से परिचित हो सकेंगे और उसकी वैज्ञानिकता को हृदयङ्गम कर सकेंगे।–सं०

●●●

वीर साधना का समय

'मुण्डमाला-तन्त्र' में लिखा है कि-'दिन अथवा रात्रि के समय देवी की पूजा न करे। देवी की पूजा सर्वदा करे, दिवा-रात्रि में देवी की पूजा न करे।' इस कथन का तात्पर्य 'रेवा-तन्त्र' की निम्नोक्ति से स्पष्ट होता है-'रात के पहले आधे प्रहर और शेष आधे प्रहर को दिवा कहते हैं। पहले आधे प्रहर के बाद छः दण्ड रात्रि होती है। उसके बाद दस दण्ड रात्रि को निशा और **महा-निशा** (महा-निशा और अति महा-निशा) कहते हैं। **यही वीर-साधना** के सब क्रमों में प्रसिद्ध है। इसके बाद बची रात्रि को दिवा-रात्रि कहा गया है।' इस वचन से **महा-निशा** एवं अति **महा-निशा** अर्थात् रात्रि के प्रथम तीन घण्टा तीस मिनट के बाद दस दण्ड रात्रि का समय पूजा के लिए प्रशस्त काल निर्दिष्ट होता है। **वीर-पूजा** के लिए सबसे उत्तम समय यही है, परन्तु इस निर्देश से बहुतेरे साधक अनुमान कर लेते हैं कि इस काल को छोड़कर और समयों में **वीर-पूजा** का करना निषिद्ध है।

'निरुत्तर-तन्त्र' में लिखा है कि-'**रात्रौ कुल-क्रियां कुर्यात्, दिवा कुर्याच्च वैदिकीं।**' अर्थात् रात्रि में **कौलिक पूजा** करे और दिन में **वैदिक आचार** से युक्त रहे। इसी प्रकार 'कुलार्चन-तन्त्र' और 'काली-कल्पलता' में लिखा है कि-'दिन में कभी पूजा न करे, केवल रात में गुप्त-भाव से पूजन करे।' इन सभी वचनों पर विचार करने से यही प्रकट होता है कि गोपन के उद्देश्य से ही **भगवान् शिव** ने दिन का निषेध कर रात का समय **वीर-पूजा** के लिए निश्चित किया है। परन्तु दिन में भी **पञ्च-तत्त्वों-द्वारा पूजा** करने की विधि लिखी मिलती है। जैसे 'गुप्त साधना-तन्त्र' में कथित है-'**पञ्च-तत्त्व-द्वारा पूजन** करने में समय-असमय का विचार छोड़ दे।' 'कुब्जिका-तन्त्र' में कहा है कि 'दिन, सन्ध्यावसान या रात के समय का कोई विचार न करे।'

'कुलार्णव-तन्त्र' में भी प्रातः-काल की पूजा के समय **वीर-पूजा** का विधान किया गया है। इसी प्रकार इसके बाद मध्याह्न में भी ऐसी ही विधि है। **पञ्च-तत्त्व-विहीन पूजन** को निष्फल बताया गया है।

कामाख्या तन्त्र, समया तन्त्र आदि ग्रन्थों से यही पूर्णतया सिद्ध होता है कि **पञ्च-तत्त्व-विहीन सभी पूजाएँ निरर्थक** होती हैं। ऐसी दशा में यदि दिन में **वैदिकाचार** से **तत्त्व-हीन नित्य-पूजादि** की जाए, तो वह **निष्फल होगी**। अतः यहाँ सारी बातों पर मनन करने से यही निष्कर्ष निकलता है कि दिन में पूजा-निषेधक जितने वचन हैं, वे सब केवल आचार की गोपनीयता के प्रतिपादक मात्र हैं। इसी प्रकार '**वीर-पुरश्चरण**' के सम्बन्ध में भी कुछ निषेधक वचन मिलते हैं। वास्तव में दिन में भी **वीर-पूजा** होती है। इसी से अधिकांश साधक **सामान्यार्घ्य** में अलि-विन्दु छोड़ देते हैं। इससे पूजा निष्फल नहीं होती और शिव का अभिप्राय भी गुप्त रह जाता है। 'कौलावली' में लिखा है कि-'अत्यन्त गुप्त-भाव से सभी समयों में सभी स्थानों में '**पञ्च-तत्त्वों'-द्वारा महती पूजा** निश्चय ही करनी चाहिए।' इससे प्रकट होता है कि जिस स्थान में गोपन हो सकने की सम्भावना होती है, वहाँ दिन में भी **वीर-पूजा** होती है अन्यथा रात्रि का समय ही इसके लिए ठीक है। परन्तु 'महा-निर्वाण तन्त्र' में **सदा-शिव** ने कहा है कि-'इस प्रबल कलि-युग में दिन में **वीर-पूजा** न करने का वैसा कोई प्रयोजन नहीं है।' अतएव दिन में भी **वीर-पूजा** का विधान है, किन्तु **निशा-पूजा** कुछ अधिक ही फल-दायिनी है।

●●●

श्री पञ्च-मुण्डी एवम् श्री श्री नव-मुण्डी महासन

'श्री पञ्च-मुण्डी आसन' और **'श्री श्री नव-मुण्डी महासन'** की ख्याति बहुत है, परन्तु उनकी वास्तविकता क्या है, इसे सभी लोग नहीं जानते। साधना के लिए **'आसन-तत्त्व'** एक गम्भीर विषय है क्योंकि इसी पर साधक की सिद्धि निर्भर करती है।

'आसन' में आसीन होकर अर्थात् बैठकर साधना करनी होती है। साधारण रूप से आसन को बाहर का कोई बिछावन समझा जाता है। जैसे **कुशासन, कम्बल, गलीचा, व्याघ्र-चर्म, सिंह-चर्म** आदि बहुत प्रकार के **बाह्य आसन** प्रचलित हैं। इन आसनों में बैठने से **प्रणायाम** और **चित्त की एकाग्रता** आदि साधन सहज ही सम्पन्न होते हैं, इसीलिए इन आसनों का व्यवहार किया जाता है।

प्रकृति के अनुसार जिसके लिए जो आसन उपयोगी होता है, गुरुदेव एवं शास्त्र उसी की व्यवस्था करते हैं। प्रचलित तान्त्रिक साहित्य एवं योग-साधना के ग्रन्थों में **सिद्धासन, पद्मासन** आदि यौगिक एवं बाह्य आसनों का विस्तृत वर्णन मिलता है। (देखिए **'आसन'**-सम्बन्धी लेख)।

आत्मिक तेज के विकास के लिए तन्त्र-शास्त्र में **'शवासन'** की भी व्यवस्था है। आसन के लिए उपयोगी शव का भी वर्णन मिलता है। किन्तु वह सर्व-साधारण के लिए नहीं है, विशिष्ट **'वीर-साधना'** के लिए ही उसकी आवश्यकता होती है। यहाँ **वीर-साधना** में विहित इन विशिष्ट आसनों का संक्षिप्त परिचय दिया जा रहा है।

'शवासन' का वास्तविक रहस्यार्थ है–**शवीकृत निज-देह** अर्थात् अपनी देह को शव-रूप में परिणत कर देहस्थ चैतन्य को उसके ऊपर प्रतिष्ठित करना। निज-देह **'आसन'** है और उस पर देहस्थ अधिष्ठाता चैतन्य **'आसीन'** होता है। साधना की प्रगति के साथ-साथ **'आसन'** और **'आसीन'** की यह भूमिका क्रमशः अधः से ऊर्ध्व-स्थूल से सूक्ष्म की ओर विकसित होती है।

यह सारा विश्व ३६ तत्त्वों द्वारा निर्मित है। इन **छत्तीस तत्त्वों का भेदन** किए बिना विश्व का अतिक्रमण करना सम्भव नहीं है। साधक अपनी देह का अतिक्रमण करके ब्रह्माण्ड का रूप धारण करता है, उसी की धारणा **'वैराज धारणा'** कहलाती है। इस धारणा के फल-स्वरूप वह ब्रह्मा=हिरण्य-गर्भ-पद का अधिकारी होता है। जो ब्रह्माण्ड के अन्तःस्थित चैतन्य से निष्क्रान्त होकर समग्र ब्रह्माण्ड को शव-रूप में परिणत कर उसके ऊपर आसीन होकर ध्यानस्थ होता है, वही **'एक-मुण्डी आसन'** सिद्ध होता है। **'एक-मुण्डी आसन'** का यही रहस्य है।

हमारा ब्रह्माण्ड मूलतः **पृथ्वी-तत्त्व** द्वारा विरचित है। अतः **'एक-मुण्डी आसन'** का साधक **पृथ्वी-तत्त्व** को जय कर उसका नियामक होता है। यही उसका ऐश्वर्य है, किन्तु यह विराट् ऐश्वर्य होते हुए भी सीमित ही होता है। बहुत से कर्म शेष रहते हैं, कारण कोटि-कोटि ब्रह्माण्ड हैं। परवर्त्ती अन्य सभी तत्त्वों को अपने में आयत्त करना भी शेष रहता है।

यहाँ **'पृथिवी'**-शब्द का अर्थ सर्व-परिचित पृथ्वी नहीं है। शास्त्रों के अनुसार व्यष्टि और समष्टि-भाव से सकल ब्रह्माण्ड पृथिवी के अन्तर्गत है। इस विशाल अण्ड को **'प्रकृत्यण्ड'** कहते हैं। **'प्रकृत्यण्ड'** के मध्य

में छोटे-छोटे बालुका-कणों की तरह सकल ब्रह्माण्ड झूल रहे हैं। इस **प्रकृत्यण्ड** के अधिष्ठाता '**विष्णु**' हैं, ये **सत्य-लोक** के अन्तर्वर्ती ब्रह्माण्ड के नियामक '**विष्णु**' से भिन्न हैं।

साधक साधना में प्रविष्ट होकर उक्त विशाल **प्रकृत्यण्ड** को भी आयत्त कर सकता है, अपनी देह के **प्रकृत्यण्ड** के सहित, **बिशाल प्रकृत्यण्ड** से अपने को अभिन्न रूप में समझने का सामर्थ्य प्राप्त कर सकता है। ऐसे साधक ब्रह्माण्ड को आयत्त करनेवाले साधकों से श्रेष्ठ हैं। उनके द्वारा **प्रकृत्यण्ड** से प्राप्त चेतना का अतिक्रमण होने पर या **विशाल प्रकृत्यण्ड** का भेदन होने पर, **विशाल प्रकृत्यण्ड** ब्रह्माण्ड की तरह शव-रूप में परिणत होता है, जिसके फल-स्वरूप साधक निज को '**प्रकृत्यण्ड**' नियामक '**विष्णु**' से अभिन्न मानता है।

जिस प्रकार '**प्रकृत्यण्ड**' के मध्य छोटे-छोटे बालुका-कणों की तरह बहु-संख्यक ब्रह्माण्ड झूल रहे हैं, उसी तरह '**प्रकृत्यण्ड**' भी वस्तुतः एक नहीं होता। '**मायाण्ड**' के अन्तर्गत **असंख्य प्रकृत्यण्ड** एवं **प्रति प्रकृत्यण्ड** के अन्तर्गत असंख्य ब्रह्माण्ड हैं। **भेद-ज्ञान की निवृत्ति** न होने तक '**मायाण्ड**' का अतिक्रमण सम्भव नहीं है। **पुरुष एवं माया** के सम्मिलन से समग्र '**मायाण्ड**' रचित हुआ है। मायावच्छिन्न पुरुष ही '**मायाण्ड**' की प्राण-शक्ति है। **माया** प्रधानतः स्वरूप-शक्ति को आवरण करके रहती है। **आत्मा-भगवान्** ही निज को संकुचित कर, **माया** द्वारा आच्छन्न होकर **पुरुष**-रूप ग्रहण किए हैं, इसमें सन्देह नहीं। इन्हीं मूल पुरुष का, जिन्होंने समस्त **मायाण्ड** को निज-काम के रूप में ग्रहण किया है, शास्त्र-कारों ने '**रुद्र**'-रूप में वर्णन किया है। प्रगति-शील साधक '**विष्णु-भूमि**' से उठकर, उभय भूमि को शवाधार-रूप में परिणत कर, '**रुद्र-भूमि**' में प्रवेश करता है। '**मायाण्ड**' का अतिक्रमण कर जब साधक '**रुद्र-ग्रन्थि**' का भेदन करता है, तब समग्र माया उसकी सङ्कल्प-शक्ति के अधीन होती है। ऐसे ही साधकों को शास्त्रों में '**त्रि-मुण्डी-आसन**' का साधक कहा गया है।

'**माया-राज्य**' के ऊपर चिन्मय, शुद्ध सत्त्व-मय, आनन्द-मय, कालातीत विशुद्ध '**महा-माया-राज्य**' है। यह अण्ड भी अति विशाल है। **विशाल मायाण्ड** इस महान् ज्योतिर्मय अण्ड के एक कोने में अवस्थित है। इस वृहत्तम अण्ड को शास्त्रीय परिभाषा में '**शाक्ताण्ड**' कहकर वर्णन किया गया है। '**शक्ति**' का अर्थ यहाँ **चिन्मयी शक्ति** समझना चाहिए।

इस '**शाक्ताण्ड**' के मध्य स्वरूपतः विभाग न होते हुए, समझने की सुविधा से, इसमें दो परस्पर संश्लिष्ट विभाग कल्पित हुए हैं। एक के अधिष्ठाता '**ईश्वर**' एवं दूसरे के अधिष्ठाता '**सदा-शिव**' हैं। '**ईश्वर**' शक्ति के तिरोधान-रूप के प्रतीक हैं। '**सदा-शिव**' शक्ति के अनुग्रह-रूप के प्रतीक हैं। दूसरे शब्दों में '**शाक्ताण्ड**' में '**ईश्वर**' द्वारा '**निग्रह का व्यापार**' एवं '**सदा-शिव**' द्वारा '**अनुग्रह का व्यापार**' सम्पन्न होता है। यह व्यापार निरन्तर होता है। समग्र विश्व के पालन के लिए यह अत्यन्त आवश्यक है। जो बाँएँ हाथ से धक्का देकर **अन्धकार-मय माया-राज्य** में निक्षेप करते हैं, वे ही पुनः दक्षिण हस्त से चैतन्य-शक्ति के उन्मेष द्वारा **ज्योतिर्मय-आनन्द-मय चिद्-राज्य** में आकर्षण करते हैं।

दिव्य-साधक **माया-भेद** करने के बाद '**शाक्ताण्ड**' में प्रविष्ट होकर '**ईश्वर**' और **सदा-शिव** अवस्था में प्रतिष्ठित होते हैं। तब समस्त '**शाक्ताण्ड**' ही उनके काय-रूप में कल्पित होता है।

जिनकी दृष्टि महा-शक्ति की तरफ आकृष्ट हुई है, उनके लिए इस काया-रूप का अतिक्रमण भी आवश्यक है। कारण '**ईश्वर**' और '**सदा-शिव**' समग्र मायिक जगत् में चरम अधिष्ठाता होकर भी पूर्ण स्वतन्त्र नहीं हैं। उनकी स्वातन्त्र्य-शक्ति परमेश्वर की स्वातन्त्र्य-शक्ति के द्वारा नियन्त्रित है। वे परमेश्वर के प्रतिनिधि के रूप में

स्वीय-कार्य-निर्वाह करते हैं। इसीलिए **निज शाक्ताण्ड-रूप महत्तम काय** को भी **शव**-रूप में परिणत करना होता है। तब '**ईश्वर**' और '**सदा-शिव**' दोनों की निष्क्रिय **शव**-रूप में स्थित **आसन**-रूप की कल्पना होती है। यही '**पञ्च-मुण्डी**' आसन का रहस्य है। **ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, ईश्वर** और **सदा-शिव**-इन पञ्च-प्रेतों के ऊपर अधिष्ठित होकर साधक कोटि-सूर्य के समान देदीप्यमान होता है।

'**पञ्च-मुण्डी**' आसन **सदा-शिव का आसन** है। **सदा-शिव** में ब्रह्मादि-चतुष्टय अन्तर्लीन हैं। **शव-रूपी सदा-शिव** के हृदय के ऊपर स्थित **आद्या श्री काली** ही इस आसन में आसीन हैं। साधक उनके श्री चरणों में तादात्म्य-लाभ करते हैं। **ब्रह्मा से सदा-शिव** पर्यन्त साकार विश्व की सीमा है। साकार जगत् का भेदन कर **निराकार शक्ति-राज्य में प्रवेश** करना होता है।

ब्रह्मा के काय-रूप में सारा ब्रह्माण्ड कल्पित हुआ है। इस '**काय**' का विनाश ही ब्रह्माण्ड का लय है। इसे महा-प्रलय कहा जाता है। **ब्रह्मा** की आयु निज-परिमाण के अनुसार शत-वर्ष है।

विष्णु का एक दिन **ब्रह्मा** के शत-वर्ष के बराबर है। **विष्णु** की आयु निज परिमाण के अनुसार शत-वर्ष है। **विष्णु** कीसृष्टि अर्थात् **प्रकृत्यण्ड ब्रह्माण्ड** से जिस प्रकार विशाल है, ठीक वैसे ही उसका प्रलय ब्रह्माण्ड के महा-प्रलय से अधिक व्यापक है।

इसी प्रकार **रुद्र की सृष्टि** और **प्रलय** पूर्वोक्त रीति के अनुसार **विष्णु की सृष्टि** और **प्रलय** की अपेक्षा वृहत्तर है। इसी नियम से **ईश्वर** और **सदा-शिव की सृष्टि** तथा **प्रलय** को भी समझना चाहिए। **सदा-शिव की सृष्टि** के प्रलय के बाद साकार राज्य नहीं रहता। तब **निरकार शक्ति** के राज्य में प्रवेश होता है। मन का अस्तित्व यहाँ खोज करने पर भी नहीं पाया जाता। इसी अवस्था का नाम '**उन्मना**' है। यह अति कठिन है। साधारण उपाय से इस **महा-शून्य का भेदन** नहीं किया जा सकता। एक-मात्र **विश्व-जननी महा-शक्ति** के अनुग्रह से ही इसका भेदन सम्भव है। दूसरे शब्दों में **सेतु-रचना** होती है।

'**पञ्च-मुण्डी-आसन**' माँ (श्यामा) का चरण है, '**नव-मुण्डी आसन**' माँ (राज-राजेश्वरी) की गोद है। '**पञ्च-मुण्डी आसन**'-महा-शून्य के इस पार है, '**नव-मुण्डी असन**'-महा-शून्य के उस पार है। वस्तुतः '**पञ्च-मुण्डी आसन**' का ही पूर्ण स्वरूप '**नव-मुण्डी आसन**' है। **सदा-शिवासन** ही वास्तविक आसन है, **महा-विन्दु है, माँ की गोद है**। इस स्थान में **विश्व-मय भेद तिरोहित होकर सामरस्य की प्राप्ति** होती है।

'**पञ्च-मुण्डी आसन**'-**सदा-शिव-रूपी आसन** है। '**नव-मुण्डी आसन**'-**परम-शिव-रूपी आसन** है। **सदा-शिव** के वक्षःस्थल में **महा-शक्ति** का जो रूप विराजता है, उसका आश्रय लेकर '**पञ्च-मुण्डी आसन**' का कर्म सम्पन्न होता है। **परम शिव** के हृदय में विहार करनेवाली **महा-शक्ति** का आश्रय लेकर '**नव-मुण्डी-आसन**' का कर्म सम्पन्न होता है। '**पञ्च-मुण्डी आसन**' विश्वातीत सत्य है, किन्तु विश्व की कारण-सत्ता के अतीत नहीं है। '**नव-मुण्डी आसन**' कारण-समुद्र, यहाँ तक कि महा-कारण समुद्र से भी अतीत है। '**पञ्च-मुण्डी आसन**' के कर्म का लक्ष्य **महा-शून्य=उन्मना** का भेदन है, किन्तु उससे परमात्मा की निद्रा भङ्ग नहीं होती। उसका स्वप्न-दर्शन बन्द नहीं होता। समग्र विश्व आत्म-स्वरूप में प्रतिष्ठित नहीं होता। '**नव-मुण्डी-आसन**' के बिना **परम-शिव** की निद्रा भङ्ग नहीं हो सकती, **विश्व-माया की निवृत्ति** नहीं होती। समग्र जगत् का वास्तविक कल्याण एवं अपना भी परम कल्याण सम्भव नहीं होता।

●●●

वीर-साधना की कुछ विशेष क्रियाएँ

१. आत्म-रक्षा का विधान

श्मशान आदि निर्जन स्थानों में **वीर-साधनादि पुरश्चरण** करने और '**महा-शङ्ख**' आदि **वीर-साधनों** को ग्रहण करने में साधकों को विशेष सावधानी रखनी होती है । पहली बात तो यही है कि इस सबके योग्य अपने को बना लेना चाहिए । बिना अधिकारी हुए जो इस अग्र साधना को अङ्गीकार करते हैं, वे या तो असफल होकर हतोत्साहित हो जाते हैं या उनकी मेधा और प्रज्ञा को ऐसी चोट पहुँचती है कि वे विक्षिप्त या मृत-प्राय हो जाते हैं । इस दशा में **शरभ-मन्त्राभिषेक** या **क्रोध-मण्डल के देवताओं की कृपा** से ही उनकी रक्षा हो पाती है । फिर भी पूर्ण स्वस्थ अवस्था को विरले ही पुनः प्राप्त कर पाते हैं । इसीलिए '**वीर-साधना**' में प्रवृत्त होने के पूर्व **आत्म-रक्षा** के लिए गुरु-प्रदत्त **अस्त्रादि मन्त्र-समूहों का निरन्तर अभ्यास** करना आवश्यक होता है । साथ ही **महा-षोढा, महा-शक्ति** आदि विशिष्ट न्यासों के सतत प्रयोगों द्वारा अपने शरीर को सब प्रकार से सुरक्षित कर लेते हैं । इसके सिवा साधना की समस्त क्रिया एवं तत्सम्बन्धी मन्त्रों को कण्ठस्थ करना अनिवार्य होता है क्योंकि **घोर श्मशान-भूमि** में पुस्तक लेकर साधना करना सम्भव नहीं होता ।

गुरु-कृपा से प्राप्त अस्त्रादि मन्त्रों से आशय है '**पाशुपतादि**' दिव्यास्त्रों से, जो उत्कट शक्ति-उपासना के फल-स्वरूप होनेवाले आध्यात्मिक विस्फोट के समय साधक के शरीर की रक्षा करते हैं और उसे उन्माद-ग्रस्त नहीं होने देते । अतः यह परमावश्यक है कि **वीर-साधन** प्रारम्भ करने के पूर्व इन अस्त्रों एवं **विशिष्ट न्यासों** में पूर्णतया अभ्यस्त हो जाय ।

शाबर-मन्त्रों की साधना में उतना विधि-विधान निर्दिष्ट नहीं है, किन्तु वे भी किसी प्रकार की त्रुटि होने पर साधक को उन्मादावस्था में पहुँचता देते हैं । यही कारण है कि उसमें भी अनेक रक्षात्मक मन्त्रों का प्रावधान मिलता है । उदाहरण के लिए कुछ मन्त्रों का सङ्केत करना पर्याप्त होगा । यथा–

१. हनुमन्त वज्र का कोठा"", २. गोरख चलै दिशा औंधे पर्वतों का सिद्ध अमुक की रक्षा करै"", ३. भैंरूं भूपाल काशी को कोतवाल घाट वाट को तू रक्षा पाल"", ४. काला कलुवा"", ५. भस्मन्ती योगिनी तू मेरी माता मैं तेरो पूत"", ६. ॐ काली बम काली फट् काली रक्षा काली"", ७. कामरू कामाख्या हाड़ीरभी चण्डी रक्षा"", ८. उलटथि नृसिंह पलटथि काया रक्षा करतथि नरसिंह राया"", ९. राम कुण्डली ब्रह्म चाक तैंतीस कोटी देवता अमुकार बेड़िया थाक"", १०. यम यमदूत चलै मरघट छोड़ी मशान चलै रक्षापाल""।

उक्त प्रकार के सैकड़ों **शाबर रक्षा-मन्त्र** हैं, किन्तु '**वीर-साधना**' में इनसे कोई सहायता नहीं मिलती । **शाबर-मन्त्रों** की साधना से क्षुद्र सिद्धियाँ प्राप्त कर लोगों को चमत्कृत तो किया जा सकता है, किन्तु उससे **आत्म-कल्याण** नहीं होता, अपितु कालान्तर में अधोगति ही प्राप्त होती है । इसी प्रकार **भूत-प्रेत, डाकिनी** आदि **अप-देवताओं की साधना** का अन्तिम परिणाम शुभ नहीं होता । भौतिक चमत्कार की साधना का अन्तिम परिणाम शुभ नहीं होता । **भौतिक चमत्कार** की दृष्टि से ही इन सब मन्त्रों के प्रति लोगों का आकर्षण रहा है **गोस्वामी** तुलसीदास तक लिख गए हैं कि–**अनमिल आखर अर्थ न जापू, प्रकट प्रभाव महेश प्रतापू ।**

किन्तु जैसा कि बता चुके हैं, आत्मोन्नति और दिव्य स्तर की आध्यात्मिक प्रगति के लिए ये साधनाएँ उपयोगी नहीं हैं। उसके लिए तो महा-विद्याओं की उपासना का मार्ग ही प्रशस्त है। इस मार्ग का प्रारम्भ 'शय्या-साधना' से होता है, अतः उसकी कुछ विधियाँ यहाँ दी जा रही हैं–

२. वृहत्तर शय्या-साधना

इस साधना के करने से 'शव-साधना' के समान फल साधक को प्राप्त है। इससे उसकी सभी कामनाएँ पूर्ण होती हैं। सर्व-प्रथम 'शय्या-साधना' से सम्बन्धित 'कामाख्या-कवच' यहाँ उद्धृत किया जाता है, जिसकी महिमा इसकी 'फल-श्रुति' से स्पष्ट है–

कामाख्या-कवचम्

विनियोग–अस्य श्रीयोनि-कवचस्य गुप्त ऋषि । कुलटा छन्दोराजः । विघ्नोत्पाद-विनाशे पाठे विनियोगः ।

ह्रीं योनिर्मे सदा पातु, स्वाहा विघ्न-विनाशिनी । शत्रु-नाशात्मिका योनि! सदा मां रक्ष सागरे ।।
ब्रह्मात्मिका महा-योनिः, सर्वान् कामान् प्ररक्षतु । राज-द्वारे महा-घोरे, क्लीं योनि सर्वदाऽवतु ।।
हूमात्मिका सदा देवी, योनि-रूपा जगन्मयी । सर्वाङ्गे रक्ष मां नित्यं, सभायां राज-वेश्मनि ।।
वेदात्मिका सदा योनिर्वेद-रूपा सरस्वती । कीर्ति-श्री-कान्तिमारोग्यं, पुत्र-पौत्रादिकं तथा ।।
रक्ष रक्ष महा-घोरे ! सर्व-सिद्धि-प्रदायिनि ! रजोयोगात्मिका योनि, सर्वत्र मां सदाऽवतु ।।

।। फल-श्रुति ।।

इति ते कथितं देवि! कवचं सर्व-सिद्धिदं । त्रि-सन्ध्यं यः पठेन्नित्यं, राजोपद्रव-नाश-कृत् ।।
सभायां वाक्पतिश्चैव, राज-वेश्मनि राज-वत् । सर्वत्र जयमाप्नोति, कवचस्य जपेन हि ।।
श्रीयोन्या सङ्गमे देवि ! पठेदेनमनन्य-धीः । स एव सर्व-सिद्धीशो, नात्र कार्या विचारणा ।।
मातृकाक्षर-सम्पुटैः, कृत्वा यदि पठेन्नरः । भुञ्जते विपुलान् भोगान्, दुर्गाय सह मोदते ।।
अति-गुह्य-तमं देवि ! सर्व-धर्मोत्तमोत्तमं । भूर्जे वा ताल-पत्रे वा, लिखित्वा धारयेद् यदि ।।
हरि-चन्दन-मिश्रेण-गेचयेत् कुंकुमेन च । शिखायामथवा कण्ठे, सोऽपीश्वरो न संशयः ।।

।। इति शक्तिकागम-सर्वस्वे हर-गौरी-सम्वादे श्रीयोनि-कवचम् ।।

उक्त कवच का 'अम्बुवती पुरश्चरण' तीन दिन का है 'ऋतुमती पृथ्वी' का अवलोकन कर पाठ करना चाहिए। विशेष कर आषाढ़ मास में। १६ दिन का पुरश्चरण निम्न 'शय्या-साधना'-विधि से सम्बद्ध है–

डेढ़ याम निशा-काल के बीत जाने पर साधक दिगम्बर होकर सुगन्धित पुष्पों से युक्त शय्या पर, सोते समय जहाँ दाहने हाथ की कुहनी रहती है या जहाँ कटि-भाग (कमर) रहता है, वहाँ बैठकर और अपनी शक्ति को बिठाकर शय्या का संस्कार करे। पहले आचमन कर मूल-मन्त्र से शय्या का अभ्युक्षण कर निम्न प्रकार सङ्कल्प करे–

ॐ तत्सदद्य अमुके मासे अमुक-राशिस्थ-भास्करे अमुक-पक्षे अमुक-तिथावारभ्यामुक-तिथि-पर्यन्तं अमुक-गोत्रः अमुक-नामोऽहं शय्या-संस्कार-पूर्वकं बटुकं देवीं शक्तिं च पूजयित्वा अष्टोत्तर-सहस्त्र-जपं तदन्ते महती-पूजां कुमारी-भोजनं च सम्पाद्य तत्-करणक-दशांश-होमः (तदनुकल्पे

त्तद्-द्विगुणः जपः), तद्-दशांश तर्पणं(तदनुकल्पे तद्-द्विगुणः जपः), तद्-दशांश-मार्जनं(तदनुकल्पे तद्-द्विगुणः जपः), तद्-दशांश-ब्राह्मण-भोजन-रूप शय्या-साधनमहं करिष्ये।

अब बाँएँ कान के ऊपर गुरुओं को, दाएँ कान के ऊपर गणेश को और सामने भौहों के ऊपर 'श्मशान-वासिन्यै नमः' या 'अमुक-देवतायै नमः' से प्रणाम करे। हाथ जोड़कर निम्न मन्त्र से शय्या को प्रणाम करे-'ॐ' ह्रीं आसन-रूप-शय्यायै नमः'। इसके बाद अश्वत्थ (पीपल) के चार पत्तों पर रक्त-चन्दन से माया-बीज 'ह्रीं' लिखकर उन्हें शय्या के चारों कोनों पर स्थापित करे। तब मिट्टी के दस ढेलों को निम्न मन्त्र से अभिमन्त्रित कर दसों दिशाओं में उनमें से एक-एक ढेले को फेंके-

हूं हूं ह्रीं ह्रीं कालिके, घोर-दंष्ट्रे, प्रचण्डे, चण्ड-नायिके! दानवान् दारय दारय हन हन शव-शरीरे महा-विघ्नं छेदय छेदय स्वाहा हूं फट्।

अब योनि-मुद्रा से 'ॐ' ह्रीं पवित्र-वज्र-भूमे हूं फट् स्वाहा' से भूमि को अभिमन्त्रित कर उस पर रक्त-चन्दन से एक अधो-मुख त्रिकोण बनाकर उसमें गन्धाक्षत द्वारा 'ॐ ह्रीं आधार-शक्त्यादिभ्यो नमः' से पूजन करे। तब शय्या के ऊपर एक अधो-मुख त्रिकोण बनाकर उसमें गन्धाक्षत से 'ॐ ह्रीं आधार-शक्तये कमलासनाय नमः' से पूजन कर बाँएँ हाथ से शय्या पर तीन बार आघात करते हुए कहे-'हूं फट् ॐ ऐं फट् स्वाहा।' फिर छोटिका-मुद्रा से (अपने सिर के चारों ओर चुटकी बजाते हुए) दश-दिग्-बन्धन कर शय्या से हाथ जोड़कर प्रार्थना करे-

ॐ शय्ये! त्वं मृत-रूपाऽसि साधनीयाऽसि साधकैः। अतोऽत्र जप्यते मन्त्रो ह्यस्माकं सिद्धिदा भव ।।१।।
ॐ देव-दानव-गन्धर्वाः सिद्ध-चारण-राक्षसैः। मुनिभिश्चापि देवेन्द्रैः, शय्ये! त्वं साधिता यदि।
अस्माकं स्पर्श-मात्रेण, स्व-वशे-सिद्धिदा भव ।।२

तदनन्तर शय्या पर हाथ रखकर दस बार इस मन्त्र का जप करे-मूलं इमां शय्यां शोधय शोधय पवित्री कुरु कुरु स्वाहा।

भगवती त्रिपुरा के उपासक यहाँ इस मन्त्र का जप करें-मूलं ऐं ह्रीं श्रीं त्रिपुर-सुन्दर्यै इमां शय्यां पवित्री कुरु कुरु स्वाहा।

फिर शय्या को योनि-मुद्रा दिखाकर कहे-'ऐं ह्रीं श्रीं अमुकी देवीं मे वशमानय सिद्धिं देहि।' तब मानसिक रूप से 'ॐ ह्रीं एते गन्ध-पुष्पे शय्यासनाय नमः' से शय्या का पूजन कर निम्न मन्त्र से १०८ बार उसे अभिमन्त्रित करे-'ॐ त्वं शय्ये! सिद्धिदे सिद्धे ह्रीं।' फिर प्रणव से मूल-मन्त्र को पुटित कर १०८ बार उसका जप करे।

इस प्रकार शय्या को अपने वश में कर कल्पोक्त पीठ-न्यास, दिग-बन्धन, शिखा-बन्धन (ॐ मणिधारिणी इत्यादि) कर वस्त्राञ्चल में गाँठ बाँधकर मातृका-न्यास, भूत-शुद्धि आदि कर गुर्वादिक पीठ-पूजा करे। शय्या-तल पर 'ॐ ऐं फट्' से पूर्व-लिखित मन्त्र पर मानसिक पाद्यादि से पूजन कर 'ॐ बटुकेभ्यो नमः' से बटुक-पूजन करे। तब पुष्पादि से शक्ति और देवी की पूजा कर तीर्थ, शुद्धि आदि निवेदित कर स्वयं ग्रहण करे। फिर जप, रहस्यादि कर्म कर शक्ति के सहित यथा-शक्ति जप कर जप-फल को समर्पित करे। इसी प्रकार पक्ष की समाप्ति तक प्रति-दिन करे। अन्त में महती पूजा कर कुमारियों को भोजन कराए और होम, तर्पण, अभिषेक आदि क्रमशः कर कम-से-कम दो वीराचारी ब्राह्मणों को भोजन कराए।

अन्त में निम्न **दक्षिणा-वाक्य** पढ़कर **शय्या-साधन** की साङ्गता के लिए यथा-शक्ति दक्षिणा गुरुदेव को प्रदान करे–**तत् -सदद्येत्यादि अमुक-गोत्रः अमुक-नामोऽहं कृतैतत् शय्या-साधन-कर्म-साङ्गतार्थं दक्षिणामिदं काञ्चन-मूल्यं रजत-खण्डं अमुक-गोत्राय श्रीअमुक-गुरवेऽहं सम्प्रददे ।**

टिप्पणी : शय्या-साधना से ही वीरार्दनादि दिव्यास्त्रों द्वारा **आत्म-रक्षा** का क्रम प्रारम्भ होता है । स्त्री-साधिका को पुरुष को साधना का माध्यम बनाना चाहिए । जो साधक नित्य शय्या में **प्रातः-कृत्यादि चौर-गणेश-जपादि** करते हैं, उन्हें **शय्या-शोधन** नित्य करना चाहिए । विस्तार-पूर्वक जो **शैय्या-साधन** कर लेते हैं, उन्हें **संक्षिप्त शय्या-शुद्धि** करने की आवश्यकता नहीं है ।

३. शय्या-शुद्धि की संक्षिप्त विधि

'ॐ आः सुरेखे वज्र-रेखे हुं फट् स्वाहा'–इस मन्त्र से शय्या पर **अधोमुख त्रिकोण** लिखकर उसमें मानसिक उपचारों से **'ॐ ह्रीं' आधार-शक्तये नमः'** से पूजन करे । फिर बाँएँ हाथ से **शय्या पर तीन बार आघात** करते हुए कहे–**'ॐ हूं मृतकाय नमः फट् स्वाहा ।'**

इसके बाद **छोटिका-मुद्रा** से **दश-दिग्-बन्धन** कर शय्या को हाथ जोड़कर निम्न **'प्रार्थना'** करे–**ॐ शय्ये! त्वं मृत-रूपाऽसि साधनीयाऽसि साधकैः, अतोऽत्र जप्यते मन्त्रो ह्यस्माकं सिद्धिदा भव ।**

तदनन्तर **जपादि कर्म** सम्पन्न करे ।

४. गुरु-पादुका-मन्त्र का पुरश्चरण

'कुलाचार-तन्त्र' में घोषित है कि **गुरु-पादुका** को सिद्ध किए बिना सिद्धि नहीं मिलती । **'सहस्त्रार-पद्म'** में **गुरु के पाद-पद्मों का ध्यान-पूजन** कर देव-भाव-सहित जप करने मात्र से साधक **सिद्धेश्वर हो सकता** है । इसके पुरश्चरण में **बारह लाख जप** और दशांश-क्रम से होमादि कर कौलों को तृप्त करना होता है । 'कुल-प्रकाश तन्त्र' में लिखा है कि गुरु-देव को मूर्ध्नि में रखकर एक बार भी पूजन करने से शीघ्र सिद्धि मिलती है । प्रति-दिन अयुत या शत जप करे, जब तक कि **एक लाख** जप न हो जाए । तब दशांश-क्रम को पूर्ण करे । **'पुरश्चरण'** की पूर्ण विधि निम्न प्रकार है–

पहले **'पुरश्चरण'** आरम्भ करने के लिए निम्न मन्त्र से भूमि का परिग्रह करे–**'श्रीगुरु-देवस्य अमुक-मन्त्रस्य सिद्धये मयेयं गृह्यते भूमिर्मन्त्रोऽयं सिद्ध्यताम् ।'** इस प्रकार आहार-विहार हेतु मानसिक रूप से यथोचित सीमित भूमि की भावना कर साधक ब्राह्मणों के साथ **स्वस्ति-वाचन** करे–

'ॐ ह्रीं कर्तव्येऽस्मिन् अमुक-गोत्रस्यामुकस्य सद्यः कर्तव्य-श्रीगुरु-पादुका-पुरश्चरण-कर्मणि पुण्याहं भवन्तोऽधिब्रुवन्तु ।'

साधक ब्राह्मण कहें–**'ह्रीं पुण्याहं, ह्रीं पुण्याहं, ह्रीं पुण्याहं ।'**

अब **नाराच-मुद्रा** से तीन तण्डुलों को पूजा-गृह में फेंककर **विघ्न-निवारण** करे । फिर पुनः निम्न प्रकार **स्वस्ति-वाचन** दोनों पक्षों (पुरश्चरण-कर्ता और साधक-वर्ग) द्वारा किया जाय–

१–'ह्रीं कर्तव्येऽस्मिन् अमुक-गोत्रास्यामुकस्य सद्यः कर्तव्य-श्रीगुरुपादुका-पुरश्चरण-कर्मणि ऋद्धिं ब्रुवन्तु ।' 'ह्रीं ऋद्ध्यताम् , ह्रीं ऋद्ध्यताम्, ह्रीं ऋद्ध्यताम् ।'

२–'ह्रीं कर्तव्येऽस्मिन् अमुक-गोत्रस्यामुकस्य सद्यः कर्तव्य-श्रीगुरु-पादुका-पुरश्चरण-कर्मणि स्वस्ति भवन्तोऽधि-ब्रुवन्तु ।' 'ह्रीं स्वस्ति, ह्रीं स्वस्ति, ह्रीं स्वस्ति।'

३-'ह्रीं स्वस्ति न इन्द्रो वृद्धश्रवाः स्वस्ति नः पूषाः विश्व-वेदा स्वस्ति नस्ताक्ष्र्योऽरिष्ट-नेमिः । स्वस्ति नो वृहस्पतिर्दधातु । ॐ ह्रीं स्वस्ति नः कात्यायनी अपर्णश्रवाः स्वस्ति नः काली ह्रैं मेधामृत-मयी ह्रैं स्वस्ति नः प्रत्यङ्गिरा देवता दधातु श्रीं ह्रीं हूं फट् स्वाहा ।' 'ह्रीं स्वस्ति, ह्रीं स्वस्ति, ह्रीं स्वस्ति ।'

तदनन्तर पुनः साधक ब्राह्मणों के साथ नाराच मुद्रा से तीन तण्डुलों को 'पूजा-गृह' में फेंके । फिर ताम्रादि विहित पात्र में फल, तिल, तुलसी, पुष्पाक्षत, कुशाग्रादि जो सुलभ हों, उन्हें जल-सहित दोनों हाथों में लेकर सङ्कल्प पढ़े-ॐ तत्सदद्य अमुके मासि अमुक-राशिस्थ-भास्करे अमुक-पक्षे अमुक-तिथावारभ्य अमुक-गोत्रः अमुक-नामोऽहं श्रीगुरु-पादुका-मन्त्र-सिद्धि-कामः वस्त्राद्यलङ्कारा‌द्युपचारैः सशक्तिक-गुरु-श्रीअमुकानन्दनाथ श्रीअमुकी-देव्यम्बयोः यथा-शक्ति पूजा-पूर्वकं अमुक-पादुका-मन्त्रस्य लक्ष-जपः तथा शत-दिवस-यावत् प्रत्यहं सहस्त्र-संख्यक-जपस्तत् करणक दशांश-होम, तद्दशांश तर्पण, तद्दशांशाभिषेक, तद्दशांश साधक-सम्भोजन-रूप पुरश्चरण-कर्म करिष्ये ।

एकाक्षरादि मन्त्र के सम्बन्ध में 'दशाह यावत् प्रत्यहममुक-मन्त्रं अयुत-संख्यक-जप०' इत्यादि कहना चाहिए । फिर सङ्कल्प-सूक्त का पाठ करे । यथा-

ह्रीं यज्जाग्रतो दूरमुदैति देवं तनु सप्तस्य तथैवेति । दूरङ्गमं ज्योतिषं तन्मे मनः शिव-सङ्कल्पमस्तु ।। ह्रीं देवो यो द्रविणोदाः पूर्णा विवष्ट्वासिचम् । उद्वा सिञ्चध्वमुप वा पुणद्धमाद् विदो देव ओहते ।। ह्रीं इन्द्राद्या नो विरेनी पृष्ठामकं तु सता शिवैः । सिञ्चद्धमदधत कल्प कृष्णायुर्देवतु ओहते ।। ॐ सङ्कल्पितार्थाः सिद्धाः सन्तु । ॐ अयमारभ्य शुभाय भवतु ।

पुरश्चरण के पूर्ण हो जाने पर गुरु-दक्षिणा निम्न सङ्कल्प-वाक्य के अनुसार प्रदान करे-

ॐ तत्सदद्येत्यादि अमुक-मन्त्रस्य सिद्धि-कामनया कृतैतत् गुरु-पुरश्चरण-कर्मणि साङ्गतार्थं काञ्चनं (काञ्चन-मूल्यं वा) अमुक-गोत्राय श्रीअमुक-गुरवेऽहं सम्प्रददे ।

अन्त में गुरुदेव को साष्टाङ्ग प्रणाम कर प्रार्थना करे-'ॐ कृतैतत् पादुका-पुरश्चरण-कर्माच्छिद्रमस्तु ।'

गुरुदेव आशीर्वाद देते हुए कहें-'ॐ देव-गुरु-प्रसादादच्छिद्रमस्तु ।'

५. बिल्व-मूल-साधना

शैय्या-साधना, गुरु-पादुका-पुरश्चरण के बाद 'बिल्व-मूल-साधना' करना उचित है । 'भाव-चूड़ामणि' में लिखा है कि 'बिल्व-साधना' किए बिना अन्य साधना नहीं करनी चाहिए । इस साधना के लिए साधक को बलवान, गुरु-भक्त, साहसी और निर्मल अन्तःकरणवाला होना चाहिए । गुरुदेव से अनुमति लेकर ही उसे इस साधना को करना चाहिए । साधना के पूर्व पूरी पद्धति को कण्ठस्थ कर ले ।

'बिल्व-साधना' के लिए भौम (मङ्गलवार), अमावास्या, चतुर्दशी, अष्टमी, पूर्णिमा या संक्रान्ति का दिन प्रशस्त है । रात्रि के प्रथम याम में बिल्व-मूल के पास जाकर उसकी त्रिकोण-प्रदक्षिणा कर निम्न मन्त्र से प्रणाम करे-

ॐ श्मशान-वासिनो ये ये, देवा दिव्याश्च भैरवाः । दयां कुर्वन्तु ते सर्वे, सिद्धिदाश्च भवन्तु मे ।।

फिर निम्न स्तोत्र का पाठ करे-

ॐ श्रीशैलोद्‌भवे देवि!, शङ्कर-प्राण-वल्लभे ! प्रणमामि सदा भक्त्या, सिद्धिदे साधकस्य च ।।

सर्वाधार-मयि देवि! मन्त्र-सिद्धिं प्रयच्छ मे । सर्व-देवालये देवि! सर्व-तीर्थ-मयि शुभे !
मन्त्र-सिद्धि-प्रदे देवि! नित्यं मे वरदा भव ।।

तदनन्तर पूर्व या उत्तर की ओर मुख कर बैठे और विधि-पूर्वक आचमन कर नित्य-पूजा-पद्धति के अनुसार आसन-शुद्धि आदि कर 'ॐ आधार-शक्तये कमलासनाय नमः' से मण्डल-पूजा कर आसन के नीचे 'ह्सौः' लिखकर 'ह्सौः सदा-शिव-महा-प्रेत-पद्मासनाय नमः' से आसन-पूजा कर बाँएँ कान के ऊपर पादुका-मन्त्र का उच्चारण कर कहे : 'सशक्तिक-गुरु श्रीअमुकानन्दनाथ अमुकी-देव्यम्बा-श्रीपादुकाभ्यां नमः ।' इसी प्रकार परम-गुरु, परापर-गुरु परमेष्ठि-गुरु की पादुकाओं को प्रणाम कर दाएँ कान के ऊपर 'गं गणेशाय नमः' से और मध्य में (भौंहों के ऊपर) 'श्मशान-वासिन्यै नमः' से प्रणाम करे ।

फिर सामान्यार्घ्य स्थापित कर मातृका-न्यास, भूत-शुद्धि आदि कर अपने को देवता-मय अनुभव करे । तब बिल्व-मूल पर या पश्चिम दिशा में 'क्षेत्रपाल' का पूजन करे । इसके लिए पहले 'क्षां क्षीं क्षूं क्षैं क्षौं क्षः' से कराङ्ग-न्यासों को कर ध्यान करे–

ॐ नीलाञ्जनाद्रि-निभमूर्ध्व-पिशङ्ग-केशं, वृत्तोग्र-लोचनमुपात्त-गदा-कपालम् ।
आशान् वरं भुजगेन्द्र - भूषणमुग्र - दंष्ट्रं, क्षेत्रेशमद्भुत - तनुं प्रणमामि देवम् ।।

तब 'क्षौं क्षेत्रपालाय नमः एते गन्ध-पुष्पाणि क्षेत्रपालाय नमः' इत्यादि से पूजन कर आवरण देवताओं की पूजा करे । यथा–

ॐ ह्रीं एते गन्ध-पुष्पाणि अनवाय नमः । ॐ ह्रीं एते गन्ध-पुष्पाणि अग्नि-केशाय नमः । ॐ ह्रीं एते गन्ध-पुष्पाणि करालाय नमः । ॐ ह्रीं एते गन्ध-पुष्पाणि घण्टा-रवाय नमः । ॐ ह्रीं एते गन्ध-पुष्पाणि महा-कोपाय नमः । ॐ ह्रीं एते गन्ध-पुष्पाणि पिशिताशाय नमः । ॐ ह्रीं एते गन्ध-पुष्पाणि पिङ्गलाय नमः । ॐ ह्रीं एते गन्ध-पुष्पाणि ऊर्ध्व-केशाय नमः । ॐ ह्रीं एते गन्ध-पुष्पाणि आवरण-देवताभ्यो नमः ।

फिर निम्न मन्त्र से 'क्षेत्रपाल' को माष-भक्त बलि प्रदान करे–एहि एहि बलिं विदुषि कुरु कुरु भञ्जय भञ्जय नर्तय नर्तय, विघ्नान् निवारय महा-भैरव-क्षेत्रपाल बलिं गृह्ण गृह्ण स्वाहा । क्षां एष माषभक्त-बलिः क्षेत्रपालाय नमः ।

बलि दे चुकने पर हाथ जोड़कर 'क्षेत्रपाल' से प्रार्थना करे–

ॐ क्षेत्रपाल, महा-भाग, श्मशानाधिप, सु-व्रत! सिद्धिं देहि जगत्-कर्त्ता-स्थानं देहि नमोऽस्तु ते ।।

इसके बाद स्थान का मार्जन कर 'बिल्व-मूल' का पूजन गन्ध-पुष्प से करे । फिर ताम्र-पात्र में या बिल्व-पत्र पर 'ऐं ह्सौं ऐं मूलं' लिखकर उसके मूल में 'ऐं ह्सौं ऐं मूलं' लिखे । तब सहस्त्रार में गुरु का ध्यान और मानस पूजन कर न्यासादि करे और 'रं' का उच्चारण करते हुए चारों दिशाओं में जल-धार छोड़कर वह्नि-प्राकार का चिन्तन करे । फिर हृदय में इष्ट-देवता का ध्यान करे ।

तदनन्तर पूर्वादि दिशाओं में निम्न मन्त्रों से पञ्चोपचार या गन्ध-पुष्प से पूजा कर बलि प्रदान करे । यथा–

पूर्व में–एष स-तीर्थ-सामिषान्न-बलिः ॐ काल्यै नमः । आग्नेय में-एष स-तीर्थ-सामिषान्न-

बलिः ॐ कपालिन्यै नमः । दक्षिण में–एष स-तीर्थ-सामिषान्न-बलिः ॐ कुल्लायै नमः । नैऋत्य में–एष स-तीर्थ-सामिषान्न-बलिः ॐ कुरुकुल्लायै नमः । पश्चिम में–एष स-तीर्थ-सामिषान्न-बलिः ॐ विरोधिन्यै नमः । वायव्य में–एष स-तीर्थ-सामिषान्न-बलिः ॐ विप्र-चित्तायै नमः । उत्तर में–एष स-तीर्थ-सामिषान्न-बलिः ॐ नीलायै नमः । ईशान में–एष स-तीर्थ-सामिषान्न-बलिः ॐ वलाकायै नमः। सम्भव हो, तो यहाँ इसी प्रकार पञ्च-दश योगिनियों की पूजा करे ।

अब पुनः पूर्वोक्त प्रकार से स्वस्ति-वाचन कर सङ्कल्प करे । यथा–

ॐ तत्सदद्येत्यादि अमुक-देवतायाः बिल्व-मूल-साधन-पूर्वक मन्त्र-सिद्धि-कामो विल्व-मूले अमुक-देवतायाः अमुक-मन्त्रस्य अष्टाधिकायुत-संख्यक-जपमहं करिष्ये ।

तब पूर्वोक्त सङ्कल्प-सूक्त का पाठ कर पीठ-न्यास, प्राणायाम, ऋष्यादि-न्यास, कराङ्ग-न्यास, व्यापक-न्यासादि कर अपनी पद्धति के अनुसार पूजन करे । नित्यार्चन-पद्धति के अनुसार इष्ट-देवी को बलि भी प्रदान करे । फिर इष्ट-देवता का ध्यान कर विहित माला में इष्ट-मन्त्र का अष्टोत्तरायुत जप करे । जप-संख्या पूरी हो चुकने पर कुल्लुका, महा-सेतु, सेतु, अशौच-भङ्ग आदि जप कर कामिनी-गर्भ में जप करे । अन्त में 'गुह्यादि०' मन्त्र से देवी के बाँएँ हाथ में जप समर्पित करे ।

६. श्मशान में जप की विधि

१. कुज (मङ्गल) या शनिवार के दिन श्मशान में जाकर विधि-वत् बैठकर 'ॐ हूं ह्रीं क्लीं श्मशान-कालिके ॐ हूं ह्रीं क्लीं ॐ' का १०८ बार जप करे । फिर रहस्यादि पूजा कर अपने कल्प के मन्त्र का जप करे ।

२. अनिरुद्ध-सरस्वती का १० बार जप कर शिव-रूपी गुरु का ध्यान कर जपादि करे ।

३. 'पुरश्चरण-रसोल्लास' के अनुसार 'हेलकी मन्त्र'–'ॐ ह्रीं स्फुर स्फुर चट चट बन्ध बन्ध हूं फट्' का दस बार जप कर कर्म करे ।

४. 'पुरश्चर्यार्णव' में लिखा है कि हाथ जोड़कर पहले 'प्रार्थना' करे–

अत्र श्मशाने या काश्चिद्, देवता निवसन्ति हि । ताः प्रयच्छन्तु मे सिद्धिं, प्रसन्ना सन्तु पान्तु मे ।।

फिर निम्न 'कवच-स्तोत्र' का पाठ करे–

पूर्वे मां शङ्करः पातु, तथाग्नेयां च शूल-धृक् । कपाली दक्षिणे पातु, नैऋत्यां जटिलोऽवतु ।।
पश्चिमे पार्वती-भर्त्ता, वायव्यां प्रमथाधिपः । उत्तरे मुण्ड-मालाढ्य, ईशाने वृषभध्वजः ।।
ऊर्ध्वं पातु तथा शम्भुरधस्तो धूलि-धूसरः । अग्रतो भैरवः पातु, वामे तु पिशिताशनः ।।
केशान् पातु विशालाक्षो, मूर्धानं च मरुत्-प्रियः । मस्तकं पातु भृग्वीशो, नेत्रे पातु महा-मनाः ।।
कपोलौ पातु बीरशो, गण्डौ गण्डादि-मर्दनः । उत्तरोष्ठे विरुपाक्षस्त्वधरे योगिनी-प्रियः ।।
दन्तेषु दक्ष-विध्वंसी, चिबुके नृ-कपाल-धृक् । कण्ठे रक्षतु मां देवो, नील-कण्ठो जगद्-गुरुः ।।
दक्ष-स्कन्धे गिरीन्द्रीशो, वाम-स्कन्धे च सुन्दरः । भुजे च दक्षिणे शर्व-मन्त्र-नाथ सदाऽवतु ।।
वामे भुजे सार्वं-भौमो, हृदये च पाण्डुरः । दक्ष-स्तनं पशु-पतिर्वामं पातु महेश्वरः ।।
उत्तरे सर्व-कल्याण-कारकोऽवतु मां सदा । नाभौ काम-प्रतिध्वंसी, जङ्घे पातु दया-मयः ।।

जानुनी पात्वजा-मित्रो, गुल्फौ गौरि-पतिः सदा । पाद-पृष्ठं ज्ञान-निधिस्तथा पादांगुलीर्हरः ।।
पादाधः पातु सततं, व्योम-केशो जगत्-प्रियः ।।

'कवच पाठ' के बाद दस मन्त्रों से दसो दिशाओं को रक्षित करे । यथा–

१. 'ॐ ह्रां हुं हुं हुं'–पूर्वे । २. 'ॐ ह्रीं हुं ह्रीं'–आग्नेये । ३. 'ॐ ह्रीं श्रीं–दक्षिणे । ४. 'ॐ ग्लुं ग्लुं'–नैऋत्ये । ५. 'ॐ प्लुं म्लुं य्लुं'–पश्चिमे । ६. 'ॐ प्रों प्रुं'–वायव्ये । ७. 'ॐ भ्रां भैरव'–उत्तरे । ८. 'ॐ ब्लुं प्लुं भ्रुं फट्'–ईशाने । ९. 'ॐ ग्लौं व्लुं'–ऊर्ध्वे । १०. 'स्त्रां स्त्रुं स्त्रं'–अधः ।

इसके बाद अन्य क्रियाएँ करे ।

७. शिवा-बलि का विधान

किसी भी पुरश्चरण या अनुष्ठान के पूर्व 'शिवा-बलि' देना आवश्यक है । 'पञ्च-बलि' देने के बाद इस बलि को देना चाहिए । इसकी संक्षिप्त विधि यह है कि 'त्रिकोण-वृत्त-चतुरस्त्र' का मण्डल बनाकर उसका प्रोक्षण करे । फिर उस पर बलि-सहित पात्र स्थापित कर निम्न मन्त्र से आवाहन करे–

'ॐ ह्रीं एह्येहि जगतां मातः गृह्ण गृह्ण इमां सामिषान्न-बलिं मम सिद्धिं देहि देहि शत्रु-क्षयं कुरु कुरु हूं हूं ह्रीं ह्रीं स्वाहा ।'

फिर बाँएँ हाथ से बलि-पात्र को छूकर तीन बार निम्न मन्त्रों से गन्ध-पुष्प से उसका पूजन करे–

'एतस्मै सामिषान्न-बलये नमः ॐ ।

ॐ ह्रीं एते गन्ध-पुष्पे एतदधिपयते श्रीविष्णवे नमः । ॐ एते गन्ध-पुष्पे एतत्-सम्प्रदान-शिवा-गणेभ्यो नमः । ह्रीं इमं सामिषान्न-बलिं शिवा-गणेभ्यो नमः ।

तब निम्न प्रकार हाथ जोड़कर 'प्रार्थना' करे–

पूर्णोदरि, महा-माये, मद्य-मांस-बलि-प्रिये! कुलाचार-प्रसन्नास्ये! नमस्ते! नमस्ते शङ्कर-प्रिये !
कालि, कालीति वक्तव्यं, तत्रोमा शिव-रूपिणी । शुभाशुभ-फलं व्यक्तं, ब्रूहि गृह्ण बलिं तथा ।।
ॐ शिवा कङ्काला वेताला, जृम्भगा पूतनादयः । पशु-रूप-धरा-याति, परिवार-गणैः सह ।।

अब निम्न मन्त्र का १०८ बार या शिवाओं के आने तक जप करे–

श्रीं क्लीं त्रिपुरे देवि शिवानाकर्षयाकर्षयाकर्षय स्वाहा ।'

तब 'बलि-पात्र' को देखते हुए मूल-मन्त्र का यथा-शक्ति 'जप' कर प्रणाम-पूर्वक 'शान्ति-स्तोत्र' पढ़े । यथा–

ॐ पाहि त्वं करुणा-मयि प्रियतमं सत्साधकं रक्षतु । भ्रष्टान्नाशय नाशय प्रियतमा वक्त्रारविन्दं मया।।
नित्यं देहि साधु सुधा-त्रय-मयीं सिद्धिं शिवे सिद्धिदे! ज्ञानं मोक्ष-विधायकं, कुरु शिवे संहारिणीं पातु मां ।।

'शिवा-बलि' को कामनानुसार देने के मन्त्र निम्न प्रकार हैं–

१. वशीकरण–ॐ घोरे घोर-दर्शने शिवे बलिं गृह्ण गृह्ण अमुकं मे वशमानय स्वाहा ।

२. रोग-मुक्ति–ॐ घोरे घोर-दर्शने शिवे बलिं गृह्ण गृह्ण अमुकं रोग-विमुक्तं कुरु ते नमो नमः ।

३. उच्चाटन–ॐ घोरे घोर-दर्शने शिवे बलिं गृह्ण गृह्ण अमुकं उच्चाटय उच्चाटय ठः ठः ठः ।

४. विद्वेषण–ॐ घोरे घोर-दर्शने शिवे बलिं गृह्ण गृह्ण अमुकाऽमुकयोः विद्वेषय विद्वेषय फट् ।

५. शान्ति–ॐ घोरे घोर-दर्शने शिवे बलिं गृह्ण गृह्ण अमुकस्य शान्तिं कुरु कुरु स्वाहा ।
६. कार्य-सिद्धि–ॐ घोरे घोर-दर्शने शिवे बलिं गृह्ण गृह्ण अमुक-कार्यं कुरु कुरु स्वाहा ।
७. शत्रु-हनन–ॐ घोरे घोर-दर्शने शिवे बलिं गृह्ण गृह्ण अमुक-शत्रून् हन हन हुं हुं हुं स्वाहा ।
८. सिद्धि-दर्शन–ॐ घोरे घोर-दर्शने शिवे बलिं गृह्ण गृह्ण अमुक-सिद्धिं स्वाहा ।

मांस और मधु सहित उक्त '**शिवा-बलि**' को देने से एक रात्रि के प्रयोग से ही शीघ्र कार्य-सिद्धि होती है ।

८. उग्र वीर-साधना के कुछ सङ्केत

उग्र **वीर-साधना** के अनुभवी प्रायः दुर्लभ हैं । फिर भी जिज्ञासुओं के लिए कुछ सङ्केत यहाँ दिए जा रहे हैं । उल्लेखनीय है कि अनुभवी गुरु के मिलने पर ही उसी के निर्देशन में इस साधना में प्रवृत्त होना चाहिए । पुस्तक में दिए निर्देशों के सहारे इस साधना को कदापि न करे, अन्यथा सङ्कट में पड़ सकते हैं ।

१. अधिकारी कौन : वीर-साधना का अधिकारी वही साधक है, जो **पुरश्चरणों द्वारा अनुभव प्राप्त** कर चुका हो और **पुत्र, दारा, धनादि के लोभ-मोह से मुक्त** हो । साथ ही जिसके मन में यह सङ्कल्प दृढ़ हो चुका हो कि–'**मन्त्रं वा साधयिष्यामि देहं वा पातयाम्यहम्**' अर्थात् मन्त्र को सिद्ध करने में प्राण भी चले जाने का सङ्कट हो, तो भी निश्चय से डिगे नहीं ।

२. वीर-वेश : 'वीर-तन्त्र' के अनुसार कौपीन या तदनुरूप वस्त्र **मूल-मन्त्र का जप** करते हुए धारण करे । उसके बाहर अन्य वस्त्र रहे । **मूल-मन्त्र** से शरीर के अङ्गों पर चन्दन, भस्म आदि का लेपन करे और सिन्दूर से ऊर्ध्व-पुण्ड्र धारण करे । उष्णीष (पगड़ी या टोपी) पहने तथा **गुरु या इष्ट-देव का स्मरण** कर मध्य निशा में साधना हेतु तत्पर हो । 'विशुद्धेश्वर तन्त्र' में निर्देश है कि **स्त्री-वेश** धारण कर मस्तक को सिन्दूर से अङ्कित करे । शृङ्गार से उज्ज्वल वेश हो और मुख ताम्बूल-पूरित हो । 'प्रपञ्चसार' तन्त्र के अनुसार **स्वर्ण-माला** धारण किए साधक **रक्त-चन्दन-चर्चित** एवं **सिन्दूर-लिप्त** हो **धूप, अगरु** आदि विविध सुगन्धियों से युक्त हो ।

३. वीर-सामग्री : वीर-साधन में प्रयुक्त हानेवाले **पञ्च-गव्य, पञ्चामृत, अष्ट-गन्ध, रहस्य-माला** आदि को जानना और विधि-वत् संग्रह करना आवश्यक है । इनका स्पष्टीकरण अनुभवी साधक ही कर सकते हैं । तन्त्रशास्त्र के वचनों के आधार पर इनका संक्षिप्त परिचय निम्न प्रकार है–

(१) पञ्च-गव्य : 'वीर-चूड़ामणि'–

उच्छिष्टं कुसुमं चैव, वमनं शव-कर्पटं, शुक्लं पुष्पं महा-देवि! पञ्च-गव्यमितीरितम् ।।

'वीर-तन्त्र'–

आसवं संविदा-तोयं, समुज्ज्वल-समुद्भवं । शुक्लपुष्पमिमं देवि! पञ्च-गव्यमुदाहृतम् ।।

'भाव-सर्वस्व'–

संविद् गङ्गेतर-जलं, रेत-रक्तं वर-स्त्रियाः, मद्यं च परमेशानि! पञ्च-गव्यानि कौलिकम्।।

(२) पञ्चामृत : आसवं मधुकं मांसं, योनि-तोयं च शोणितम् ।
पञ्चामृतमिदं देवि! देवानामपि दुर्लभम् ।।

(३) गन्धाष्टक : वज्र-कुण्डं गोलकं च, गोपी-चन्दन रोचना ।
सर्व-मद्यं स्वयम्भू च, कौला गन्धाष्टकं विदुः ।।

वीर-सामग्री के शोधन-मन्त्र यथा–कुण्ड-शोधन-मन्त्र : **ऐं क्लीं स्वाहा** । गोल-पुष्प : **ह्री ह्रीं ह्रीं** । सर्व-कालोद्भव : **क्लीं क्लीं ह्रीं ह्रीं** । गोपीचन्दन : **स्त्रीं स्त्रीं क्लीं क्लीं** । पीठ-क्षालन : **श्रीं स्त्रीं हूँ फट्** । शुक्र : **हूँ फट् स्वाहा नमः ('ह्रीं वौषट्' वा)** अजरामर : **हुं फट् स्वाहा** ।

(४) महा-शङ्ख-माला : इसी को **'रहस्य-माला'** कहते हैं । मातृका-भेद तन्त्र' में लिखा है कि इस माला में विशेषतया तारा का और सामान्यतः सभी विद्याओं का जप करने से शीघ्र सिद्धि प्राप्त होती है । 'वीर-तन्त्र' में यह माला काली और तारा के मन्त्र-जप के लिए प्रशस्त बताई गई है । 'गन्धर्व तन्त्र' के अनुसार केवल **वीर-साधक** ही इस माला पर जप कर सकते हैं । अन्य साधकों के लिए यह शुभ नहीं है । 'समयाचार तन्त्र' में लिखा है कि **वर्ण-माला में शत बार जप** का जो फल होता है, वह, **'अस्थि-माला'** में एक बार के ही जप से प्राप्त होता है । 'गुप्त-साधन तन्त्र' के अनुसार अस्थि-मध्य में अकार तक की सभी मातृकाएँ विद्यमान रहती हैं । अतः कण्ठ (गले) और हाथ में उसे सदा धारण करे । इस माला में **'जप'** करनेवाले को आठों सिद्धियाँ हस्त-गत होती हैं और वह साक्षात् शिव-रूप होता है । उसके दर्शन मात्र से सभी तीर्थों का पुण्य मिल जाता है ।

'त्रिशक्ति तन्त्र' के अनुसार यह माला पचास मणियों की होती है । कान और नेत्र के बीच की अस्थि को **'महा-शङ्ख'** कहते हैं । उसके अभाव में अन्य किसी अवयव की अस्थि ग्राह्य है । इसे सर्वथा गुप्त रखे । 'यामल' में इसे बनाने के सम्बन्ध में यह निर्देश दिया है–**'नरेभाश्वोष्ट्र-मुण्डानां, छिन्नानां रण-सङ्कटे । माला वै कारयेद् वृत्ता, महा-विद्यासु साधकः** । 'समयाचार-तन्त्र' के अनुसार **अदग्ध नृ-शिर की अस्थि** से इस माला को प्रस्तुत करे । 'मेरु-तन्त्र' में उक्ति है–**'नरास्थ्याः राक्षसा वश्या, वीर-वश्या हयास्थिभिः ।'** 'प्राण-तोषिणी' में बताया है कि **वज्राहत, सर्प-दंष्ट्र से पतित, जल में डूबकर मृत, व्याघ्रादि पशु द्वारा निहत, सङ्घर्ष या युद्ध में मृत, चाण्डालादि शूद्र जाति की अस्थि** ग्राह्य है । 'स्वतन्त्र तन्त्र' के अनुसार **छिन्न-शीर्ष** को लाकर इस प्रकार छिपाकर रखे कि **तुलसी, गोबर, गङ्गा-जल, शालग्राम** आदि से उसका स्पर्श न होने पाए । 'शक्ति-सङ्गम तन्त्र' में लिखा है कि **१. स्वेच्छा-मृत, २. द्वि-वर्षीय, ३. वृद्ध, ४. स्त्री, ५. द्विज, ६. अन्नाभाव से मृत, ७. कुष्ठी** और **८. सप्त-रात्रोर्ध्व-मृत**–ये आठ शव **वीर-साधना** में त्याज्य हैं । 'योगिनी तन्त्र' के अनुसार अदुर्भिक्ष और **अव्याधित शव** की अस्थि-माला ही शुभ होती है । 'शक्ति-सङ्गम तन्त्र' में लिखा है कि **कर्ण-नेत्रान्तरस्थ महा-शङ्ख की माला** उत्तम होती है । अन्य अंगों की **अस्थि-माला** मध्यम कोटि की होती है ।

राज-दन्त : सामने के दो दाँत **'राज-दन्त'** कहे गए हैं । इन्हीं से **महा-शङ्ख-माला** का 'मेरु' बनाना चाहिए ।

(५) दन्त-माला : 'काली तन्त्र' के अनुसार **दाँतों से बनी माला** का मेरु **'राज-दन्त'** होना चाहिए । ऐसी **'दन्त-माला'** सर्व-सिद्धि-प्रद होती है । 'योगिनी-तन्त्र' के अनुसार यह माला दन्त-संख्यक अर्थात् ३२ मणियों की होनी चाहिए ।

(६) महा-शङ्ख-माला और दन्त माला का शोधन :

मूलं ॐ ॐ ह्रां ह्रीं श्रीं श्रां क्लीं क्लां माला-रूपिणि सर्व-लोक-भक्षिणि हुं महा-शङ्ख-मालां (नर-दन्त-मालां वा) शोधय शोधय फट् ठः ठः ठः स्वाहा ।

उक्त मन्त्र का १०८ बार जपकर **विशिष्ट पञ्च-गव्य से शोधन** करे ।

(७) कङ्कण-शोधन :

ॐ मूलं ह्रीं स्त्रीं हूं श्रीं क्लीं केशिनि निराकेशिनि कङ्कणं शोधय शोधय हूं क्रों फट् ठः ठः स्वाहा। उक्त मन्त्र का १०८ बार जप कर मृग-नाभि आदि अष्ट-गन्ध का लेप करे।

(८) यन्त्र-शोधन :

मूलं ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं देवि यन्त्रेश्वरि क्लीं श्रीं ॐ ह्रीं यन्त्रं शोधय शोधय ह्ः श्रः क्लः ठः ठः स्वाहा।

उक्त मन्त्र का १०८ बार जप करे।

(९) महा-शङ्ख-पात्र का पूजन :

'**हुं फट्**' से नृ-कपाल को प्रक्षालित कर '**ह्रीं फट्**' से आधार पर रखे। फिर चार मन्त्रों से उसका पूजन करे-**१. ह्रां ह्रीं ह्रूं काली-कपालाय नमः। २. स्त्रां स्त्रीं स्त्रूं तारिणी-कपालाय नमः। ३. ह्रां ह्रीं ह्रूं नीला-कपालाय नमः। ४. ह्रीं स्त्रीं हूं स्वर्ग-कपालाय सर्वाधाराय सर्वाय सर्वोद्भवाय सर्व-शुद्धि-मयाय सर्वासुर-रुधिरारुणाय शुभ्राय सुरा-भाजनाय देवी-कपालाय नमः।**

(१०) महा-शङ्ख-माला-संस्कार : नित्य-क्रिया कर साधक रहस्य-माला को सात बार '**ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं हूं फट् स्वाहा**' से अभिमन्त्रित कर उसे चषक-पात्रादि में रखे। फिर आवाहन-मुद्रा से देवी का उसमें आवाहन कर सपरिवार उसका यथा-शक्ति उपचारों से या केवल गन्ध-पुष्प से पूजन कर '**रं**' से धेनु-मुद्रा द्वारा उसका अमृतीकरण, '**फट्**' से अवगुण्ठन, '**मत्स्य-मुद्रा**' से आच्छादन कर उस माला को देवी-रूपा ध्यान करते हुए उस पर निम्न सात मन्त्रों से सुधा-विन्दु छोड़े-**१. ॐ ह्रीं स्वाहा, २. ॐ श्रीं स्वाहा, ३. ॐ हूं स्वाहा, ४. ॐ फट् स्वाहा, ५. ॐ ह्रीं श्रीं स्वाहा, ६. ॐ ह्रीं हूं स्वाहा, ७. ॐ ह्रीं फट् स्वाहा।**

तब कस्तूरी, धूप, अगुरु आदि से उसे धूपित कर उक्त चषकादि पात्र से माला को उठाकर उसे निम्न मन्त्र से अभिमन्त्रित करे-**ॐ ह्रीं श्रीं महा-वज्रिणि महा-घोर-रूपे कर्कश-महास्थि-मण्डले प्रविश सर्व-सिद्धिं प्रयच्छ ॐ हूं श्रीं ह्रीं स्वाहा। ॐ महा-कपालिनि महा-घोर-रूपे स्वाहा। ॐ ह्रीं श्रीं हूं फट् स्वाहा।**

फिर दूर्वाक्षत से उसका पूजन कर मातृका-मन्त्र से उसे सन्दीप्त कर '**हूं**'-कार से वेष्ठित करे। तब निम्न मन्त्र से उसे यथोक्त द्रव्यों की बलि दे-

ॐ हूं ह्रीं हूं ॐ हूं श्रीं हूं ॐ हूं हूं ॐ हूं फट् हूं ॐ हूं स्वाहा। ॐ हूं महा-योगिनि त्रिभुवन-तारिणि महा-शङ्खास्थि-माला-मध्ये निवासं कुरु सर्व-सिद्धिं देहि सुरा-मांसोपहारान् गृह्ण गृह्ण गृह्णापय गृह्णापय ह्रीं श्रीं हूं फट् स्वाहा।

अन्त में संहार-मुद्रा से देवी का विसर्जन कर बाद में साधारण माला-संस्कार-विधि द्वारा भी उसे संस्कृत करे।

९. माला-संस्कार की अन्य विधि

'महा-काल-संहिता', गुह्य-काली-खण्ड में माला-संस्कार की विधि निम्न प्रकार बताई है-

मृत्यु-काल-नवाक्षर्या, क्षालनं पञ्च-गव्यतः। अम्बा-हृदय-मन्त्रेण, चन्दनाद्यभिघर्षणम् ।।

धूप-दानं दीप-दानं, च षोडश-वर्ण-मालया। नैवेद्य-दानं, वाशिष्ठ्या, ब्राह्म्या प्राण-प्रतिष्ठितः ।।
रामाराधितया मेरु-मणि-स्पर्श उदाहृतः। शतं शताक्षरी-जापः, शतं षट्-त्रिंशदक्षरी ।।
विंशति योग-विद्या च, सहस्त्रार्ण दश स्मृतं। सहस्त्रं चापि गायत्रीरीतिरेष पृथक् स्थिता ।।

अर्थात् १. पञ्चगव्य-स्नान, २. चन्दनादि-लेपन, ३. धूप-दीप-नैवेद्य, ४. प्राण-प्रतिष्ठा, ५. मेरु एवं उसके बाद अन्य मणियों का स्पर्श–यह क्रम है । उल्लेखनीय है कि '**महा-शङ्ख**' **की माला हो, तो विशिष्ट** '**पञ्च-गव्य**' का ही उपयोग होगा ।

१०. मुण्डासन-विधि

'**मुण्डासन-साधना**' के पूर्व **वीर-साधन-सामग्री** से युक्त होकर '**शिवा-बलि**' देनी चाहिए । तदनन्तर **मङ्गलवार** या **शनिवार** के दिन निर्दिष्ट लक्षणों से युक्त **एक, पाँच** या **नौ मुण्ड** लाकर '**पञ्च-गव्य**' से सिञ्चित कर, **दुग्ध से स्नान** कराए । फिर संविज्जल से स्नान कराकर **सुरा से स्नान** कराए । तब **तैल-लेपन** कर **सिन्दूर, कज्जल** से शोभित कर **गन्ध-पुष्प से पूजन** करे । फिर आधा हाथ खोदकर नीचे भूमि में गाड़े । प्रत्येक मुण्ड के सम्बन्ध में यही विधि विहित है । संख्या के अनुसार '**एक-मुण्डी**', '**पञ्च-मुण्डी**' या '**नव-मुण्डी आसन**' कहलाता है । यह विशिष्ट आसन **एकान्त वन, श्मशान-भूमि, पञ्चवटी** या **उत्तम लक्षणवाले स्थान** में ही प्रस्तुत किया जाता है ।

सिद्ध महा-पुरुषों के अनुग्रह से ही ऐसे '**आसन**' पर बैठने का सौभाग्य **अधिकारी साधकों** को सुलभ होता है ।

११. वीर-साधना में उपयोगी रक्षा-मन्त्रादि

'शक्ति-सङ्गम तन्त्र' में लिखा है–

दुर्गा विघ्नं च शरभमघोरं च सुदर्शनं, एता समय-विद्यास्तु, जपेत् प्रत्यूह-शान्तये ।

'आदिनाथ-संहिता' में निर्देश है–

वीरार्गलाघोर-मन्त्रश्चक्र-पाशुपतास्त्रकैः, खड्ग-रावण-मन्त्रैश्च, जय-दुर्गाख्य ईर्यते ।

उक्त वचनों के अनुसार कुछ मन्त्रों को यहाँ उद्धृत किया जाता है–

१–शरभ

विनियोग–**अस्य शरभ-शालु-मन्त्रस्य कालाग्नि-रुद्र ऋषिः । जगती छन्दः। भगवान् शरभेश्वर देवता । खं बीजं । स्वाहा शक्तिः । अभीष्ट-प्रयोग-सिद्ध्यर्थे जपे (मार्जने) विनियोगः ।**

ऋष्यादि-न्यास–**ॐ कालाग्नि-रुद्र-ऋषये नमः शिरसि । जगती-छन्दसे नमः मुखे । शरभेश्वर-देवतायै नमः हृदि । खं-बीजाय नमः गुह्ये । स्वाहा-शक्तये नमः पादयोः । अभीष्ट-प्रयोग-सिद्ध्यर्थे जपे (मार्जने) विनियोगाय नमः सर्वाङ्गे ।**

षडङ्ग-न्यास–	कर-न्यास	अङ्ग-न्यास
ॐ खें खां खं फट्	**अंगुष्ठाभ्यां नमः**	**हृदयाय नमः**
प्राण गृह्णासि प्राण गृह्णासि	**तर्जनीभ्यां नमः**	**शिरसे स्वाहा**
हुं फट्	**मध्यमाभ्यां नमः**	**शिखायै वषट्**

सर्व-शत्रून् संहारणाय	अनामिकाभ्यां नमः	कवचाय हुम्
शरभाय शाल्वाय पक्षि-राजाय	कनिष्ठिकाभ्यां नमः	नेत्र-त्रयाय वौषट्
हुं फट् स्वाहा	करतल-कर-पृष्ठाभ्यां नमः	अस्त्राय फट्

ध्यान–

वन्देऽहं घोर - घोर - प्रबल - तर - महा-गण्ड-भेरुण्ड-सिंहम् ।
व्याघ्राश्व-क्रौड़े शाखा-मृग-खग-वनराट्-भल्लुकाद्यष्ट-वक्त्रम् ।।
द्वा-त्रिंशत्-कोटि-बाहु-ज्वल-मुशल-गदा-शङ्ख-चक्रादि-हेतुम् ।
विभ्राणां भीम-दंष्ट्रं शरभ-खल-गजान् भक्षयन्तं नृसिंहम् ।।

मन्त्र–ॐ खें खां खं फट् प्राण गृह्णासि प्राण गृह्णासि हुं फट् सर्व-शत्रून् संहारणाय शरभाय शाल्वाय पक्षि-राजाय हुं फट् स्वाहा (४२ अक्षर) ।

♦♦♦

शरभ-माला-मन्त्र (१)

ॐ अं आं ह्रीं क्रौं एहि एहि शरभ-शालु-पक्षिराजाय प्रस्फुर प्रस्फुर पक्षि-राजाय शत्रु-शोणितं पिव पिव, ॐ ऐं ग्लौं ग्लौं ग्लौं, ॐ ह्रीं ह्रीं ह्रीं, ऐं ग्लौं ग्लौं ग्लौं ग्लौं, आवेशय आवेशय, अत्रागच्छ अत्रागच्छ, स्थिरो भव, सर्वरोगान्नाशय नाशय, कृतिकान् वाहि वाहि, चक्रान् वादय वादय, ॐ यस्मारि क्रौं (अमुकस्य) सर्व-देहादि-रोगान् पर-कृत-मन्त्र-यन्त्र-तन्त्राणां सु-शीघ्रेण छेदय छेदय, खं खड्गेन छेदय छेदय, अं पाशेन बन्धय बन्धय, ह्रीं वं आरोग्यं कुरु कुरु, ॐ खें शत्रूणां रक्तं पिव पिव, ॐ आं ह्रीं क्रौं खें खां खं फट् प्राण गृह्णासि प्राण गृह्णासि हुं फट् सर्व-शत्रून् संहारणाय शरभ-शालु-पक्षि-राजाय हुं फट् स्वाहा ।

ॐ नमो भगवते अष्ट-पदाय सहस्त्र-बाहवे द्वि-शीर्षाय अग्नि-नेत्राय द्वि-पक्षाय रुद्र-रूपाय रौद्र-मृग-विहङ्गवे नृसिंह-वेश-संहारणाय उद्दण्ड-नृसिंह-गर्व-खण्डनाय ज्वाला-नृसिंह-ताप-शमनाय लक्ष्मी-नृसिंह-मथन-कराय गज-नृसिंह-सुदर्शद्यैनेक-वैष्णवो छेदनाय अखिल-देवता-परिपालनाय क्षयापस्मार-रोगादि-सकल-रोग-निवारणाय ॐ ॐ ह्रीं ह्री महा-चित्ररथ्यादि-गन्धर्व-पर्वत-प्रतिष्ठाय अन्तरिक्ष-ग्रह-आकाश-ग्रह-वसुन्धरा-ग्रह-तारा-ग्रह-क्षिप्र-ग्रह-मन्त्र-ग्रह-यक्ष-ग्रह-कामिनी-ग्रह-मोहिनी-ग्रह उच्चाटनाय ब्रह्म-राक्षस-वेताल-कूष्माण्डादि महा-प्रबल-ग्रहोच्चाटनाय सकल-दुष्ट-ग्रह-निवारणाय पर-यन्त्र-पर-प्रयोग-मूल-छेदनाय सृष्टि-परिपालनाय महा-पशुपतये शरभ-शालु-पक्षि-राजाय हुं फट् स्वाहा ।

♦♦♦

शरभ-माला-मन्त्र (२)

विनियोग–ॐ अस्य श्रीशरभ-शालु-महा-माला-मन्त्रस्य ईशान ऋषिः । अनुष्टुप् छन्दः । शरभ-शालु-वीरभद्रो देवता । ह्रौं बीजं । ह्रीं शक्तिः । ह्रूं कीलकम् । मम सकलोपद्रव-निवारणार्थे जपे विनियोगः ।

ऋष्यादि-न्यास–ॐ ईशान-ऋषये नमः शिरसि । अनुष्टुप्-छन्दसे नमः मुखे । शरभ-शालु-वीर-भद्र-देवतायै नमः हृदि । ह्रौं वीजाय नमः गुह्ये । ह्रीं शक्तये नमः पादयोः । ह्रूं कीलकाय नमः नाभौ । मम सकलोपद्रव-निवारणार्थे जपे विनियोगाय नमः सर्वाङ्गे ।

'ॐ ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रैं ह्रौं ह्रः' से षडङ्ग-न्यास कर ध्यान करे । यथा–

कृष्ण-वर्णं समाख्यातं, नागाम्बर-विभूषितम् । दंष्ट्रा कराल-वदनं, दश-दोर्दण्ड-मण्डितम् ।।
तप्त हाटक-सङ्काशं, जटा-मुकुट-शोभितम् । चिन्तयेऽद्भुत-वेतालं, ग्रहापस्मार-शान्तये ।।

अब निर्वाण और रिपु-जिह्वाग्र-मुद्राएँ दिखाकर 'माला-मन्त्र' का जप करे । यथा–

ऐं ॐ ह्रीं नमो भगवते शरभ-शालु-पक्षि-राजाय अघोर-शरभाय आकाश-गमनाय द्वा-त्रिंशत्-कोटि-हस्ताय अघोर-रुद्रायाट्टहासाय नृसिंह-गर्व-निर्धूताय समस्त-देवता-निवह-सेविताय सर्व-गण-नाथाय भक्त-जन-रक्षा-करेशाय वज्र-पक्ष-वज्र-देहाय कृष्ण-सर्प-यज्ञोपवीताय ॐ ह्रौं ह्रीं ह्रः समस्त-बाधा-समस्त-ग्रहान् आकर्षय आकर्षय, आवेशय आवेशय, शिरः कम्पय कम्पय, मर्दय मर्दय, भाषय भाषय, रोधय रोधय, त्रि-कोटि-पिशाचान् आकर्षय आकर्षय, नव-कोटि-गन्धर्वान् कर्षय कर्षय, दश-कोटि-भद्र-कालीनां कर्षय कर्षय, नव-कोटि-दुर्गानां कर्षय कर्षय, अष्ट-कोटि-भैरवान् कर्षय कर्षय, सप्त-कोटि-मातृकान् कर्षय कर्षय, षट्-कोटि-भूतानां कर्षय कर्षय, पञ्च-कोटि-पक्षीणां कर्षय कर्षय, चतुष्कोटि-ब्रह्म-राक्षसानां कर्षय कर्षय, त्रि-कोटि-गण-नाथानां कर्षय कर्षय, द्वि-कोटि-प्रति-बन्धानां कर्षय कर्षय, एक-कोटि-देवतानां कर्षय कर्षय, अर्ध-कोटि-अपस्माराणां कर्षय कर्षय, आवेशय आवेशय, ॐ लं लं लं लं, स्तम्भय स्तम्भय, ॐ रं रं रं रं संहारय संहारय, ॐ नमो भगवते अघोर-शरभाय शरभ-शालु-पक्षि-राजाय भस्माद् धूलित-विग्रहाय सदा रुद्राक्ष-माला-धारणाय श्रीशरभ-प्रियाय आकाश-गमनाय दक्ष-यज्ञ-कोलाहलाय कं लिं लिं लिं लिं लिं, लं लं लं लं लं लं लं लं, गर्जय गर्जय, नृसिंह-गर्व-ध्वंसनाय कुं लिं-लिं-लिं-लिं-लिं, लं-लं-लं-लं-लं-लं-लं-लं, गर्जय-गर्जय, उन्माद-ग्रहान् नाशय नाशय, स्त्री-ग्रहान् बंध बंध, ॐ क्रौं क्रौं क्रौं, आकर्षय आकर्षय, ॐ क्रीं- क्रीं- क्रीं आवेशय आवेशय, ॐ द्रैं द्रैं द्रैं मुञ्चय मुञ्चय, ॐ प्रौं चरयौं दाहय दाहय, त्रौं चरयौं पच पच, ॐ ठं-ठं-ठं-ठं-ठं मठ-मठ-मठ आकाश-वीर-भद्राय श्रीशरभ-शालु-पक्षि-राजाय खें खें खट् फट् खट् फट् खट् फट् उद्दण्ड-शरभाय महा-मेरु-पीठासनाय जन-रक्षा-करेशाय सदा रुद्राक्ष-माला-धारणाय पञ्चाक्षर-मन्त्र-परिपूरणाय आदि-सर्वेश्वराय मां रक्ष रक्ष, मम शत्रून् भक्ष भक्ष, मम सर्व-कार्याणि साधय साधय, मम सर्व-ग्रहान् बन्ध बन्ध, स्व-कर्म-परिपालनाय स्व-मन्त्र स्व-तन्त्र सहस्त्र-कोटि-पालनाय जल-स्थल-ग्रहान् बन्ध बन्ध, समस्त-वायु-ग्रहान् बन्ध बन्ध, अग्नि-ग्रहान् बन्ध बन्ध, समस्त-भूतानां कर्षय कर्षय, समस्त-प्रेतानां कर्षय कर्षय, समस्त पिशाचान् कर्षय कर्षय, स्तम्भय स्तम्भय, उच्चाटय उच्चाटय , कामिनी-ग्रहान् कर्षय कर्षय, किन्नर-ग्रहाणां कर्षय कर्षय, सिद्धि-ग्रहान् कर्षय कर्षय, साध्य-ग्रहान् कर्षय कर्षय, मम सर्व-शत्रून्नासिकान् छेदय छेदय, छिन्धि छिन्धि, भिन्धि भिन्धि, शूलेन विदारय विदारय, मम शत्रूणां रक्तं पिव पिव, समस्त-भूत-लोक-नायकां अखिल-ब्रह्माण्डाधिपाय सर्व-जन-रक्षकाय ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रैं ह्रौं ह्रः फट् स्वाहा ।।

२-अघोर

विनियोग–अस्य अघोरस्य महा-मन्त्रस्य अघोर ऋषिः । त्रिष्टुप् छन्दः । अघोर-रुद्रो देवता । प्रत्यूह-शमनार्थे जपे विनियोगः ।

ऋष्यादि न्यास कर षडङ्ग-न्यास करे । यथा–

ॐ ह्रीं स्फुर स्फुर	अंगुष्ठाभ्यां नमः	हृदयाय नमः
ॐ प्रस्फुर प्रस्फुर	तर्जनीभ्यां नमः	शिरसे स्वाहा
ॐ घोराघोर-तर तनु-रूप	मध्यमाभ्यां नमः	शिखायै वषट्
ॐ चट चट प्रचट प्रचट	अनामिकाभ्यां नमः	कवचाय हुम्
ॐ कह कह बम बम बन्ध बन्ध	कनिष्ठिकाभ्यां नमः	नेत्र-त्रयाय वौषट्
ॐ घातय घातय हुं फट्	करतल-कर-पृष्ठाभ्यां नमः	अस्त्राय फट्

ध्यानम्– सजल-घन-समाभं, भीम-दंष्ट्रं त्रिनेत्रम् । भुजङ्ग-धरमघोरं रक्त-वस्त्राङ्ग-रागम् ।
परशु-डमरु-खड्ग-खेटकं बाण-चापौ । त्रिशिख-नर-कपाले, विभ्रतं भावयामि ।।

मन्त्र : ॐ ह्रीं स्फुर स्फुर प्रस्फुर-प्रस्फुर घोराघोरतर तनु-रूप चट चट प्रचट प्रचट कह कह बम बम बन्ध बन्ध घातय घातय हुं फट् ।

अघोर-सुदर्शन : ॐ ह्रीं स्फुर स्फुर प्रस्फुर-प्रस्फुर घोराघोरतर तनु-रूप चट चट प्रचट प्रचट कह कह बम बम बन्ध बन्ध घातय घातय हुं फट् ॐ सहस्त्रारे हुं फट् ।

३-खड्ग-रावण

विनियोग–अस्य खड्ग-रावण-मन्त्रस्य श्रीखड्ग-रावण ऋषिः । त्रिष्टुप् छन्दः । श्रीखड्ग-रावणः देवता । सर्व-भूत-विमर्दने जपे विनियोगः ।

ऋष्यादि-न्यास–श्रीखड्ग-रावण-ऋषये नमः शिरसि । त्रिष्टुप-छन्दसे नमः मुखे । श्रीखड्ग-रावण-देवतायै नमः हृदि । सर्व-भूत-विमर्दने जपे विनियोगाय नमः सर्वाङ्गे ।

'खां खीं खूं खैं खौं खः' से षडङ्ग-न्यास कर ध्यान करे–

रक्ताम्बरं रक्त-वर्णं, चन्द्र-मौलिं त्रिलोचनम् । पञ्चाननं करैर्घण्टां, कपालांकुश-मस्तकम् ।।
कृपाणं खेट-खट्वाङ्गौ, त्रिशूलं डमरुं करैः । दधानमभयं चापि, ध्याये पञ्चाननं शिवम् ।।

मन्त्र : ॐ ह्रीं क्लीं खं भूतेश ह्रीं ह्रां खड्ग-रावणाय नमः ।

खड्ग-रावण-माला-मन्त्र–ॐ नमो भगवते भूताधिपतये ॐ नमो रुद्राय खड्ग-रावण लं लं विहर-विहर सर सर नृत्य नृत्य, व्यसनं भस्मार्चित-शरीराय घण्टा-कपाल-माला-धराय व्याघ्र-चर्म-परिधानाय शशाङ्क-कृत-शेखराय कृष्ण-सर्प-यज्ञोपवीतिने चल चल बल बल अतिर्वीत-कपालिने हन हन भूतान् नाशय नाशय मण्डलाय फट् फट् रुद्रांकुशेन शमय शमय प्रवेशय प्रवेशय आवेशय आवेशय रक्षाक्षि-धराधिपतये रुद्रो ज्ञापयति स्वाहा ।

४-क्रोध-भैरव

(१) ॐ वज्र-ज्वाले हन हन सर्व-भूतान् हूं फट् । (२) विज्ञान-कर्षण-मनु-ॐ वज्र-मुखे

शर शर फट् । (३) ॐ सङ्घट्ट-मृतान् जीवय स्वाहा । (४) ॐ हूं वज्र-फट् क्रूं क्रों क्रूं क्रूं हूं हूं फट् । (५) ॐ हन हन सर्वं मारय मारय वज्र-ज्वालेन हूं फट् । (६) प्रधान मन्त्र (क्रोध-राज)-ॐ हूं हूं हूं फट् फट् फट्-वज्र-क्रोध दीप्त-महा-क्रोध ज्वल ज्वल मारय मारय हूं हूं हूं फट् फट् फट् ।

'क्रोध-भैरव' मन्त्र का ध्यान और न्यास-विधि-

चतुरस्त्रं चतुर्द्वारं, चतुस्तोरण-भूषितं । भागैः षोडशभिर्युक्त, वज्र-प्राकार-शोभितम् ।।
तन्मध्ये तु महा-भीमं, वज्र-क्रोधं चतुर्भुजं । ज्वाला-मालाकुलादीप्तं, युगान्ताग्नि-सम-प्रभम् ।।
भिन्नाञ्जन-महा-कायं, कपाल-कृत-भूषणं । अट्टहासं महा-रौद्रं, त्रिलोकेषु भयङ्करम् ।।
दक्षिणोर्ध्व-करे वज्रं, तर्जनी वाम-पाणिना । क्रोध-मुद्रां च तदधः, पाणिभ्यां धारिणं भजे ।।
शशाङ्क-शेखरं त्र्यक्षं, महा-गोक्षीर-पाण्डुरं । महा-देवं चतुर्बाहुं, शूल-चामर-धारिणम् ।।
चाप-शक्ति-समायुक्तं, क्रोध-दक्षे वृषासनं । शङ्ख-चक्र-गदा-चामराढ्यं वामे खगासनम् ।।
पृष्ठ-भागे तथा शक्रं, सर्वालङ्कार-भूषितं । पीत-वस्त्रं त्रिनेत्रञ्च, हस्तिस्थं चामरान्वितम् ।।
पुरतः कार्तिकेयं च, मयूरस्थं विचिन्तयेत् । चामरं व्यग्र-हस्ताग्रं, हिम-कुन्देन्दु-सन्निभम् ।।
आग्नेयादीश-पर्यन्तं, द्वै द्वै शक्ती च कोणगे । सिंह-ध्वजान्विता मग्नौ, महा-भूतिन्यपि क्रमात् ।।
नैर्ऋते सुर-पूर्वां च, हारिणीं दैत्य-नाशिनीम् । रत्नेश्वरीं भूषणीं च, वायु-कोणे न्यसेत् पुनः ।।
न्यसेदीशे जगत्पालिनीं च पद्मावतीं पुनः । श्वेतामाद्यां परां गौरीमेवमष्टौ क्रमोदिताः ।।

क्रोध-मुद्रा : मुष्टिमन्योन्यमास्थाय, कनिष्ठे वेष्टयेदुभौ । प्रसार्य कुण्डलाकारं, विधाय तर्जनी-द्वयं । सिद्धाकर्षण-मुद्रेयं, सिद्धमाकर्षयेद् ध्रुवम् ।

अर्थात् दोनों हाथों की मुष्टियों को परस्पर संयुक्त कर दोनों कनिष्ठाओं को वेष्ठित करे । साथ ही दोनों तर्जनियों को फैलाकर कुण्डलाकार करे ।

५-पाशुपतास्त्र

विनियोग-अस्य पाशुपतास्त्र-मन्त्रस्य ब्रह्मा ऋषिः । गायत्री छन्दः । पाशुपातस्त्रः देवता । श्लीं बीजं । हुं शक्तिः । ग्रह-प्रत्यूह-शान्त्यर्थे जपे विनियोगः ।

ऋष्यादि-न्यास कर षडङ्ग-न्यास करे । यथा-

ॐ ॐ	अंगुष्ठाभ्यां नमः	हृदयाय नमः
ॐ श्लीं	तर्जनीभ्यां नमः	शिरसे स्वाहा
ॐ पं	मध्यमाभ्यां नमः	शिखायै वषट्
ॐ शुं	अनामिकाभ्यां नमः	कवचाय हुम्
ॐ हूं	कनिष्ठिकाभ्यां नमः	नेत्र-त्रयाय वौषट्
ॐ फट्	करतल-करपृष्ठाभ्यां नमः	अस्त्राय फट्

ध्यान-

मध्याह्नार्क-सम-प्रभं शशि-धरं भीमाट्टहासोज्ज्वलं । त्र्यक्षं पन्नग-भूषण-शशि-शिखा-श्मश्रू-स्फुर-मूर्धजम् ।
हस्ताब्जैस्त्रिशिखं स-मुद्गरमसिं शक्तिं दधानं विभुं । दंष्ट्रा-भीम-चतुर्मुखं पशु-पतिं दिव्यास्त्र-रूपं स्मरेत् ।।

मन्त्र : ॐ श्लीं पशु हूं फट् ।

६–जय-दुर्गा

ॐ ह्रीं दुर्गे दुर्गे रक्षिणि स्वाहा । (विधान 'श्रीदुर्गा साधना' में द्रष्टव्य है ।)

७–वीरार्दन

हूं हूं ह्रीं ह्रीं कालिके घोर-दंष्ट्रे प्रचण्डे चण्ड-नायिके दानवान् दारय दारय हन हन शव-शरीरे महा-विघ्नं छेदय-छेदय स्वाहा हूं फट् ।

८–बला-महाबला

विनियोग–ॐ अस्य श्रीबला-महाबला-मन्त्रस्य विराट्-पुरुषः ऋषिः । गायत्री छन्दः । श्रीबला-महाबला-गायत्री देवता । अं बीजं । उं शक्तिः । मं कीलकम् । क्षुधा-पिपासा-निवारणार्थे जपे विनियोगः ।

ऋष्यादि-न्यास–ॐ विराट्-पुरुष-ऋषये नमः शिरसि । गायत्री-छन्दसे नमः मुखे । श्रीबला-महाबला-गायत्री-देवतायै नमः हृदि । अं बीजाय नमः गुह्ये । उं-शक्तये नमः पादयोः । मं-कीलकाय नमः नाभौ । क्षुधा-पिपासा-निवारणार्थे जपे विनियोगाय नमः सर्वाङ्गे ।

षडङ्ग-न्यास	कर-न्यास	अङ्ग-न्यास
ॐ क्लां	अंगुष्ठाभ्यां नमः	हृदयाय नमः
ॐ क्लीं	तर्जनीभ्यां नमः	शिरसे स्वाहा
ॐ क्लूं	मध्यमाभ्यां नमः	शिखायै वषट्
ॐ क्लैं	अनामिकाभ्यां नमः	कवचाय हुम्
ॐ क्लौं	कनिष्ठिकाभ्यां नमः	नेत्र-त्रयाय वौषट्
ॐ क्लः	करतल-करपृष्ठाभ्यां नमः	अस्त्राय फट्

ध्यान– ॐ अमृत-कर-तलाऽऽद्रौ सर्व-सञ्जीवनाढ्यः । अघ-हरण-सुदक्षौ, वेद-सारैः मयूखैः ।
प्रणव-मय-विकारौ, भास्कराऽऽकार-देहौ । सततमनुभवेऽहं बला-महा-बलान्तौ ।।

मन्त्र–ॐ ह्रीं बले महा-देवि ह्रीं महा-बले क्लीं चतुर्विध-पुरुषार्थ-सिद्धि-प्रदे तत्-सवितुर्वर-दात्मिके ह्रीं वरेण्यं भर्गो देवस्य वरदात्मिके अति-बले सर्व-दया-मूर्ते बले सर्व-क्षुद्र-भ्रमोपनाशिनि धीमहि कीलकं । भी घियो यो नो जाते प्रचुर्यः या प्रचोदयात्मिके प्रणव-शिरस्कात्मिके हुं फट् स्वाहा ।

९–महा-सिंह

विनियोग–ॐ अस्य श्रीमहा-सिंह-मन्त्रस्य भगवान् त्रैलोक्य-मोहन-महा-विष्णुः ऋषिः । गायत्र्युष्णिगनुष्टुप्-नाना-छन्दांसि । श्रीमहा-पशु-पतिः देवता । सौः वीजं । स्वाहा शक्तिः । हुं फट् पराम्बा-प्रसाद-सिद्ध्यर्थे जपे विनियोगः ।

ऋष्यादि-न्यास–श्रीत्रैलोक्य - मोहन भगवान् - महा-विष्णु-ऋषये नमः शिरसि । गायत्र्युष्णिगनुष्टुप् -नाना-छन्दोभ्यो नमः मुखे । महा-पशु-पति-देवतायै नमः हृदि । सौः वीजाय नमः गुह्ये । स्वाहा-शक्तये नमः पादयोः । हुँ फट् कीलकाय नमः नाभौ । श्रीपराम्बा-प्रसाद-सिद्ध्यर्थे जपे विनियोगाय नमः सर्वाङ्गे ।

षडङ्ग-न्यास	कर-न्यास	अङ्ग-न्यास
ॐ श्लीं पशु हुं फट्	अंगुष्ठाभ्यां नमः	हृदयाय नमः
ॐ श्लीं पशु हुं फट्	तर्जनीभ्यां नमः	शिरसे स्वाहा
ॐ श्लीं पशु हुं फट्	मध्यमाभ्यां नमः	शिखायै वषट्
ॐ श्लीं पशु हुं फट्	अनामिकाभ्यां नमः	कवचाय हुम्
ॐ श्लीं पशु हुं फट्	कनिष्ठिकाभ्यां नमः	नेत्र-त्रयाय वौषट्
ॐ सौः वज्रनख-दंष्ट्रायुधाय महा-सिंहाय हुं फट् नमः स्वाहा	करतल-करपृष्ठाभ्यां नमः	अस्त्राय फट्

इस प्रकार न्यास-कल्पित 'महिष' का मानसोपचारों से निम्न मन्त्र द्वारा पूजन करे–

'ॐ हूं भ्रूं महिष-शृङ्गेभ्यो नमः ।'

तब नृसिंह-मुद्रा दिखाकर उक्त कल्पित 'महिष' की बलि निम्न मन्त्र से महा-सिंह को प्रदान करे– 'ॐ श्लीं क्षं हूं पशु वज्र-देह घुरु घुरु हुं फट् हिंगुनु हिंगुनु ॐ श्लीं गर्ज गर्ज पशु हुं क्षां हुं फट् पञ्चाननाय इमं कल्पित-ब्रह्माण्ड-खण्ड-रूप-महिष-बलिं गृह्ण गृह्ण गृह्णापय गृह्णापय पराम्बा-प्रसादं देहि देहि हुं फट् स्वाहा ।'

इसके बाद हृदय पर हाथ रखकर तीन-तीन बार निम्न दो रक्षा-मन्त्रों का जप करे–

(१) ॐ सौः वनस्पति-पुत्राय महासिंहाय हुं फट् आत्मानं रक्ष रक्ष ।

(२) ॐ हूं किङ्कराय रक्ष रक्ष त्वरिताज्ञया स्थिरो भव हुं फट् ।

अब निम्न प्रकार 'महा-सिंह' का ध्यान करे–

ॐ ग्रीवायां मधुसूदनोऽस्य शिरसि श्रीनील-कण्ठः स्थितः ।
श्रीदेवी गिरिजा ललाट-फलके वक्षः-स्थले शारदा ।।
षड्-वक्त्रो मणिबन्ध-सन्धिषु तथा नागास्तु पार्श्व-स्थिताः ।
कर्णौ यस्तु तु चाश्विनौ स भगवान् सिंहो ममास्त्विष्टदः ।।
यन्नेत्रे शशि-भास्करौ वसु-कुलं दन्तेषु यस्य स्थितं ।
जिह्वायां वरुणस्तु हुं-कृतिरियं श्रीचर्चिका चण्डिका ।।
गण्डौ यक्ष -यमौ तथौष्ठ - युगलं सन्ध्या - द्वयं पृष्ठके ।
वज्री यस्य विराजते स भगवान् सिंहो ममास्त्विष्टदः ।।
ग्रीवा-सन्धिषु सप्त-विंशति-मितान्यृक्षाणि साध्या हृदि ।
प्रौढ़ा निर्घृणता तमोऽस्य तु महा-क्रौर्यै समाः पूतनाः ।।
प्राणे यस्तु मातरः पितृ - कुलं यस्यास्त्यपानात्मकं ।
रूपे श्रीकमला कचेषु विमला स्यु रवे रश्मयः ।।
मेरुः स्याद् वृषणोऽब्धयस्तु जनने स्वेद-स्थिता निमग्नाः ।
लांगूले सह - देवतैर्विलसिता वेदा बलं वीर्यकम् ।।

श्री विष्णोः सकला सुराऽपि यथा-स्थानं स्थिता यस्य तु ।
श्रीसिंहोऽखिल-देवता-मय-वपुर्देवी प्रियः पातु माम् ।।
यो बाल-ग्रह-पूतनादि-भय-हृच्च पुत्र-लक्ष्मी-प्रदो यः।
स्वप्न - ज्वर - रोग - राज - यभहृद्योऽमङ्गले मङ्गलः ।।
सर्वत्रोत्तम - वर्णनेषु कविभिर्यस्योपमा दीयते ।
देव्या वाहनमेष रोग-भय-हृत् सिंहो ममास्त्विष्टदः ।।

इस प्रकार ध्यान कर मानसोपचारों से '**महा-सिंह**' की पूजा कर श्रीमहा-देवी को पाद्यादि अर्पित कर निम्न मन्त्र का १०८ बार जप करे–

ॐ सौः वज्र-नख-दंष्ट्रायुधाय महा-सिंहाय हुं फट् नमः स्वाहा ।

उक्त मन्त्र में '**हुं फट्**' पुरुष-मन्त्र है, '**स्वाहा**' प्रकृति-मन्त्र और '**नमः**' उभयात्मक है । काम्य प्रयोग में केवल हविष्यान्न और पायस मधु-सहित बलि-रूप में देय है । '**पशुपति सिंह**' को **महिष-बलि** देने के साथ ही उसी **बलि-मन्त्र** में यथा-स्थान '**किङ्कराय**' और '**वनस्पति-पुत्राय**' जोड़कर क्रमशः दो और बलियाँ देय हैं ।

१०– योगिनी-बलि

श्रीचामुण्डा आवरण-पूजन (देखें 'श्रीदुर्गा-साधना') के अन्त में अष्ट-श्मशानों (कोणों) में ६४ **योगिनियों** का अष्टाष्टक-भाव से आवाहन कर बलि देने की विधि है । इस विधि के पालन से साधक की कामनाओं की सहज ही पूर्ति होती है । इस विधि में आठ वर्णात्मक कोणों में **बलि देते हैं** । ये आठ वर्ण हैं–**१. शुक्ल, २. गौर, ३. रक्त, ४. विद्युत् , ५. आदित्य, ६. सुनील, ७. अञ्जन, ८. धूम्र** । इनके सम्बन्ध में **बलि-मन्त्र** और **योगिनियों** के नाम निम्न प्रकार हैं–

१. शुक्ल वर्णे–

शूल-डमरु-पाशासि-धरे ! सर्वालङ्कार-भूषिते स-सैन्य 'जये' !
इहागच्छागच्छेमं पायस-बलिं गृहाण गृहाण स्वाहा ।

(इसी प्रकार **२ विजये, ३ जयन्ति, ४ अपराजिते, ५ दिव्य-योगिनि, ६ महा-योगिनि, ७ सिद्ध-योगिनि, ८ गणेश्वरि** को बलि दे । इति प्रथमाष्टक ।)

२. गौर-वर्णे–

अक्ष-मालांकुश-पुस्तक-वीणा-धरे! 'प्रेतासने'! एह्येहि इमं पायस-बलिं गृहाण गृहाण स्वाहा ।

(इसी प्रकार **२ डाकिनि, ३ कालि, ४ काल-रात्रि, ५ निशाचरि, ६ टङ्कारिणि, ७ रुद्र-वेतालिनि, ८. हुङ्कारिणि** को बलि दे । इति द्वितीयाष्टक ।)

३. रक्त-वर्णे–

ज्वाला-शक्त्यभय-वरदे! 'ऊर्ध्व-केशि'! एह्येहि इमं पायस-बलिं गृहाण गृहाण स्वाहा ।

(इसी प्रकार २ विरूपाक्षि, ३ शुक्लाङ्गि, ४ नर-भोजिनि, ५ फट्-कारिणि, ६ वीर-भद्रे, ७ धूमाङ्गि, ८ कलह-प्रिये को बलि दे । इति तृतीयाष्टक ।)

४. विद्युत्-सन्निभे-

ध्वज-वाण-धनुष्पाश-हस्ते! 'राक्षसि'! एह्येहि इमं पायस-बलिं गृहाण गृहाण स्वाहा ।

(इसी प्रकार २ रक्ताक्षि, ३ विश्व-रूपे, ४ भयङ्करि, ५. वीर-कौमारि, ६. चण्डिके, ७. वाराहि, ८. मुण्ड-धारिणि को बलि दे । इति चतुर्थाष्टक ।)

५. आदित्य-वर्णे-

कमलाक्ष-मालाभय-वरद-करे! 'भैरवि'! एह्येहि इमं पायस-बलिं गृहाण गृहाण स्वाहा ।

(इसी प्रकार २ ध्वांक्षिणि, ३ धूम्राङ्गि, ४ प्रेत-वाराहि, ५ खड्गिनि, ६ दीर्घ-लम्बोष्ठि, ७ मालिनि, ८ मन्त्र-योगिनि, को बलि दे । इति पञ्चमाष्टक ।)

६. सुनीले-

शङ्ख-चक्र-गदाभय-करे! 'कालिनि'! एह्येहि इमं पायस-बलिं गृहाण गृहाण स्वाहा ।

(इसी प्रकार २ चक्रिणि, ३ कङ्कालि, ४ भुवनेश्वरि, ५ शटकि, ६ महा-मारि, ७ यम-दूति, ८ करालिनि को बलि दे । इति षष्टाष्टक ।)

७. अञ्जन-निभे-

खड्ग-खेट-पट्टिश-परशु-हस्ते! 'केशिनि'! एह्येहि इमं पायस-बलिं गृहाण गृहाण स्वाहा ।

(इसी प्रकार २ मर्दिनि, ३ रोम-जङ्घे, ४ निवारिणि, ५ विशालिनि, ६ कार्मुकि, ७ लोलि, ८ अधोमुखि को बलि दे । इति सप्तमाष्टक ।)

८. धूम्र-वर्णे-

कुन्त-खेट-भिन्दिपाल-माला-करे !'मुण्डाग्र-धारिणि! एह्येहि इमं पायस-बलिं गृहाण गृहाण स्वाहा ।

(इसी प्रकार २ व्याघ्रि, ३ काङ्क्षिणि, ४ प्रेत-रूपिणि, ५ धूर्जटि, ६ घोरि, ७ करालि, ८ विष-लम्बिनि को बलि दे । इति अष्टमाष्टक ।)

इस प्रकार ८X८=६४ योगिनियों को 'चण्डी-यन्त्र' के अष्ट-दल-कमल में पाशव-कल्पानुसार पायस की और श्मशानाष्टक में वीर-कल्पानुसार शुद्ध्यादि की बलि दी जाती है । 'चक्रार्चन' में भी पञ्च-बलि के समय साधक अबीर या सिन्दूर से 'अष्ट-श्मशान' अङ्कित कर उसमें शुद्ध्यादि पञ्च-तत्त्वों सहित बलि प्रस्तुत कर उक्त विधि सम्पन्न कर आनन्दित होते हैं । इसके बाद गणेश, वटुक, क्षेत्रपाल, सर्व-भूतादि को बलि देते हैं ।

●●●

वीर-साधना-विषयक जिज्ञासाएँ

(१) भाग्योदय एवं श्री-सम्पन्नता

वीराचार में दीक्षित साधक को कोई भी अनुष्ठान **पाशव कल्प** से नहीं करना चाहिए। यदि किया जाएगा, तो वह सफल नहीं होगा।

१- **विल्व-मूल की साधना** की विधि प्रस्तुत पुस्तक में दी गई है। यह साधना कम-से-कम दो बार करनी चाहिए। तभी भाग्योदय होता है और लक्ष्मी साधक के पास स्थिर होकर रहती है।

२- **महा-शङ्ख (कपाल) पात्र में दीप-पुरश्चरण** करने से भाग्योदय होता है।

३- **कङ्काली-मन्त्र** से घृत-कारणादि के साथ **क्षुद्र (वाल) मत्स्य** द्वारा **१००८ (अष्टोत्तर-सहस्त्र)** आहुतियाँ देने से जीवन भर अर्थ-चिन्ता नहीं रहती, किन्तु यह आवश्यक है कि इस प्रयोग के पहले **कङ्काल-माला (वर्ण-माला)** या **महा-शङ्ख-माला** में उक्त मन्त्र का **१०,००८ (अष्टाधिक अयुत)** जप कर ले। साथ ही गुणान्वित नारी के केशों का कङ्कण धारण करे।

४- सूर्यास्त से सूर्योदय तक **'अस्तोदय पुरश्चरण'** करने से कुल-परामपरागत वंश-वृद्धि, सभी विघ्नों का नाश, स्त्री-सन्तान-कीर्ति तथा शाश्वत अर्थागम अवश्य होता है।

(२) श्मशान में जप

श्मशान में 'जप' हेतु पीछे अनेक विधियाँ दी गई हैं, जिन्हें अनुभवी सद्-गुरु के निर्देशन में ही करना चाहिए क्योंकि **श्मशान-साधना** के सभी रहस्यों को वे ही जानते हैं, जो उसे करके सिद्ध हो चुके हैं। कुछ विशेष बातें इस प्रकार हैं-

१-**'श्मशान-काली' की पूजा** किए बिना **श्मशान में प्रवेश** नहीं करना चाहिए। उनकी निर्माल्य-वासिनी **'चण्डेश्वरी'** हैं, जिन्हें निर्माल्य अर्पित करने से साधक के लिए श्मशान में स्थान सुरक्षित हो जाता है।

२-दो-चार दिन या बीच में कम-से-कम ४५ दिन, त्रि-पक्ष के भीतर, **श्मशान में जप** करें, तो यह ध्यान रखें कि **स्थान-त्याग** करते समय **'अघोरास्त्र-मन्त्र'** से छुरी या लौह वस्तु से वहाँ अदृश्य (न दिखाई देनेवाला) घेरा डाल दें। ऐसा न करने से साधक का **'आसन'** छिन जाता है अर्थात् वह कीलित हो जाता है।

३-लौह वस्तु, छुरी आदि, **त्रिशूल** लेकर ही **श्मशान में जप** करना चाहिए। इनके बिना वहाँ जप नहीं करना चाहिए।

४-श्मशान-काली, माया-बीज-युक्त जय दुर्गा, वटुक-गणेश, वीरार्दन और **सुदर्शन-मन्त्रों** का निर्दिष्ट क्रम के अनुसार दिन में और रात्रि में **अघोरास्त्र-मन्त्र** का जप करना चाहिए।

(३) शिवा-बलि का विधान

शिवा-बलि का विधान पीछे के पृष्ठों में प्रकाशित है। उसी के तारतम्य में यहाँ कुछ और स्पष्टीकरण ज्ञातव्य है-**शिवा का दर्शन** होने पर **'शिव-दूती' का ध्यान** करना चाहिए क्योंकि उन्हीं की द्वादश शक्तियाँ **शिवा-रूपा जगदम्बा** हैं। **शिवा-रूपा जगदम्बा** ही आवरण-देवताओं सहित इष्ट-देवता हैं। उक्त द्वादश

शक्तियों के नाम हैं–१. क्षेमङ्करी, २. शान्ता, ३. वेद-माता, ४. महोदरी, ५. कराला, ६. कामदा देवी, ७. भगास्या, ८. भग-मालिनी, ९. भगोदरी, १०. भगारोहा, ११. भग-जिह्वा तथा १२. भगा।

शिवाओं का अभाव हो, तो 'श्री-कुल' के उपासकों को पितृ-रूपा वाराही का तर्पण कर शिवा-पूजन करना चाहिए। 'काली-कुल' के उपासक श्रीनाथादि, दिव्यौघ, सिद्धौघ, मानवौघ गुरुओं का तर्पण कर शिवा-बलि करते हैं। शिव-दूती गुरु-पद्म में वास करती हैं। उनका ध्यान निम्न प्रकार है–

चतुर्भुजां महा-मायां, सिन्दूर-सदृश-द्युतीं। रक्त-दन्तां मुण्डमाला-जटाजूटोर्ध्व-चन्द्रिकाम्। नाग-कुण्डल-हाराभ्यां, शोभितां नखरोज्ज्वलां। व्याघ्र-चर्म-परीधानां, दक्षिणे शूल-खड्ग-धृक्। वामे पाशं तथा चर्म, विभ्रदूर्द्धा-पर-क्रमात्। स्थूल-वक्त्रां च पीनोष्ठां, तुङ्ग-मूर्तिं भयङ्कराम्। निक्षिप्य दक्षिणं पादं, सन्तिष्ठां कुणपोपरि★। वाम-पादं श्रृगालस्य, पृष्ठे फेरु-शतैर्वृताम्। ईदृशीं शिव-दूत्यास्तु, मूर्तिं ध्यायेद् विभूतये। ध्यान-मात्रादथैतस्याः, नरः कल्याणमाप्नुयात्॥

शिव-दूती का पूजन करने से सभी कामनाएँ पूर्ण होती हैं। रक्त-वीज का बध होने के पश्चात् महा-माया ने शिव को दूत बनाकर शुम्भासुर के पास भेजा था। तभी से वे 'शिव-दूती' नाम से प्रसिद्ध हुईं।

शिवा के आकर्षण के लिए चतुर्दशाक्षर त्रिपुरा-मन्त्र है–'श्रीं ह्रीं क्लीं शिवानाकर्षयाकर्षय स्वाहा।' शिवा-बलि में जप और हवन का नवाक्षर-मन्त्र है–ॐ ह्रीं महोत्कटायै स्वाहा।' पूजा-बलि-ग्रहण करने हेतु ३९ अक्षरों का मन्त्र है–ॐ क्रौं ह्रौं शिवे! आगच्छ आगच्छ सर्वतो मां रक्ष रक्ष इमां बलिं गृह्ण गृह्ण गृह्णापय गृह्णापय ह्रीं क्रौं सौः फट्।

(★कुणप=शव)

(४) मुण्डासन-विधि

एक मुण्ड से लक्ष-मुण्डासन तक का पूजन-विधान एक ही प्रकार का है क्योंकि यह 'कङ्काल-माला'–'वर्ण-माला' है। शुभ्र, धुले हुए, सूखे मुण्ड लिए जाते हैं। उसमें मांस न रहे, अन्यथा शव-स्थित वेताल माया-प्रदर्शन प्रारम्भ कर देगा, जिससे चमत्कार तो देख पाएँगे, किन्तु इष्ट-दर्शन नहीं हो सकेगा। यवनादि के मुण्ड वर्जित हैं क्योंकि उनकी चिता नहीं होती। तन्त्रों में अनेक स्थानों पर लिखा है 'यवनी-शक्तिमानीय', वहाँ 'यवनी' से आशय है यौवनान्विता से। जो लोग यवनी शक्ति को स्वीकार करते हैं, यह समझकर कि सृष्टि-मुद्रा में दोष नहीं है, वह गलत करते हैं।

शूद्रादि संस्कार-रहित होने पर भी संस्कार-युक्त चिता को प्राप्त करते हैं। अतः वर्ण-माला उनकी अस्थियों में सूक्ष्म वासना-रूप से निवास करती है। इस प्रकार वे ग्राह्य हैं। कई स्थानों पर लिखा मिलता है कि जल-सेकादि द्वारा बुझाई चिता को 'संस्कृत चिता' कहते हैं, किन्तु वास्तविकता यह है कि असंस्कृत (अदीक्षित) की चिता होती है। यही विचारणीय है, जल-सेकादि नहीं। जल-सेक तो होता ही है। 'कामाख्या तन्त्र' का यही मत है।

'पञ्च-मुण्डासन' की विधि संक्षेप में निम्न प्रकार है। एक-मुण्ड के सम्बन्ध में भी यही विधि उपयोगी है–

श्रीमान् साधक पहले 'सुमुखश्चैकदन्तश्च' और 'ॐ ह्रीं स्वस्ति नः कात्यायनी' इत्यादि से स्वस्ति-वाचन कर विघ्न-निवारण करे–'ॐ ये चात्र संस्थिता' इत्यादि।

फिर वेदिका के पास जाकर पूर्व-दिशा में पाद्यादि उपचारों से **भूतनाथ का पूजन** करे–'**ॐ भूतनाथाय नमः**' इत्यादि। **स-तीर्थ सामिषान्न-बलि** रख, उसका प्रोक्षणादि कर उन्हें निम्न मन्त्र से प्रदान करे–'**एष स-तीर्थ सामिषान्न-बलिं भूतनाथाय नमः।**'

इसी प्रकार दक्षिण-दिशा में '**ॐ श्मशानाधिपाय नमः**' से पाद्यादि-पूजन कर निम्न मन्त्र से **श्मशानाधिप को बलि प्रदान** करे–'**एष स-तीर्थ सामिषान्न-बलिं श्मशानाधिपाय नमः।**'

पश्चिम में–'**ॐ काल-भैरवाय नमः**' से पूजन कर **काल-भैरव को बलि प्रदान** करे–'**एष स-तीर्थ सामिषान्न बलिं काल-भैरवाय नमः।**'

उत्तर में–'**ॐ श्मशानाय नमः**' से पूजन कर **श्मशान को बलि प्रदान** करे–'**एष स-तीर्थ सामिषान्न बलिं श्मशानाय नमः।**

इसके बाद **मुण्ड का पाद्यादि से पूजन** करे–'**ह्सौः फट् शव-मुण्डेभ्यो नमः।**'

तदनन्तर नैर्ऋत्य-कोण में वेदिका पर '**ह्रीं चण्डिकायै**' लिखे और वहाँ '**ऐं वाग्देवतायै वौषट्**' से यथोपचारों द्वारा **वाग्-देवता का पूजन** कर उन्हें बलि प्रदान करे–'**एष स-तीर्थ सामिषान्न-बलिं वाग्देवतायै वौषट्।**'

अब '**वेदी**' के ऊपर तीन पुष्पाञ्जलियाँ चढ़ाकर '**मुण्ड**'-**प्रार्थना** करे–

ॐ हे वीर! शव-देवेश! मुण्ड-रूप-जगत्पते! दयां कुरु महा-भाग! सिद्धिदो भव मज्जपे।

तब **स-चन्दन पुष्पाञ्जलि** अर्पित करे–'**एष स-चन्दन-पुष्पाञ्जलिः शव-मुण्डेभ्यो नमः।**'

पुनः **मुण्ड-पूजन** निम्न मन्त्र द्वारा यथोपचारों से करे–'**ह्रीं ह्रीं हूं फट्।**'

इसके बाद नैऋत्यादि चारों कोणों में क्रमशः **चण्डिका, भद्र-काली, दया-मयी** और **चण्डोग्रा** का पाद्यादि उपचारों से पूजन कर उन्हें पूर्व-वत **बलि** प्रदान करे। यथा–

नैर्ऋत्य–'**ॐ ह्रीं चण्डिकायै नमः**' से पूजन कर बलि दे–'**एष स-तीर्थ सामिषान्न बलिं ह्रीं चण्डिकायै नमः।**'

वायव्य–'**ॐ ह्रीं भद्र-काल्यै नमः**' से पूजन कर बलि दे–'**एष स-तीर्थ सामिषान्न बलिं ह्रीं भद्र-काल्यै नमः।**'

ईशान–'**ॐ ह्रीं दया-मय्यै नमः**' से पूजन कर बलि दे–'**एष स-तीर्थ सामिषान्न बलिं ह्रीं दयामय्यै नमः।**'

आग्नेय–'**ॐ ह्रीं चण्डोग्रायै नमः**' से पूजन कर बलि दे–'**एष स-तीर्थ सामिषान्न बलिं ह्रीं चण्डोग्रायै नमः।**'

तदनन्तर निम्न **प्रार्थना-मन्त्र** पढ़ते हुए **स-चन्दन पुष्पाञ्जलि** तीन बार अर्पित करे–

ॐ श्मशान-वासिन्यो ये ये, देवा देव्यश्च भैरवाः। दयां कुर्वन्तु ते सर्वे, सिद्धिदास्ते भवन्तु मे॥

एष स-चन्दन-पुष्पाञ्जलिः श्मशान-वासिभ्यो देवताभ्यो नमः॥

इसके बाद स्थान का स्पर्श कर कहे–'**वशो भव, वशो भव**' (या वशी भव, वशी भव)

तब वहाँ **आसन-स्थापन** कर **स्वस्ति-वाचन-पूर्वक सङ्कल्प** न्यासादि कर यथा-शक्ति देवी का

पूजन कर अष्टाधिकायुत (**दस सहस्त्र आठ**) **जप** करे । फिर जप-समर्पण-पूर्वक प्रणाम कर **अच्छिद्रावधारण** करे । इस सम्बन्ध में सङ्कल्प-वाक्य निम्न प्रकार है-

अद्येत्यादि अमुक-गोत्रः श्रीअमुकः अमुकी-देव्याः अमुक-मन्त्र-सिद्धि-पूर्वकममुकी-पादाम्भोज-प्रत्यक्ष-पुरस्सर-स्वाभीष्ट-लाभ-कामः अत्र मुण्डासनोपरि यथा-शक्त्या देवीमभ्यर्च्य अष्टाधिकायुत-संख्यक जप-रूपं मुण्ड-साधनमहं करिष्ये ।

सङ्कल्प-सूक्तादि (साधना-रहस्य पृष्ठ ९१) पढ़कर वेदिका के ऊपर आसन बिछाकर बैठें और '**रं**'-बीज से जल-धारा द्वारा **अष्ट-प्राकार की भावना** कर स्व-कल्पोक्त **मुण्ड-रूप (शव) शिव** का ध्यान कर प्रार्थना करे-

ॐ कार्यं देहि महा-देव ! सिद्धिं देहि महा-विभो ! मन्त्र-सिद्धिं तथा देहि, रक्ष मां शरणागतम् ।
शव-रूप-महा-देव ! सर्व-देव ! नमोऽस्तु ते ।।

यहाँ उल्लेखनीय है कि मूल-मन्त्र **शिवात्मक (भैरवादि)** हो, तो दिशाओं की पूजा के बाद वेदी में '**ह्सौः**' बीज लिखकर **भारती की पूजा** कर **बलि** दी जाती है । साथ ही विदिशाओं (कोणों) की पूजा **आग्नेय (चण्डोग्रा)** से आरम्भ होकर **ईशान कोण (दया-मयी)** पर समाप्त होती है ।

'**ह्रां ह्रीं ह्रूं फट्**'-वास्तव में **पञ्च-मुण्ड का मूल-मन्त्र** है ।

(५) योनि-कवच (साधना-रहस्य, पृष्ठ ८८)

उक्त **कवच** के **विनियोग** में देवता का नामोल्लेख नहीं है । कारण यह है कि इस कवच के देवता दस प्रकार के हैं । अर्द्ध श्लोकों में एक-एक देवता का उल्लेख है । उदाहरण के लिए **ह्रीं-रूपात्मिका योनि देवता, ब्रह्मात्मिका योनि देवता, रजो-योगात्मिका** इत्यादि दस देवता हैं ।

इस **कवच** के **पुरश्चरण** का उत्तम पक्ष यह है कि **अम्बुवती (पृथ्वी ऋतुमती)-पर्व में, आर्द्रा के सूर्य** में, कुल-कुण्डलिनी-रूपा सूत्र(**वर्ण-माला-अनुलोम-विलोम मातृकाक्षरों में सम्पुटित**) से अष्टोत्तर-शत (१०८) जप करे ।

काशी आदि के पञ्चाङ्गों में '**आर्द्रा-प्रवेश**' लिखा रहता है । **वङ्गीय** और **आसाम** के पञ्चाङ्गों में '**अम्बुवती-प्रवृत्ति-निवृत्ति**' लिखकर उक्त पर्व-काल को सूचित किया जाता है ।

यह **पुरश्चरण** या तो पूर्णतया **वीराचार** से करना चाहिए या शाक्त-मतानुसार **चण्ड-दर्प-व्रत-पूर्वक** अर्थात् **निरम्बु-भुक् (निर्जल उपवास)** रहकर । मिश्र-पद्धति से इसे नहीं करना चाहिए ।

(६) आवरण-पूजन का महत्त्व

'**साधना-रहस्य**' पृष्ठ १०५ में **योगिनी-बलि** के सन्दर्भ में **श्री चामुण्डा आवरण-पूजन** का उल्लेख है । वैसे सभी देवताओं के पूजन का यह प्रमुख अङ्ग है । कुछ आचार्य लोग **प्रातः-कृत्य** से लेकर **महा-षोढा-न्यास, पीठ-न्यास** तक की साधना पर तो विशेष बल देते हैं-**ककारादि सहस्त्र-नाम** तक का पाठ आवश्यक बता देते हैं, किन्तु '**आवरण-पूजन**' की उपेक्षा कर देते हैं, जो ठीक नहीं है । **आवरण-पूजन** में कोई विशेष समय नहीं लगता और उससे पूजन की सर्वाङ्ग-पूर्णता होती है । अतः उसे अवश्य करे । '**अष्ट-मातृका**' तो सर्वाम्नाय-पूजिता हैं, अतः **अष्ट-दल** की पूजा दो बार करने का विधान है ।

शास्त्र में ऐसे वचन भी मिलते हैं कि अमुक मन्त्र को **वशिष्ठ-शाप है**, अमुक मन्त्र को हारीत ऋषि ने कीलित कर दिया है, किन्तु वास्तव में बात ऐसी नहीं है।

कुछ का कथन है कि '**कङ्काल-मालिनी तन्त्र**' में **पञ्चाङ्ग-पूजा** का निषेध है, किन्तु वास्तव में वह तन्त्र तो सूक्ष्म वर्ण-माला परक है। उसके अनुसार **पञ्चाङ्ग-पूजा** का निषेध नहीं है, अपितु स्थूल-स्थूल-सूक्ष्म-सूक्ष्म करने का निर्देश है। अथवा ऐसा उपाय किया जाय कि पूरा चक्रार्चन ही निराकार हो जाए, **कुल-कुण्डलिनी** सदैव ब्रह्म-रन्ध्र में डूबी रहे, व्यर्थ ही इतनी सामग्री–तन्त्रोपकरण की क्या आवश्यकता ! ईश्वर निराकार है, अतः परिश्रम से बच निकलें ! भले ही कामनाओं की जञ्जीर जकड़ती ही जाय !! वैसे तो **गुरु-पूजन, कुमारी-पूजन, मूल-पूजा** के अङ्ग नहीं हैं। फिर भी वे आवश्यक हैं क्योंकि वे पर-ब्रह्म के स्वरूप हैं।

(७) उपसंहार-श्मशान-साधना की कुछ विशेष बातें

श्मशान-साधना में जितने भी मन्त्र-समूह काम में आते हैं, सभी इष्ट-देवता के अन्तर्भुक्त हो जाते हैं। स्वतन्त्र शक्ति (मन्त्र) वहाँ नहीं रहना चाहिए। पहले अच्छी तरह क्रम जान ले। फिर **वीर-साधना-मुहूर्त्त** में **अभिषेक** करे। यों ही जप करने के लिए बैठना निरर्थक ही है। परिश्रम व्यर्थ जाता है।

जिस मन्त्र के ऋषि, छन्द आदि न हों, वहाँ काम चलाने के लिए '**दक्षिणा-मूर्ति ऋषिः, गायत्री छन्दः**' मान ले। बाद में मिल जाएगा।

श्मशान में जप के बाद **अघोरास्त्र** का पुनः प्रयोग कर '**हूं उग्रतारे विकट-दंष्ट्रे**' इत्यादि मन्त्र से तीन बार **बलि प्रदान** कर **चण्डेश्वरी-पूजा** का समापन करे। तपो-विघ्न की शान्ति के लिए **आसन की मिट्टी का तिलक** लगाकर **सहस्त्र-नेत्र** का ध्यान करे। यथा–'**आरूढो वारुणेन्द्रः दश-नयनः**' इत्यादि। फिर '**ॐ लं यतमिन्द्र०**' का तीन बार पाठ कर सुखी रहे।

शक्ति-पञ्च-गव्य के अभाव में **संविदा, कारण, दूध, त्रि-मधु, घृत, कर्पूर, सुगन्धित तैल** से **माला-शोधन** व **संस्कार** करे। यदि दैव-वश **शालग्राम, यवनादि का स्पर्श** हो जाए, तो कोई हर्ज नहीं। '**साधना-रहस्य**' में **महा-शङ्ख-माला** के शोधन-मन्त्रादि आगम-निगम-सर्वाम्नाय सम्मत हैं।

श्मशान में पहली बार **वीर-साधना** करने से पूर्व सृष्ट्यादि **तत्त्वों का विचार** कर लेना चाहिए। **लग्न से चतुर्थ शुक्र** रहे। अष्टम (मृत्यु) स्थान में कोई ग्रह न रहे। बाद के अनुष्ठानों में यह नियम लागू नहीं होगा। **मुहुर्त (घटी-बन्धन)** आवश्यक है।

वीराचारी साधकों को **श्मशान** में विशेष अनुष्ठान **गुरुवार (वृहस्पति के दिन)** नहीं करना चाहिए, भले ही उस दिन **गुरु-पुष्य, ग्रहण, अष्टम्यादि पञ्च-पर्व** ही क्यों न हों।

'**मुहूर्त्त**'-चिन्तामणि के अनुसार **वीर-साधना का मुहूर्त्त** निम्न प्रकार है–

मूलार्द्रा भरणी पितृ-मृगे सौम्ये घटे तनौ। सुखे शुक्रेऽष्टमे शुद्धे, सिद्धि-वीराभिचारयोः।

अर्थात् मूल, आर्द्रा, भरणी, मघा, मृगशिरा, बुध-युक्त कुम्भ लग्न, लग्न से चतुर्थ शुक्र, अष्टम ग्रह-शून्य रहे।

●●●

पशु, वीर तथा दिव्य साधनाओं का रहस्य

साधना के तीन प्रकार हैं– **१. अधम (पशु), २. मध्यम (वीर)** तथा **३. उत्तम (दिव्य)** । मूल बात यह है कि–'**हम लोग स्वयं ही सर्व-शक्तिमान् ईश्वर हैं । अज्ञान-वश, आवरण-वश अपनी उस शक्ति का प्रयोग नहीं कर सकते** ।' अभ्यास के द्वारा **शिव-स्वरूप की उपलब्धि** हो सकती है । परन्तु यह अभ्यास क्रम से धीरे-धीरे करना होगा । इसी क्रम को देखते हुए **साधना के तीन प्रकार** बताए गए हैं ।

साधना की प्रथम अवस्था (पशु-भाव) में इष्ट की स्वामि-पितृ-सखादि भाव से अपने को दास-पुत्रादि मानकर **देहाभिमान के साथ भक्ति-योग से साधना** होती है । जैसे-जैसे साधक की भक्ति अपने इष्ट के प्रति बढ़ती जाएगी, वैसे-वैसे उसका **आत्म-बल** भी बढ़ता जाएगा । कालान्तर में उस साधक का ही प्रतिबिम्ब उसके ध्येय-रूप **इष्ट-देवता का दर्शन, स्पर्शनादि** तक कराकर उसकी कामना-पूर्ति करेगा । परन्तु यह साधना **देहाभिमान** के साथ होती है । अतएव साधक यह अनुभव नहीं करता कि **मैं अपने ही आत्म-बल की शक्ति द्वारा यह कल्पना कर रहा हूँ** ।' वह कहता है कि–'**देखो, मेरे देवता ने प्रसन्न होकर मेरी सहायता की है** ।'

इस प्रकार की साधना को देखकर आधुनिक पढ़े-लिखे लोग अन्ध-श्रद्धा कहकर **सम्पूर्ण आर्ष साधना-विज्ञान** की हँसी उड़ाते हैं । उन्हें **साधना-रहस्य** का ज्ञान नहीं होता । वे नहीं जानते कि यह **साधना की पहली सीढ़ी** है । यह अन्तिम पड़ाव नहीं है ।

साधना की द्वितीय अवस्था को '**वीर-साधना**' कहते हैं । इसमें **देहाभिमान** को त्याग कर **आत्माभिमान** द्वारा अपने **आत्म-बल** को प्रधान मानकर उसकी शक्ति बढ़ाने का प्रयत्न करते हैं ।

साधना की तृतीय अवस्था को '**दिव्य-साधना**' कहते हैं । इसमें अपने को ही इष्ट मानकर साधना की जाती है ।

साधना के उक्त तीन स्थूल भेद हैं । मुख्य लक्ष्य को देखते हुए द्वितीय व तृतीय अवस्था के बहुत से सूक्ष्म भेद हैं, जो **गुरु-कृपा** द्वारा अनुभव से विदित हो सकते हैं ।

साधना के उक्त तीन भेदों के अनुरूप ही **इष्ट-देवता के मन्त्र, ध्यान** और **यन्त्र** का अर्थ त्रिविध होता है । **प्रथमावस्था** में साधक को **देहाभिमान** से जपने में **मन्त्र का साधारण अर्थ** बताया जाता है । **द्वितीय अवस्था** में **आत्माभिमान** से मनन करने के लिए उसी **मन्त्र का अर्थ निर्गुण रूप** में समझाया जाता है । **तृतीय अवस्था** में **निरभिमान** से **निदिध्यासन** करने के लिए, उसी मन्त्र का अर्थ **निर्गुण-रूप से अपने में घटाकर तन्मय** करा देते हैं । यह अर्थ मुख से बताया नहीं जा सकता । गुरु शिष्य को स्वयं अनुभव करके दिखाकर शिष्य को भी अनुभव करा देते हैं । इसी प्रकार **ध्यानादि के भी त्रिविध अर्थ** हैं ।

'**वीर-साधना**'– आत्माभिमान से मनोविज्ञान के तरीके से होती है । यह **मन्त्र-योग, लय-योग, राज-योग** तथा **मनोविज्ञान**–इन चारों के मिश्रित रूप '**राजाधिराज-योग**' की साधना है । यह **दिव्य-साधना** का प्रवेश-मार्ग है । इसके बिना साधक '**दिव्य-साधना**' का **अधिकारी** नहीं बन सकता ।

'साधना' का मूल आधार 'मन्त्र' का 'जप'

'मन्त्र-जप' के सम्बन्ध में सिद्ध साधक पं० कालीचरण पन्त जी लिखते हैं कि-

'सद्-गुरु' कृपा-पूर्वक शब्द-ब्रह्म-रूप 'मन्त्र' का उपदेश देते हैं। 'मन्त्र' ही मन-रूपी मत्त गज-राज को वश में करने का सार्थक अंकुशास्त्र है। १. शब्द, २. अक्षर, ३. स्पन्दन और ४. अनुच्चार्या मात्रा-ये 'मन्त्र' की क्रमशः चार अवस्थाएँ हैं। श्री सद्-गुरु द्वारा प्राप्त वैखरी शब्द को अन्तिम परावस्था में प्राप्त कराना ही साधना-पथ है। यह श्री सद्-गुरु के उपदिष्ट मार्ग पर 'जप' द्वारा ही होता है। 'जप' ही सर्व-सुगम साधना है और सिद्धि का मूल है। यामल-वचन है कि-'अन्धकार से व्याप्त घर में दीपक के द्वारा घट दिखाई देता है। इसी प्रकार 'मन्त्र-जप' द्वारा आत्मा का दर्शन होता है।'

'मन्त्र की सर्वोत्तम जप-विधि' के लिए कबीर साहब कहते हैं-'साँसौ साँसा नाम जपु, उपाय कछु नाहिं।' इस साँस का रहस्य है कि विकल अवस्था में 'जप' न किया जाए। जब तक श्वास दृढ़ होकर स्थिर न हो जाए, तब तक एक-एक साँस के साथ 'जप' करे। यह अवस्था तभी आ सकती है, जब मन में धैर्य और आनन्द हो। इसके लिए आगम का रहस्य-वचन है-'श्वास के मार्ग में मन को लगाए।'

श्वास-मार्ग में 'मन' को लगाने से प्राण की गति यथा-समय स्थिर होने लगेगी। श्वास-मार्ग में नियोजित 'मन' सहज ही में प्राण की गति को स्थिर कर प्राण को 'नासाभ्यन्तर-चारी' बना देगा। प्राण के वृथा व्यय न होने से शरीर-बल बढ़ेगा, आनन्द की मात्रा भी बढ़ेगी। स्थिर प्राण को जहाँ पर भी नियोजित किया जाएगा, वहीं पर स्फुरण होगा।

यह स्फुरण ही चक्रों में धारा-प्रवाह रूप में वैखरी 'जप' को अन्तर्मुखी करता है और मध्यमा का उदय होता है। प्राण के श्वास-द्वारा विचलित होने से चित्त विकल रहता है। प्राण की रुद्ध गति में दृढ़ता-पूर्वक ध्यान करने मात्र से ही सहज कुम्भक लगता है। अग्नि प्रदीप्त हो उठती है। 'मन्त्र-शक्ति' जागृत हो जाती है। कबीर कहते हैं-

'समुद्र लागी आगि, नदियाँ जलि कोयला भईं।
उठा कबीरा जागि, मच्छी बिरछा चढ़ गई।'

अर्थात् प्राण-अपान के सङ्घर्ष से प्रदीप्त अग्नि द्वारा आत्म-शक्ति चैतन्य हुई और इडा-पिङ्गला आदि को प्राण-रूपी आहार न मिला। इससे विषय-वृत्तियाँ आदि जल गईं और आत्म-शक्ति कुल-वृक्ष सुषुम्ना-पथ से मेरु-दण्ड के शिखर सहस्त्रार पर चढ़ गई।

□□□

वर्तमान काल में श्रेष्ठ साधना :
केवल 'जप' द्वारा एक-चित्त होकर साधना करना

'जप'-रूपी कर्म-कौशल वर्तमान काल में श्रेष्ठ साधना है। **गुप्तावतार बाबा-श्री कहते हैं-'मन'** चञ्चल है। उसका स्वभाव है-कुछ-न-कुछ विचार करते रहना। **'मन'**-प्रवाहात्मक है। उसमें आकर्षण भरा हुआ है। आकर्षण में फँसे रहना-**'मन' का स्वभाव** है। प्रवाहात्मक होने से **'मन'** यहाँ-वहाँ भटकता रहता है। क्षण में यहाँ, तो क्षण में वहाँ। भोग भोगने की अनेक कल्पनाएँ करने से वह कैसे रुक सकता है !

यह जो **स्थूल शरीर** दिखता है, उसमें शरीर से भी **सूक्ष्म प्राण** भीतर जाता और बाहर निकलता मालूम पड़ता है। शरीर से सूक्ष्म **प्राण** है और प्राण से सूक्ष्म **मन, बुद्धि** तथा **चित्** हैं। 'यदि श्वास चलना बन्द हो जाए, तो **मन, बुद्धि, चित्** और **अहङ्कार** की चैतन्य-समष्टि याने **'जीव'** इस शरीर में से निकल जाएगा और शरीर की मृत्यु हो जाएगी। इसलिए **शरीर** और **'मन'** के मध्य की शृङ्खला-रूप जो **प्राण** है, उसको यदि रोका जाए, तो **'मन'** भी रुक सकता है।

'मन' को रोकने के लिए स्वस्थ चित्त से बैठकर **'मन'** को अपने श्वास के पीछे लगा देना चाहिए, जिससे **'मन'** श्वास के साथ भीतर-बाहर आता रहे। इसे हम एक रोचक प्रसङ्ग से समझ सकते हैं। एक मनुष्य ने भूत को सिद्ध किया था। शर्त यह थी कि यदि भूत को कुछ काम वह न बताएगा, तो भूत उसको खा जाएगा। भूत को जो काम बताया जाता, उसे वह तुरन्त कर देता। तब उसको किसी काम में लगाए रहने के लिए, उस व्यक्ति ने एक सीढ़ी बनवाई और भूत से कहा कि 'जब कोई काम न हो, तब इसके ऊपर चढ़ा और उतरा करो।' अब जब कोई काम न होता, तब भूत का यही काम हो गया। ठीक इसी प्रसङ्ग की तरह **'मन'**-रूपी भूत को श्वास के साथ भीतर-बाहर आने-जाने में लगा देना चाहिए। केवल पौन घण्टा ऐसा करने से दस घण्टे के आराम का काम देगा।

पहले लोगों के पास **'साधना'** करने का पर्याप्त समय था। आज यह समय नहीं है। पहले खाने-पीने की इतनी चिन्ता न थी, जितनी आज है। उस समय जितना लोग, जैसे छः बार नित्य-साधना व समय-समय पर **नैमित्तिक साधना** आदि किया करते थे, उतना करने से ही कल्याण हो, ऐसा नहीं है। जैसा समय है, वैसा ही वह सब हो सकता है। **जितना समय मिले और जब मिले, एक-चित्त से इष्ट-देवता का स्मरण करना पर्याप्त है।** अतः **केवल 'जप' द्वारा कम-से-कम समय में एक-चित्त होकर साधना करते हुए कल्याण हो सकता है, इसमें सन्देह नहीं।**

□□□

रोग-नाशक प्रयोग

१. ॐ उं उमा-देवीभ्यां नमः मन्त्र से मस्तक-शूल तथा मज्जा-तन्तुओं की समस्त विकृतियाँ दूर होती हैं–'पागल-पन' तथा 'हिस्टीरिया' पर भी इसका प्रभाव पड़ता है । **२. ॐ यं यम-घण्टाभ्यां नमः** से 'नासिका' के विकार दूर होते हैं । **३. ॐ शां शाङ्खिनीभ्यां नमः** से 'आँखों के विकार' दूर होते हैं । सूर्योदय के पूर्व इस मन्त्र द्वारा अभिमन्त्रित रक्त-पुष्प से आँख झाड़ने से, 'फूला' आदि विकार नष्ट होते हैं । **४. ॐ द्वां द्वार-वासिनीभ्यां नमः** मन्त्र से समस्त 'कर्ण-विकार' दूर होते हैं । **५. ॐ चिं चित्र-घण्टाभ्यां नमः** से 'कण्ठ-माला' तथा कण्ठ-गत विकार दूर होते हैं । कण्ठ के 'कर्क' रोग (कैन्सर) पर इसका अद्भुत प्रभाव होता है ।

६. ॐ सं सर्व-मङ्गलाभ्यां नमः से 'जिह्वा'-विकार दूर होते हैं । तुतलाकर बोलनेवालों के लिए यह मन्त्र बहुत लाभ दायक है । **७. धं धनुर्धारिभ्यां नमः** से पीठ की रीढ़ के विकार दूर होते हैं । धनुर्वात (टिटनस) के लिए यह मन्त्र प्रभाव-शाली है । **८. ॐ मं महा-देवीभ्यां नमः** मन्त्र से माताओं के स्तन-विकार अच्छे होते हैं । कागज पर लिखकर बालक के गले में बाँधने से नजर, चिड़चिड़ापन आदि दोष नष्ट होते हैं । **९. ॐ शों शोक-विनाशिनीभ्यां नमः** मन्त्र से समस्त 'मानसिक व्याधियाँ' नष्ट होती हैं । 'मृत्यु-भय' दूर होता है । पति-पत्नी का कलह-विग्रह रुकता है । इस मन्त्र को साध्य के नाम के साथ मङ्गलवार के दिन अनार की कलम से रक्त-चन्दन से 'भोज'-पत्र पर लिखकर, शहद में डुबो कर रक्खे । मन्त्र के साथ जिसका नाम लिखा होगा, उसका क्रोध शान्त हो जायगा । **१०. ॐ लं ललिता-देवीभ्यां नमः** से 'हृदय'-विकार दूर होते हैं । हृद्-रोगी इस मन्त्र को अधिक-से-अधिक जपते रहें, तो उनका 'हृदय-विकार' समूल नष्ट हो सकता है ।

११. ॐ शूं शूल-वारिणीभ्यां नमः से 'उदरस्थ व्याधियों' पर नियन्त्रण होता है–विशेषतः जलोदर तथा उदर-शूल के रोगियों के लिए, यह मन्त्र लाभ-कारी है । 'प्रसव वेदना' के समय यह मन्त्र बहुत काम करता है । **१२. ॐ कां काल-रात्रीभ्यां नमः** से आँतों के समस्त विकार दूर होते हैं । विशेषतः 'अल्सर', 'आमांश' आदि विकारों पर यह लाभकारी है । **१३. ॐ वं वज्र-हस्ताभ्यां नमः** से समस्त 'वायु-विकार' दूर होते हैं । 'ब्लड-प्रेशर' के रोगी इसका उपयोग करें । **१४. ॐ कौं कौमारीभ्यां नमः** से 'दन्त-रोग' दूर होते हैं । बालकों के दाँत निकलने के समय, यह मन्त्र लाभ-कारी है । **१५. ॐ गुं गुह्येश्वरी नमः** मन्त्र से 'गुप्त-विकार' दूर होते हैं । 'बवासीर' के रोगी इसका प्रयोग करें । शौच-शुद्धि के पूर्व, इस मन्त्र का १०८ बार जप करने से 'अर्श' दूर होता है । सभी प्रकार के 'प्रमेह'-विकार भी इस मन्त्र से अच्छे होते हैं ।

१६. ॐ पां पार्वतीभ्यां नमः से 'रक्त-मज्जा-अस्थि-गत विकार' दूर होते हैं । 'कुष्ठ-रोगी' इस मन्त्र का प्रयोग करें । **१७. ॐ मुं मुकुटेश्वरीभ्यां नमः** से 'पित्त-विकार' दूर होते हैं । अम्ल-पित्त के रोगी इस मन्त्र का प्रयोग करें । इस मन्त्र से 'ज्वर-शान्ति' भी होती है । **१८. ॐ पं पद्मावतीभ्यां नमः** से 'कफज व्याधियों' पर नियन्त्रण होता है । टी० बी० (क्षय) के रोगी विश्वास-पूर्वक जप करें । **१९. ॐ कं कल्याण-शोभनाभ्यां नमः** से ग्रह, भूत-प्रेत, पिशाच, अप-मृत्यु आदि भयों से मुक्ति मिलती है ।

विधि–उपर्युक्त 'मन्त्रों' को सर्व-प्रथम **'नव-रात्र'** आदि **पर्व-काल** में **१००८ बार 'जप'** कर सिद्ध कर लेना चाहिए । फिर प्रति-दिन जब तक विकार रहे, **१०८ बार 'जप'** करना चाहिए। अथवा सुविधानुसार अधिक-से-अधिक **'जप'** करे । रोगी यदि स्वयं **'जप'** न कर सके, तो किसी सुपात्र ब्राह्मण के द्वारा **'जप'** कराए । **'बीमारी अथवा विकार'** से अच्छे होने पर **'कुमारी-पूजन'**, **'ब्राह्मण'-भोजन**, वस्त्र दानादि करे ।

श्रीप्रभु

■ ह्रीं ■

श्री प्रभु–माया का रचनेवाला स्वामी है, जिससे विश्व को जीवन की आवश्यकताओं का भान होता है।

■ श्रीं ■

श्री प्रभु–श्रेयत्व का कर्त्ता है, जिससे जीवन की उलझन सुलझाई जाती है व क्रिया सूझती है। संक्षेप में क्रिया-रूपी प्रवाह का मूल कारण है, जिससे कल्याण होता है।

■ क्रीं ■

श्री प्रभु– विद्या-अविद्या के संघर्षण का कर्त्ता है, जिससे मनुष्य को क्रिया का अनुभव मिलता है और सर्व-विकार पचकर सङ्घर्ष-शक्ति (एबिलिटी टु स्ट्रगल) की प्राप्ति होती है।

■ ऐं ■

श्री प्रभु–मूलाग्नि व प्रवाहिनी गति का स्वामी है, जिससे जड़त्व दूर होता है।

■ क्लीं ■

श्री प्रभु–परिश्रम का कर्त्ता है, जिससे जीवन की शुष्कता दूर होती है।

■ स्त्रीं ■

श्री प्रभु–नव-नवत्व-रूप व्याधि एवं प्राचीनत्व-रूप मृत्यु से बचानेवाला और बचना सिखाने-वाला है।

■ हूँ ■

श्री प्रभु–सत्य का काश, उसकी पूर्ति या उसको पहचानने की शक्ति को देनेवाला है। अपना अस्तित्व कैसे सँभाल कर सुरक्षित रखा जाए, यह सिखलानेवाला है।

श्री प्रभु–सबका कल्याण करनेवाला है। उसके चरणों में 'रज' बनकर चिपकने के भाव में अखिल विश्व की उपासना समाई हुई है।

–गुप्तावतार बाबा-श्री

●●●

कर-माला

- देवी के मन्त्रों के १०८ बार 'जप' हेतु दाएँ हाथ की अँगुलियों में पहले चित्र में दी गई संख्या १, २, ३, ४, ५, ६, ७, ८, ९, १० के क्रम से दस बार जप करे।
- उक्त प्रकार से 'दस बार जप' की गणना के लिए बाँएँ हाथ के अँगूठे के अग्र भाग से उक्त क्रम से ही गणना करे। बाँएँ हाथ में दस बार गणना करने पर 'कुल जप-संख्या' १०० हो जाएगी।
- अन्त में शेष ८ बार 'जप' के लिए दाँएँ हाथ में I, II, III, IV, V, VI, VII, VIII के क्रम से 'जप' करना चाहिए।
- 'जप' करते समय अँगुलियों के 'पोर' के मध्य भाग को स्पर्श करते हुए 'जप' करना चाहिए।